समीर के पंख

(१२ उत्कृष्ट कहानियों का संग्रह)

भगवती प्रसाद बाजपेयी

समीर प्रकाशन
चाँदनी चौक,
देहली।

समीर प्रकाशन
चाँदनी चौक,
देहली।

मूल्य ३ रुपये ५६ नये पैसे

जयश्री प्रिन्टर्स,
देहली।

तालिका

आमुख

कथा-रहस्य

कला का उद्देश्य

भारतीय भाषाओं में सबसे पुरातन वेद-भाषा है; किन्तु कहानी का इतिहास उसमें भी नहीं मिलता। हाँ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि पहले पहल ज्ञान का प्रकाश वैदिक युग में ही फैला और तभी मनुष्य अपने आपको लेकर जगत् और उसके स्रष्टा को समझने और उस पर चर्चा करने में समर्थ हुआ। ऋग्वेद में कुछ ऐसे उपाख्यान मिलते हैं, जो मनुष्य-जीवन की सुख-दुःख से पूर्ण अनेक समस्याओं पर प्रकाश डालते हैं।

किन्तु उस युग से भी बहुत-बहुत पूर्व जब कभी आदि पुरुष ने मुँह खोला होगा, आदि-कहानी तो उसी समय उसकी अज्ञात भाषा में निःसृत हुई होगी। कला के प्रयोजन को लेकर समय-समय पर बहुतेरे विवाद कलाविदों ने किये हैं। भविष्य में भी वे बराबर होते रहेंगे। इस समय, यहाँ एक ही कथन उपयुक्त जान पड़ता है कि जीवन में जो महत्वाकांक्षाएँ और बृहत्तर प्रेरणाएँ अधखिली रह जाती हैं, उनको मूर्त रूप देना ही कला का उद्देश्य है।

अर्थात् जब वर्तमान हमको कुछ दे नहीं पाता, तभी हम कला के द्वारा उसकी सृष्टि करते हैं।—वॉगनर।*

युग का क्षण-क्षण अनिश्चित, अस्थिर और अकल्पित है; तो भी यह कितनी विचित्र बात है कि वह अपने आप में निश्चित, स्थिर और

---

* Quanb le present ne nous ofre plus rien, nous crions parl' oenvre d'art.

पूर्ण है। प्रत्येक पल-पल भर में ही समाप्त हो रहा है, तो भी है वह अपने आप में पूर्ण है। क्षणिक के महत्व पर मुग्ध होकर रवि ठाकुर कहते हैं—"हे प्राण तुम दिन के इस क्षणिक प्रकाश में अकारण पुलकित होकर क्षणिक का गान गाओ।"†

तो हमारे इस जीवन का क्षण-क्षण अपने आप में पूर्ण होकर अपना जो एक महत्व छोड़ जाता है उसकी भी एक कहानी होती है। यहाँ कुछ ऐसा बोध होता है, मानो वस्तु-स्थिति की पूर्णता ही कहानी की सृष्टि है। नीरवता भंग तब होती है, जब रव आता है। यहाँ भी सृष्टि-रव है। मनुष्य बात तभी करता है, जब बात की पूर्वा निष्पन्न हो चुकती है। स्पष्ट है कि बात सृष्टि है। जीवन का एक व्यापार सम्पन्न होकर अपना एक इतिहास छोड़ जाता है। जो व्यापार, स्थिति और कार्य कलाप अपना कुछ छोड़ नहीं जाते, वे प्रायः निष्प्राण हुआ करते हैं। अन्यथा जीवन जहाँ समाप्त होता है, कला वहीं प्रारम्भ होतीं है।‡

कथा के मूल तत्व

जीवन एक रस नहीं होता। उसमें अस्थिरता रहती है। यदि वह चौरस हो तो स्थिर होकर समाप्त हो जाय, चेतन न रहकर जड़ बन जाय। वह शान्त भी नहीं होता। उल्लास, आवेग, क्षोभ, विस्फूर्जन और उन्माद आदि असामान्य वृत्तियाँ उसकी रूप-रेखाएँ हैं। इसलिए उसके जो व्यापार प्रायः अस्वीकार्य होते हैं,वे ही कथनीय बना करते हैं। जो स्थितियाँ मनुष्य को शान्त और मूक रखती हैं, वे साधारणतया शब्द का रूप नहीं पातीं। मनुष्य उन्हें अपनी चेष्टा से ही व्यक्त कर देता है। जो भाव चेष्टा से भी व्यक्त नहीं हो पाते, अथवा जिन्हें चेष्टा से

† शुधु अकारण पुलके।
क्षणिकेर गान गारे आजि प्राण।
क्षणिक दिनेर आलो के।

‡ L'art commence o'ula vie cesse.

व्यक्त करने में मनुष्य को सन्तोष नहीं होता, उन्हीं को वह शब्दों में व्यक्त करता है। इस प्रकार ध्यान से देखें तो हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि शब्द की उत्पत्ति असन्तोष से हुई है और कला की सृष्टि में भी हम यही बात पाते हैं।

कहानी की सृष्टि भी इसी प्रकार हुई है। वेद, उपनिषद् और ब्राह्मण ग्रन्थों में आख्यान दिये गये हैं, वे दृष्टान्त हैं, उदाहरण हैं। सृष्टि, जगत् और सामाजिकता के लिए समन्वय का हेतु लेकर वे हमारे सामने रक्खे जाते हैं; अर्थात् हमारे असन्तोष और विद्रोह के लिए वे समाधान हैं। कला और साहित्य को भी हम अगर उपयोगिता की दृष्टि से देखें, तो वह व्यक्ति और जनगण के लिए एक समाधान ही तो है।

यहाँ प्रश्न उठ सकता है कि कला का एक रूप ध्वंसात्मक भी तो हो सकता है, समाधान में हम उसे बाँध कैसे सकते हैं? तब कहना पड़ेगा कि जब कला विध्वंसगामिनी हो जाती है, तब भी उसका अन्तिम लक्ष्य लय न होकर सृष्टि होता है। हम ध्यान से देखें तो हमें पता चलेगा सृष्टि और लय बहुत निकटवर्ती स्थितियाँ हैं। यहां तक कि दोनों एक दूसरे से सम्बद्ध भी हैं। कवि उमर खय्याम ने कहा है कि जीवन का लक्ष्य अगर इष्ट की प्राप्ति है तो प्राप्ति का लक्ष्य है इष्ट का खो देना।

अब और दूर न जाकर हमें केवल यह देखना है कि कहानी की उत्पत्ति होती कैसे है? ऊपर आपने देखा कि सृष्टि के मूल में लय और लय के मूल में सृष्टि का चक्र चल रहा है। मनुष्य आशा पर जीवित है और आशा एक कल्पना है। जो कल्पना से प्रतीक्षामयी होती है, वह सुखद हुआ करती है। किन्तु जीवन का सत्य कल्पना से बहुत दूर है, दूरतर है। बहुत अंशों में वह निराशा है, इसीलिए निराशा दुख है। मनुष्य इसी सुख-दुख, आशा-निराशा तथा सत्य और कल्पना के बीच उलझा हुआ है। उसकी उलझन नित्य है। रात और दिन का अन्तर जैसा सत्य और प्रत्यक्ष है, वैसा ही प्रत्यक्ष है मनुष्य का सत्य और

कल्पना के बीच उलझा रहना। जीवन और जगत् की यह सृष्टि अपने निवारण-रूप में हमारे सामने रहती है तो भी मनुष्य आशा, कल्पना और सुख की लोल लीलाओं में भटक रहा है। ज्ञान और विवेक को अस्थिर भाव से धारण करते हुए भी चिन्तन और विवशता से जड़ीभूत मनुष्य नित्य भूलें करता है। नित्य वह भ्रम से परे बनने में प्रयत्नशील है; किन्तु जगत् और सृष्टि की अमिट और अकल्पित सत्ता के आगे अन्ततोगत्वा है। वह विवश और असहाय ही! सबसे बड़ी असफलता मनुष्य की यही है और कहानी मनुष्य की इसी असफलता का इतिहास है।

यहाँ प्रश्न हो सकता है कि यह तो एकांगी दृष्टि है। सचमुच प्रश्न उचित है; किन्तु अपना अनुभव तो ऐसा ही है। मनुष्य को यदि कोई अभाव न हो, कहीं से भी कोई ऐसी अपूर्णता उसके जीवन में न हो कि जगत् और समाज से उसे कोई शिकायत हो सके तो वह मनुष्य न रह सकेगा। मनुष्य का जीवन तो एक अपूर्णता है। पूर्ण होकर मनुष्य जीवन से परे हो जाता है। जीवन का अर्थ ही है ऐसा जीव जो 'न' से संयुक्त है और 'न' अभाववाचक शब्द है। कहानी की उत्पत्ति ही नहीं हो सकती, यदि मनुष्य को कुछ कहना न होता। कोई अंग यदि शेष न रहता, तो वक्तव्य की उत्पत्ति ही सम्भव न होती। इसीलिए कहानी की सृष्टि का मूल कारण ट्रेजिडी है। विश्व-साहित्य की अमर कहानियाँ ट्रेजिडी से ही भारानत हैं।

तो जिन कथाओं में जीवन का दुखमय इतिहास नहीं है, क्या वे कहानियाँ यथार्थ से दूर हैं? ऐसी बात नहीं है। सुख और दुःख शब्द एक ओर से जैसे सापेक्ष्य हैं,वैसे ही वे प्रकारान्तर से अन्योन्याश्रित भी हैं। कला में भावना और विवेक का समन्वय देखकर हम जिस सौन्दर्य से अभिभूत हो उठते हैं, वास्तव में वह सुख और दुःख को प्रकारान्तर से एक रूप में देखता है और कहानी में हम इसी विभेद—इसी रहस्य-का उद्घाटन पाते हैं।

इसके सिवा एक दूसरी दृष्टि भी है। जीवन का दुःख वास्तव में दुःख तभी तक है, जब तक वह जीवन में मिला हुआ है, वर्तमान है। किन्तु जो दुःख वर्तमान न रहकर अतीत बन गया है, वह कथा है और कथा का दुःख कोरा दुःख नहीं हो सकता। व्यक्ति और उसके जीवन का दुःख जब वह था, तब व्यक्ति मात्र का था। कथा में वह समिष्टि में आकर बँट गया है, सबका हो गया है। मनुष्य-मात्र उसमें अपना प्रतिबिम्ब पाता है। इस प्रकार कथा का दुःख साहित्य के लिए तृप्ति है, सन्तोष और समाधान है। जीवन में यह समन्वय की सृष्टि करता है। उसको आनन्दमय, गतिमय बनाने में वह सहायक है। मनोरंजन है वह।

कथा की पृष्ठ-भूमि

तो कहानी उस प्रकार की बात है, जिसमें जीवन के सुख-दुःख की अभिव्यंजना का संकेत रहता है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। अपनी बात वह दूसरे से कहे बिना रह नहीं सकता। इसीलिए उसको इस बात की आवश्यकता पड़ती है कि वह दूसरे से अपने भेद की बात कह डाले। जो लोग कह नहीं पाते, वे उसे अपने आचार-व्यवहार में व्यक्त करते हैं। कहने किंवा व्यक्त करने के उसी वर्णन को साधारणतया हम समाचार या सम्वाद कहा करते हैं। किन्तु वही बात जब अन्य व्यक्तियों से कही जाती है, तो वह कहानी कहलाती है। साहित्य में आकर यही वस्तु लोकोत्तर आनन्ददायिनी बन गई, उसमें अनेक शैलियों, स्वरूपों और भेदों की प्रतिष्ठा हो गयी। यहाँ तक कि आज हम उसमें कला का निवास पाने लगे।

आदि कहानी कौन थी, निश्चित रूप से यह कहना कठिन है? किन्तु इतना तो कहा ही जा सकता है कि उसका रूप उस समय एक सम्वाद ही रहा होगा। आज भी हम देखते हैं कि कहानी अपनी मूल रूप-रेखा में एक प्रकार से सम्वाद ही बनी हुई है। साधारण वार्ता-

लाप में जब कोई व्यक्ति किसी घटना की बात कहता है, तो वह उसकी पूर्वकथा प्रायः फिर से दुहराया नहीं करता। हुआ क्या, बस इतना ही बतला देता है। तात्पर्य यह है कि जिससे बात कही जाती है उसे पहले से उस घटना से सम्बन्धित व्यक्ति के विषय में कुछ ज्ञान बना रहता है। तभी तो केवल एक वाक्य कहकर वह उपस्थित व्यक्ति अथवा जन-समूह को अभिभूत कर देता है। इस प्रकार सम्वाद का रूप केवल उस बात को दिया जाता है, जो एक वाक्य में कही अथवा सुनी जाती है। व्यक्ति का इतिहास पहले से स्थिर रहता है। अन्त की घटनामात्र उस समस्त इतिहास पर अपनी छाप लगाकर जैसे उसे आत्मसात् कर लेती है। आज की कहानी में भी व्यक्ति और उसके समूह का इतिहास ही कथा की पृष्ठभूमि रहता है। अन्तिम घटना में जो सम्वाद के रूप में आती है, 'क्लाईमेक्स' बन जाती है। इस प्रकार कथानक व्यक्ति का इतिहास होता है, घटना का सम्वाद उसका 'क्लाइमेक्स' ?

कहानी और घटना

पहले कहानी घटना तक ही सीमित मानी जाती थी। बाद में वह स्थूल जगत् की घटना-मात्र न रह कर आत्म-लोक की घटना भी हो गई तभी तो मनोविश्लेषणात्मक कहानी में केवल उन स्थितियों, प्रवृत्तियों और उलझनों का चित्रण रहता है, जो मनुष्य के अन्तर्पट पर केवल कल्पना लोक में दृष्टिगत होती हैं।

आदिम कहानी का इस कल्पना लोक से कोई सम्बन्ध नहीं था। कहानियों में उस समय सच्ची घटनाओं का ही वर्णन किया जाता था। मनुष्य के विकास के साथ-साथ जैसे-जैसे समाज और उसका इतिहास बनता गया, वैसे-ही-वैसे सच्ची घटनाओं की रूपरेखा, चेष्टा, लक्ष्य तथा भावना के आधार पर काल्पनिक कथाओं की भी सृष्टि होने लगी। उत्तरोत्तर विकास होते-होते आज कहानी सत्य घटना का वर्णन न रहकर उसकी कल्पना बन गयी है।

कहानी बहुत व्यापक शब्द है। उसमें उपन्यास का रूप भी सन्निहित

है। अंगरेजी में केवल 'स्टोरी' न कहकर उसे 'शार्ट स्टोरी' और मराठी में 'लघुकथा कहते हैं। वगभाषा में कहानी के लिए 'गल्प' शब्द आता है। पहले हिन्दी में भी कहानी के स्थान पर 'गल्प' शब्द का ही प्रचार था। 'गल्प' शब्द संस्कृत के 'जल्प' शब्द का रूपान्तर है। और 'जल्प' का अर्थ है—वार्तालाप अथवा कुछ न कुछ कहना, बकना।

कहानी और उपन्यास

तो कहानी में आख्यान का जो भाव है वह तो हो गया उपन्यास और संक्षिप्त रूप में वह कहानी कहलाती; किन्तु यह अन्तर केवल रूप का है। मुख्य भेद कहानी और उपन्यास में कुछ और है। उपन्यास जीवन का सम्पूर्ण चित्रण है। कहानी उसके अंश विशेष का। उपन्यास पूरा कुटुम्ब है, कहानी उसका एक व्यक्ति। व्यक्ति का इतिहास उपन्यास है, तो कहानी उसके एक अंश की झलक। दोनों इतिहासों में व्यक्ति ही प्रधान है। व्यक्ति को लेकर ही कहानी बनी है और उसी के कुटुम्ब को लेकर उपन्यास। जब उपन्यास केवल व्यक्ति को लेकर हो सका है, तब वह उसके जीवन की एक पूर्ण झांकी है। कहानी में उसका एक अंश विशेष आयेगा, यद्यपि अपने आप में पूर्ण भी वह होगा।

कहानी के अंग

कहानी को साधारणतया निम्नांकित सात भागों में बाँटा जा सकता है :—

१. प्रस्तावना
२. मूल विचार (थीम)
३. वस्तु (प्लाट)
४. चरित्र-सृष्टि
५. वार्तालाप
६. वातावरण
७. अन्तिम बिन्दु (क्लाइमेक्स)

प्रस्तावना कथा का वह भाग है, जिसकी भूमि पर घटना दृश्य और वस्तु का भवन खड़ा किया जाता है। मूलविचार उस मन्तव्य को कहते हैं, जो सम्पूर्ण कथा में प्राण रूप में विद्यमान रहता है। प्लाट उन अवयवों के मिश्रित रूप का नाम है, जिस पर कथा का ढाँचा खड़ा होता है। चरित्र सृष्टि का अभिप्रायः है कथा के भीतर से उनके नायक के ऐसे चरित्र की सृष्टि, जिस पर सारी कथा आधारित होती है। वार्तालाप कथा के पात्रों को साकार और सजीव बनाने के लिए रखा जाता है। वातावरण कथा के चतुर्दिक छाये हुए स्थान, काल और कार्य-कलाप के मिश्रित रूप को कहते हैं। क्लाइमेक्स कथा के उस रहस्योद्घाटन, मर्म-स्पर्श अथवा आघात की सृष्टि का नाम है, जो उसे सम्पूर्ण करती है।

हिन्दी कहानी के आदिकाल में प्रस्तावना कथा के पूर्व भाग में रहा करती थी। अब वह कभी वार्तालाप में आती है, कभी कथा-नायक के आत्म-चिन्तन में। पहले वह प्रत्यक्ष रूप में रहती थी, अब उसका अप्रत्यक्ष रहना ही एक गुण माना जाता है। मूलविचार को कुछ लोग उद्देश्य भी कहते हैं। चरित्र-सृष्टि से उसका घनिष्ट सम्बन्ध रहता है। प्रायः वार्तालाप में उसका स्पष्टीकरण होता है। ऐसा भी हो सकता है कि वह क्लाइमेक्स के द्वारा प्रकट हो। वस्तु एक सूत्र है जो कथा के सारे अंगों और उपाँगों को बाँध कर रखता है। चरित्र सृष्टि और मूल विचार का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। मूलविचार की सफलता चरित्र सृष्टि पर निर्भर करती है और चरित्र सृष्टि की मूलविचार पर। वार्तालाप चरित्र को स्वाभाविक और सप्राण बनाता है। वह समय, स्थल और घटना के वर्णन से प्रस्तावना की रक्षा करता है। वातावरण क्लाइमेक्स को बाँधता है, उसका एक अंग स्थानीय रंग (लोकल कलर) भी है। कथा को भावात्मक बनाने में भी वह विशेष सहायक होता है और क्लाइमेक्स कथा के केन्द्रीय भाव, गठन और उसकी संक्षिप्तता का अन्तिम क्षण, उद्देश्य और प्राण है।

प्रणालियाँ

कहानी प्राय: निम्नलिखित प्रणालियों में लिखी जाती है—

१. **ऐतिहासिक प्रणाली**—इसमें वर्णन की प्रधानता रहती है। आदि से अन्त तक वह ऐसी प्रतीत होती है, मानो किसी के जीवन का इतिहास हो।

२. **मनोविश्लेषणात्मक प्रणाली**—इसमें जीवन और उसकी गति-विधि का सूक्ष्म अध्ययन उपस्थित किया जाता है। घटनाएँ इसमें स्थूलजगत् में न होकर अन्तर्द्वन्द्व के रूप में आती हैं।

हिन्दी कहानी के धनंजय श्री प्रेमचन्द ने लिखा है :—

"कहानी अब केवल एक प्रसंग का, आत्मा की एक झलक का सजीव स्पष्ट चित्रण है। अब उसमें व्याख्या का अंश कम, संवेदना का अंश अधिक रहता है। उसकी शैली भी अब प्रवाहमयी हो गयी है। अब कहानी का मूल उसके घटना विन्यास से नहीं लगाते। हम चाहते हैं। पात्रों की मनोगति स्वयं घटनाओं की सृष्टि करे। खुलासा यह कि आधुनिक गल्प का आधार अब घटना नहीं, मनोविज्ञान की अनुभूति है।

३. **कथोपकथन प्रणाली**—इसमें कहानी के सारे लक्षण केवल वार्तालाप में ही लक्षित होते हैं। पत्र-प्रणाली वास्तव में इसी प्रणाली का रूपान्तर है। कथोपकथन में दो पात्र वार्तालाप करते हैं, पत्रप्रणाली में वे बात न करके पत्र लिखते हैं।

४. **डायरी प्रणाली**—लेखक इसे नायक की संस्मृतियों के रूप में लिखता है। कुछ दिनों की बातें, प्रभावात्मक टिप्पणियाँ अथवा घटनाएँ मिलकर एक कहानी बन जाती हैं। कुछ लोग इसे आत्मकथा प्रणाली भी कहते हैं। कथोपकथन प्रणाली से इसमें भेद केवल इतना रहता है कि वह कथन-उपकथन दोनों उपस्थित करती है, पर इसमें केवल कथन रहता है। पर है यह भी एक तरह से ऐतिहासिक प्रणाली का ही रूपान्तर।

५. **संलाप प्रणाली**—इसमें कहानी केवल एक कथन में आ जाती

है। सब मिलाकर यह केवल एक भावात्मक प्रलाप होता है। उद्वेलित मन के छाया-चित्रों से ही इस तरह की कहानी की सृष्टि होती है।

किन्तु यह प्रणाली वास्तव में डायरी प्रणाली का रूपान्तर है। डायरी को कथा नायक लिखता है, इसमें उसका आत्म-चिन्तन अथवा स्वागत भाषण रहता है।

अब इस स्थल पर यह भी जान लेना आवश्यक है कि कहानी में केन्द्रीयभाव (कंसेंट्रेशन), एकता (यूनिटी) और संक्षिप्तता (ब्रेविटी) क्या है ?

प्लाट एक फैली, बिखरी हुई चौरस चीज़ है। लघुकथा के लिए उसे चारों ओर से समेटना पड़ता है। यहाँ तक कि वह एक स्थल पर पहुँच कर केन्द्रित हो जाती है। इसी गुण को केन्द्रीयभाव कहते हैं।

कथा में कुछ बातें बिखरी हुई भी होती हैं। कहीं वे परस्पर ऐसी विरोधिनी भी हो सकती हैं कि मिलाये बिना नहीं मिलतीं। तब उन्हें शृङ्खलित करना होता है। इसी, मेल, लय, गठन अथवा 'हार्मनी' को एकता कहते हैं। कथा में यह एकता, समय, स्थल और घटना से सम्बद्ध मानी जाती है।

संक्षिप्तता आज की लघुकथा का सब से बड़ा गुण है। अगर कहानी इतनी ढीली है कि उससे एक आध पैराग्राफ अथवा कुछ वाक्य निकाल दिये जायँ, तो भी अन्तिम प्रभाव उसका ज्यों का-त्यों रहे, तो समझना होगा कि इस कहानी में संक्षिप्तता का गुण नहीं है। इसलिए पश्चिम में संक्षिप्तता पर अत्याधिक ध्यान रक्खा जाता है। इस विषय में प्रतियोगिता भी चलती है। देखा जाता है कि पढ़ने में कम-से-कम समय लेने वाली कहानी भी कितनी महत्व की है। प्रायः पत्र-पत्रिकाओं में ऐसी भी कहानियाँ लिखी जाती हैं, जो पाँच मिनट में पढ़ी जा सकती हैं।

हिन्दी कहानी की जन्म-कथा

पुरातनकाल में सबसे पहले भारतीय साहित्य में ही कहानी का

जन्म हुआ । ऋग्वेद, उपनिषद्, सांख्य, पंचतंत्र, नन्दीसूत्र तथा जातकों में कथासाहित्य भरा पड़ा है । नैतिक तथा धार्मिक सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिये कथा के रूप में जो उदाहरण काम में लाये जाते थे, वे दृष्टान्त कहलाते थे । उनमें मुख्यतया सत्य का आधार रहता था । तदनन्तर कुछ उदाहरण कल्पना के आधार से बनाये जाने लगे, वे उपाख्यान कहलाये ।

ग्यारहवीं शताब्दी से पहले बृहत्कथामञ्जरी प्रकाशित हो चुकी थी । तदनन्तर कथा-सरित्सागर की रचना हुई । चौदहवीं शताब्दी से पूर्व हितोपदेश की रचना हुई । 'सिंहासन द्वात्रिंशत्पुत्तलिका' और 'दसकुमारचरित' संस्कृत साहित्य के प्रामाणिक कथा-ग्रंथ हैं । फारस की 'सिंदबाद जहाजी' की कथा हमारी विन्दक जातक कथा पर आधारित है । 'सहस्ररजनीचरित्र' का आधार 'बृहत्कथा' है ।

चौदहवीं शताब्दी के बाद हमारे यहाँ कथा-साहित्य की प्रगति रुक गई । हिन्दी में जो कहानियाँ आईं, वे पहले पहल संस्कृत से आईं । हिंदी की पहली कहानी इंशाअल्लाखाँ-लिखित 'रानी केतकी की कहानी' है । इसके बाद उन्नीसवीं सदी के तृतीय चरण में राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द ने 'राजा भोज का सपना' लिखा । चतुर्थ-चरण में भारतेंदु बाबू हरिश्चन्द ने 'एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती' लिखी । पर उनकी यह कहानी अधूरी ही रह गई ।

उन्नीसवीं शताब्दी में फ्रेंचभाषा में कथा-साहित्य का अच्छा विकास हुआ । वोल्तेर, अलैकजेंदर ड्यूमा, बालजक, एमिल ज़ोला, तथा गी-द-मोपांसां उस युग के प्रमुख कथाकार थे । रूसी-साहित्य में कथा-साहित्य का विकास कुछ बाद से हुआ । तुर्गनेव, एण्टन चेखव, तथा मैक्सिम गोर्की ने रूसी-साहित्य में अमर कथाओं की सृष्टि की । टाल्स्टाय तथा डोस्टोवस्की ने उपन्यास-लेखन में अतुलनीय यश प्राप्त किया । कहानियां यद्यपि थोड़ी सी टाल्स्टाय ने भी लिखीं हैं, पर कला की अपेक्षा उनमें लोकहित का प्रचार-भाग प्रमुख है । डोस्टोवस्की मनो-

वैज्ञानिक उपन्यास-लेखकों में आज भी अग्रणी हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी में जब योरुप में कहानी का पूर्ण विकास हो रहा था, हिन्दी में आधुनिक-कहानी ने जन्म भी नहीं ले पाया था। बीसवीं सदी के प्रारम्भ में आधुनिक कहानी का परिचय वंगभाषा और योरुपियन भाषाओं की कहानियों के अंगरेजी अनुवाद द्वारा प्राप्त हुआ। पंडित किशोरीलाल गोस्वामी तथा बाबू गिरिजाकुमार घोष ने कुछ अच्छी कहानियाँ लिखीं। परन्तु अब भी आधुनिक कहानी हमारे यहाँ मौलिक रूप में नहीं आ सकी थी। पर उन दिनों उर्दू में स्व० प्रेमचन्द जी नवाबराय के नाम से कलात्मक कहानियाँ लिख रहे थे। सन् १९१० तक यही दशा चली। इसके थोड़े ही अन्तर से 'कौशिक' जी और 'प्रसाद' जी मौलिक कथाकार के रूप में प्रतिष्ठित हुए। तदनन्तर श्री प्रेमचन्द, पंडित ज्वालादत्त शर्मा तथा श्री सुदर्शनजी ने भी हिन्दी कहानी क्षेत्र में पदार्पण किया।

जन्मकाल के आदर्श

जिन आदर्शों से प्रेरित होकर हिन्दी कहानी की सृष्टि हुई, वे आदर्श थे, बुराइयों के लिए दण्ड और सत्कर्मों के लिए पुरस्कार। इस तरह आदिकाल के हमारे कहानीकार कलाकार का नहीं, वरन् एक प्रचारक का कार्य करते रहे। समाज का सुधार उनका एकमात्र लक्ष्य रहा। वे एक श्रेणी का चित्रण करते रहे, जीवनव्यापी व्यक्तित्व का नहीं। चरित्र-सृष्टि की ओर उन्होंने नहीं देखा। अनेक लेखकों ने प्रायः एक ही प्रकार का समाज लिया, एक ही प्रकार की अनुभूतियाँ उन्होंने साहित्य को दीं। प्रायः एक ही तरह के चरित्र वे ग्रहण करते रहे। इसका फल यह हुआ कि अपने कलाकार के व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा, सर्वथा पृथक् रूप से, वे नहीं कर सके। न तो वे सर्वथा मौलिक चरित्र-सृष्टि कर सके, न सजीवता के सौन्दर्य का निर्माण। मानव प्रकृति को न देखकर देखा उन्होंने समाज के वर्ग-विशेष के हित को। जीवन के

अक्षय तत्त्व की व्याख्या न करके उन्होंने रूढ़िवाद-गर्भित जीवन का चित्रण किया।

पर आज की कहानी उस युग को स्पष्टरूप से पार करती हुई जान पड़ती है। आज का यथार्थवादी कलाकार प्रकृति को कठोर और निर्गम देखता है। सत्कर्मों के लिए हम को सदा पुरस्कार ही नहीं मिलता, न दुष्कर्मों के लिए सदा दण्ड ही, वह जीवन के इस कठोर सत्य की व्याख्या करता है। जीवन में जो नग्न तथा मूर्त सत्य है, वह उसका तत्त्वदर्शी है। पुण्य तथा सत्कर्म के लिए उसकी कला में कोई भावुकता-पूर्ण प्रेम नहीं है। वह मानवात्मा का अध्ययन करता है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण उसकी विशेषता है।

आदर्शवाद और यथार्थवाद

हमारे पूर्ववर्ती कलाकारों का वह विश्वास रहा है कि यथार्थवाद में हमारी दुर्बलताओं, विषमताओं और क्रूरताओं का नग्न चित्रण होता है। यथार्थवादी हमको निराशावादी बना देता है, मानव-चरित्र से उसका विश्वास उठ जाता है। उसके चारों ओर बुराई-ही-बुराई नज़र आने लगती है। मनुष्य की दुर्बलताओं का चित्रण करने में शिष्टता की सीमाओं से वह आगे बढ़ जाता है; पर यथार्थवादी विश्वास इसके विरुद्ध है। जो कला जीवन की यथार्थ व्याख्या नहीं करती, जो हमें इस जगत् का प्राणी न मानकर हमें केवल स्वप्नों के हिंडोलों में झुलाना जानती है, उसके लिए, कहानी के लिए वह सर्वथा अग्राह्य और असंगत है। कहानी को वह जीवन के अधिक निकट-बल्कि पूर्ण जीवनमय मानता है। उसका कथन है मनुष्य जहां दुर्बल है, कहानी में उसे वहाँ दुर्बल ही रहना उचित है। वही स्वाभाविक है, यथार्थ है, हमारे ही जीवन का है। वह अगर उठता है, तो हम समझ लेंगे, हम उठ रहे हैं। परन्तु यदि वह इतना ऊँचा है कि उसको छूने के लिए हमें काल्पनिक उड़न-खटोले की आवश्यकता हो, तो वह हमारा नहीं है—हमारे जगत् का नहीं है।

रह गई बात यथार्थवाद में निराशावाद की । सो वह इस पर भी विश्वास नहीं करता । उसकी धारणा है कि आदर्शवादी का आधार एक ऐसी छाया है, जिसको मनुष्य कभी उपलब्ध कर नहीं पाता—छू नहीं सकता । वह सदा आगे ही आगे जो रहती है । वह सोचता है कि आदर्श-वाद हमें सिखलाता है, थोड़े में संतोष और अधिक के प्रति विरक्ति । उसने हमें अकर्मण्य बनाया है । उसने हमें सात्विकता के मिथ्याभिमान की ओर घसीट-घसीटकर मिट्टी में मिलाया है । वह हमें भाग्यवादी बनाता है । संघर्ष और जीवन-युद्ध में वह हमें पराजित बनाने का कारण हुआ है । जीवन के भीतर जो पौरुष है—दानव है, उसने उसको जगाया नहीं—सोते ही रहने दिया है । पर यथार्थवाद से सम्पूर्ण मान-वता की शक्ति हमें प्राप्त होती है ।

यथार्थवादी दृष्टि है कि हमारे पूर्ववर्ती कलाकारों ने मनुष्य की भावुकता के नाम पर सदाचार की ऐसी कठोर और अव्यावहारिक व्याख्या की है कि जीवन का यथार्थ-स्वरूप हमारे साहित्य से दूर-ही-दूर बना रहा है । देहात के किसी किसान में भी वही दुर्बलताएँ हो सकती हैं, जो हमारे नागरिकों में हुआ करती हैं; परन्तु हिन्दी कहानी के शैशवकाल में हमने सदा यही पढ़ा है कि किसानों का चरित्र देवोपम है और नागरिकों का सर्वदा पैशाचिक । हिन्दी-कहानी के आदर्शवाद में भारतीय नारी-हृदय के अत्याचार त्रस्त जीर्ण-जर्जर स्वरूप की ओर ध्यान ही नहीं दिया । उसके अधिकार को लेकर हमारे आदर्शवादी लेखक आंखें रखते हुए भी नेत्रहीन रहे हैं । हिन्दी के कथा साहित्य में भारतीय नारी का व्यक्तिगत अस्तित्व सच पूछिये तो स्वीकार ही नहीं किया गया ।

हिन्दी कहानी में यथार्थवाद की किरणमाला मुख्यरूप से बंग देश से आई है । और उसका सर्वाधिक श्रेय श्री शरच्चन्द्र को है, मनुष्य के भीतर तृष्णा और निराशा का जो ज्वालामुखी है, दैन्य और दुर्बलताओं का जो विषधर है, गरीबी और परवशता की जो महानाश-

कारी बुभुक्षा है, कुटिलता और कपटाचार की जो दानवता है और इन सारी परिस्थितियों में महामानव का जो अहंकार है, दर्प है त्याग और उत्सर्ग है, शरच्चन्द्र उसका चित्रकार है। नारी और हिन्दू नारी की सम्पूर्ण और सर्वव्यापक अनुभूति शरच्चन्द्र के साहित्य की देन है।

आगे की ओर

पर आज की कहानी पुरातन को पार कर आयी है। जीवन के काल्पनिक सत्यों, स्वप्नों के धूमिल भावना-चित्रों और जीवन को नाश की ओर ले जानेवाली विरक्ति के जर्जर आदर्शों से ओत-प्रोत कहानियाँ हमारी आज की प्रेरणा नहीं हो सकतीं। सत्य आज इतना सस्ता नहीं है कि सहज ही हमारी कल्पनाएं साकार हो जाती हों। नियति के व्यङ्गय का अट्टहास मानवात्मा की छाती पर कितने पद-प्रहार कर रहा है, नित्य हम आंखों से देखते हैं, तो भी हम सोच लेते हैं कि हम सुखी हैं, आशा की पावन गोद कौन कह सकता कि प्यारी नहीं होती ? भविष्य की उजली रूप-रेखाएँ कौन कहता है कि नारी स्वप्न है ? किंतु सीमाओं में घिर कर सफलता यदि जन-जन के लिए चिरसम्भव भी हो जाय, तो भी प्रश्न यह है कि नियति के व्यंग्य से हम इन्कार कर सकते हैं ;

महाकवि गेटे का कथन है—

"कला वही है जो परम सत्य के रहस्य को आकार प्रदान कर सके सौन्दर्य, चाहे वह प्रकृति का हो, चाहे शरीर, चरित्र अथवा आत्मा का मूल में एक ही है। वेदना कभी संकीर्ण-पथगामिनी नहीं बनी। यदि परिष्कृत मन से हम उसके विस्फोट के आदि सत्य को देख सकें, तो हमें पता चलेगा कि 'कलाकार के लिए ही समय है, और वह समय है दु:ख' !"

अस्तु, कथा की भिति में यदि दुख अथवा निराशा की झलक मिले, तो वह सर्वथा स्वाभाविक है।

मोहन के पिता डिप्टी कलक्टर थे। जिस समय उनका देहावसान हुआ, उस समय तीस हजार की सम्पत्ति मोहन के उत्तराधिकार में थी।

परिवार में थीं दूसरी माता उससे उत्पन्न दो भाई। बी० ए० की पढ़ाई के दिन चल रहे थे और मोहन सोचता था कि वह आई० सी० एस० होगा; किन्तु पिता के स्वर्गवास और परीक्षा में फेल हो जाने के बाद अगले वर्षों में उसको एक हाईस्कूल में पचास रुपये मासिक की अध्यापकी करनी पड़ी। जो पाँच बर्ष के बाद छूट भी गयी। और आज मोहन को चालीस रुपये मासिक की प्राप्ति भी दुर्लभ है। यहाँ प्रश्न उठता है अपराध किसका है ?

प्रगतिवाद

लेकिन क्या इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य परिस्थितियों के सामने हार स्वीकार करके रो दे ? नहीं, यह कायरता है। परेशानियाँ अगर जीवन में न हों, तो जीवन का कोई महत्व नहीं है। अयाचित और अप्रत्याशित रूप से ट्रेजिडी अगर जीवन पर लद ही बैठे, क्यों न मनुष्य इतना निर्मम बन जाय कि उस पर एक बार विद्रूप हास कर उठे ! कटुता से भरे सत्य और असफलता-पूर्ण जीवन पर और न सही तो मनुष्य अपने विवेक का ध्वंसक प्रयोग तो कर ही सकता है ?

किन्तु वस्तुवादी और विद्रोही कलाकार की स्थिति दूसरी है। वह मानता है कि नियति के अनुशासन को मनुष्य ने अपनी ही दुर्बलताओं से अपने ऊपर लाद रक्खा है। आज का समाज ही इसका दोषी है। इसे समूल नष्ट कर डालो और इसके स्थान पर दूसरा भवन खड़ा कर दो। परवाह नहीं उस महाध्वंश के बाद हमारा निवास प्रारम्भ में, पर्ण-कुटीर में ही हो। विश्व का जाग्रत कलाकार आज इन्ही प्रवृत्तियों के साथ बह रहा है। परिणति कहाँ है, कोई नहीं जानता ? मानो भविष्य के हाथ में अपने को सौंप देना-भर उसने स्वीकार कर लिया है। विरोध केवल है तो वर्तमान से। कल का निराशावादी कहता था, हमारे सामने

तो अंधकार है; किन्तु आज का निराशावादी ऐसा नहीं मानता। वह रोता भी है तो साधारण आँसुओं से नहीं, रक्त के आंसुओं से। जो मूर्ति बनने से पहले ही रो देना चाहती है, उसे सह्य नहीं है। वह उसे तोड़ डालेगा। वे प्रयत्न, जो मरण से पहले अधूरे हैं, असफल भले ही मान लिये जायँ; किन्तु जीवन का अन्तिम साँस के साथ आशा और भविष्य के अनिश्चित पथ में भी, उसके लिए सम्बल तो हैं ही।

रागिणी सत्रह वर्ष के लघु वय में विधवा हो गई थी। पिता ने चालीस वर्ष के वय में विधुर हो जाने पर भी दूसरा विवाह कर लिया। आज का समाज आँखों पर पट्टी बाँधकर, इस पिशाच-वृत्ति के लिए कहता है, यह भाग्य का खेल है। यहाँ प्रश्न उठता है कि इसे भाग्य बनाया किसने ? राजेन्द्र के घर से उसका एक अन्तरंग सखा अनिल चुप-चाप सौ रुपये का नोट उठा ले जाता है। राजेन्द्र समझता है कि अनिल ऐसा कर नहीं सकता; क्योंकि वह सभ्य है—सच्चा है। वह उससे पूछना भी नहीं चाहता और भूखी नंगी बीमार माँ की चिकित्सा के लिए राजेन्द्र का नौकर जगन्नाथ जब एक दिन उसका पुराना फाउन्टेनपेन उठा ले गया और आठ आने पैसे में उसने बेचकर अपना काम चलाया तो जगन्नाथ चोर हो गया। और अनिल था सभ्य !

राजाबहादुर का कुत्ता भी दूध पीता है। किन्तु उनकी कोठी के बग़ल में रहने वाले मजदूर गयादीन का बच्चा दूध पाये बिना मर जाता है। कुत्ते और गयादीन के नवजात शिशु में दूध पाने का वास्त-विक अधिकारी कौन है, समाज की आधुनिक व्यवस्था इस विषय में मौन है ? कह लीजिये कि सब भाग्य का खेल है; किन्तु भाग्य की रूप-रेखा के मूल में क्या हमारे सामाजिक संगठन की वे पिशाचमुखी दीवालें नहीं हैं जिनका ईंट चूना पानी के योग से नहीं, पीड़ित मानवता के खून से निर्मित हुआ है।

अब यहां प्रश्न उठता है कि क्या हमारे कथा साहित्य में आज के चरम पीड़ित समाज की तसवीरें साफ़ साफ़ उतरी हैं ? क्या भारत की

वास्तविक आत्मा सिनेमागृहों, होटलों, बंगलों और उन गगनचुम्बी अट्टालिकाओं में ही निवास करती है, जो प्रमादग्रस्त विलास और बेशर्मी से भरे अट्टहास को विवश, निराश्रित, असहाय और हीन जीवन की जनता पर बिखेरती चलती है ! क्या हम इस बात का दावा कर सकते हैं कि हिन्दी कथा-साहित्य में हमने साधारण जनता का चित्र दिया है !

आज मानवता की पुकार है कि जीवन में परिपूर्णता आ जाय। और वह तभी सम्भव है, जब कि साहित्य में जीवन की सच्ची तसवीरें उतारी जाँय। इसके लिए सब से अधिक उत्तरदायी कथा-साहित्य है। जो शिव है, वही सुन्दर है और वही सत्य कटु सत्य है, तो उस पर परदा डालकर या उसे शुगरकोटेड बनाकर 'कथाकार' जिस सौन्दर्य्य की खोज करता है, स्थूल होकर वह सदा काला ही रहेगा और भ्रामात्मक बनकर वह वंचक ही कहलायेगा।

किन्तु इस कथन का यह अभिप्राय न मान लिया जाय कि हिन्दी कथा की पृष्ठ-भूमि में समाज और जीवन की आधुनिक समस्याएं कतई आ नहीं रही हैं। विकास की नव-नव किरणें जागरण का शुभ संदेश लेकर हमारे कथा-साहित्य में निस्सन्देह फूट रही हैं। जीवन में आशा, भविष्य के पथ में उज्ज्वलता, साहित्य में क्रान्ति और कथाकारों में नव-नवस्फूर्ति, प्रेरणा और दृष्टि हमें स्पष्ट देख पड़ती है।

कानपुर **—भगवती प्रसाद वाजपेयी**

दिनांक २० सितम्बर १९६०

प्रेमचन्द

१८८०-१९३६ ई०

प्रेमचन्द उपन्यास सम्राट् होते हुये भी सफल कहानीकार थे। आप उपन्यासों की अपेक्षा कहानी-कला में अधिक सिद्ध-हस्त थे। उपन्यासों की रचना के लिये उनको ढाँचा स्वयं तैयार करना पड़ा और देश का तात्कालिक सामाजिक रूप ही चित्रित कर सके; परन्तु कहानी-कार के नाते मानव-जीवन का एकाकी चित्रण बड़ी सुन्दरता से खींचा इसी कारण आपकी कहानियाँ अधिक लोक-प्रिय बनीं।

जीवन—आपका जन्म वाराणसी (बनारस) के निकट लम्ही ग्राम के निर्धन परिवार में हुआ था। पिता डाकखाने के कर्मचारी थे। अल्पावस्था में ही आपका विवाह कर दिया गया। पिता की मृत्यु के उपरान्त गृहस्थी का भार आ पड़ा। पाँच रुपये की ट्यूशन आपकी शिक्षा में सहायक बनी। जीवन संघर्ष की भट्टी में जलते हुए किसी प्रकार बी. ए. की डिग्री ली। इस बीच धनपतराय से नवाबराय और फिर प्रेमचन्द नाम से लिखना आरम्भ किया। सन् १९०७ ई० में आपने कहानी लिखना आरम्भ कर दिया था। प्रधानाध्यापक एवं डिप्टी-इंस्पेक्टर भी कई स्थानों पर बनना पड़ा और फिर प्रेस के मालिक बने। गाँधी जी के आन्दोलनों का आपके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ा और लखनऊ में चरखों की दूकान की और जीवन के अन्तिम दिनों में 'हँस' मासिक पत्रिका का प्रकाशन किया।

रचनाएं—आपने सबसे पहले समाज की बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न किया और उसमें सफलता मिली। उसके लिये आपको 'गोदान' 'प्रेमाश्रनम' 'अहंकार' 'कर्मभूमि' 'गबन' 'निर्मला' 'सेवासदन' 'प्रतिज्ञा' 'बरदान' 'कायाकल्प' 'रंगभूमि' और मंगलसूत्र (अधूरा) उपन्यास और 'कर्बला, संग्राम', नाटक, 'कलम', 'तलवार' और 'त्याग' 'कुछ विचार'

नाम के निबन्ध संग्रह तथा तीन सौ कहानियाँ लिखीं। वे, लगभग सभी, कहानियाँ मानसरोवर के आठ भागों में संग्रहीत हैं। इनके अतिरिक्त 'प्रेमपच्चीसी' 'प्रेम द्वादशी' आदि संग्रहों में भी आपकी श्रेष्ठ कहानियाँ संग्रहीत हैं।

भाषा-शैली—आपकी भाषा सरल हिन्दी का सुन्दर रूप है। चूँकि आप मौलवी से पंडित बने। इसलिए आपकी भाषा में सामंजस्य पाया जाता है। आपकी भाषा में आकाश गंगा के प्रकाशित नक्षत्रों की चाहे झिलमिलाहट न हो पर करुण कुटीर की दीप शिखा अवश्य है। आप को कहानी साहित्य में वर्णात्मक शैली में अत्याधिक सफलता मिली है जिसके कारण वर्णन में सदैव आकर्षण बना रहता है।

कहानी-साहित्य की विशेषता—आप का कहानी-साहित्य चरित्र एवं वातावरण प्रधान है। आपकी लेखनी ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक, पौराणिक, राजनीतिक एवं पारिवारिक विषयों पर चली। अपनी कहानियों में आपकी झलक प्रथम उपदेशक, मध्य में व्याख्याता और अन्त में यथार्थवादी के रूप में दृष्टिगत हुई। कहीं-कहीं पर मनोवैज्ञानिकता के भी दर्शन हो जाते हैं। आपका साहित्य मानवता-वादी है। अनेक विदेशी भाषाओं में आपके साहित्य का अनुवाद हो चुका है। आपका पात्र-चित्रण सब से भिन्न है; क्योंकि आपने स्वाभाविक चरित्र चित्रण किया है। इस वर्तमान युग का सजीव चित्रण करने के नाते ही आप युग-स्रष्टा कहलाये हैं।

प्रस्तुत-कहानी--'प्रायश्चित' एक मनोवैज्ञानिक कहानी है। इसके कथानक का आधार मन का अन्तर्द्वन्द्व है। एक अपराधी किस प्रकार परोपकार द्वारा अपने अपराध की कालिमा को धोना चाहता है? यही सब कुछ मदारीलाल के चरित्र चित्रण में दिखाया गया है। ईर्ष्या का परिणाम कहां तक निकल सकता है? मानव कभी नहीं सोचता अन्त में उसे मदारीलाल की तरह सारा जीवन प्रायश्चित ही करना पड़ता है।

मनोवैज्ञानिक

प्रायश्चित

प्रेमचन्द

दफ्तर में जरा देर से आना अफसरों की शान है। जितना ही बड़ा अधिकारी होता है, उतनी ही देर में आता है, और उतने ही सवेरे जाता भी है। चपरासी की हाजिरी चौबीसों घण्टे की। वह छुट्टी भी नहीं जा सकता। अपना एवज देना पड़ता है। खैर, जब बरेली बोर्ड के हेड क्लर्क बाबू मदारीलाल ग्यारह बजे दफ्तर आये, तब मानो दफ्तर नींद से जाग उठा। चपरासी ने दौड़कर पैर गाड़ी ली, अरदली ने दौड़कर कमरे की चिक उठा दी और जमादार ने डाक की किश्ती मेज पर लाकर रख दी। मदारीलाल ने पहला ही सरकारी लिफाफा खोला था कि उनका रंग फक हो गया। वे कई मिनट तक आश्चर्यान्वित हालत में खड़े रहे, मानो सारी ज्ञानेन्द्रियां शिथिल हो गई हों। उन पर बड़े-बड़े आघात हो चुके थे; पर इतने बदहवास वे कभी न हुए थे। बात यह थी कि बोर्ड के सेक्रेटरी की जो जगह एक महीने से खाली थी, सरकार ने सुबोधचन्द्र को यह जगह दी थी और सुबोधचन्द्र वह व्यक्ति था, जिसके नाम ही से मदारीलाल को घृणा थी। वह सुबोधचन्द्र, जो उनका सहपाठी था, जिसे जगह देने की उन्होंने कितनी ही बार चेष्टा की; पर कभी सफल न हुए थे। वही सुबोध आज उनका अफसर होकर आ रहा था। सुबोध की उधर कई सालों से कोई खबर न थी। इतना मालूम था कि वह फौज में भरती हो गया था। मदारीलाल ने समझा था—वहीं मर गया होगा; पर आज वह मानो जी उठा और सेक्रेटरी होकर

आ रहा था। मदारीलाल को उसकी मातहती में काम करना होगा। इस अपमान से तो मर जाना कहीं अच्छा है। सुबोध को स्कूल और कालेज की सारी बातें अवश्य ही याद होंगी। मदारीलाल ने उसे कालेज से निकलवाने के लिए कई बार मन्त्र चलाये, झूठे आरोप लगाये, बदनाम किया। क्या सुबोध सब कुछ भूल गया होगा; नहीं, कभी नहीं ? वह आते ही आते पुरानी कसर निकालेगा। मदारी बाबू को अपनी प्राण रक्षा का कोई उपाय न सूझता था।

मदारी और सुबोध के ग्रहों में ही विरोध था। दोनों एक ही दिन, एक ही शाला में भरती हुये थे, और पहले ही दिन से दिल में ईर्ष्या और द्वेष की वह चिनगारी पड़ गई, जो आज बीस वर्ष बीतने पर भी न बुझी थी। सुबोध का अपराध यही था कि वह मदारीलाल से हर एक बात में बढ़ा हुआ था। डील-डौल, रूप रंग, रीति-व्यवहार, विद्या बुद्धि ये सारे मैदान उसके हाथ थे। मदारीलाल ने उसका यह अपराध कभी क्षमा नहीं किया। सुबोध बीस वर्ष तक निरन्तर उनके हृदय का काँटा बना रहा। जब सुबोध डिग्री लेकर अपने घर चला गया और मदारीलाल फेल होकर इस दफ्तर में नौकर हो गये, तब उनका चित्त शान्त हुआ। किन्तु जब यह मालूम हुआ कि सुबोध बसरा जा रहा है, तब तो मदारीलाल का चेहरा खिल उठा। उनके दिल से वह पुरानी फाँस निकल गई। पर हा हतभाग्य ! आज वह पुराना नासूर शतगुण टीस और जलन के साथ खुल गया। आज उनकी किस्मत सुबोध के हाथ में थी। ईश्वर कितना अन्यायी है ! विधि इतना कठोर !

जब जरा चित्त शान्त हुआ, तब मदारी ने दफ्तर के क्लर्कों को सरकारी हुक्म सुनाते हुए कहा—अब आप लोग जरा हाथ पाँव सँभाल कर रहिएगा। सुबोधचन्द्र वे आदमी नहीं हैं, जो भूलों को क्षमा कर दें।

एक क्लर्क ने पूछा—क्या बहुत सख्त हैं ?

मदारीलाल ने मुस्करा कर कहा–वह तो आप लोगों को दो चार दिन

ही में मालूम हो जायगा। मैं अपने मुँह से किसी की क्यों शिकायत करूँ? बस चेतावनी दे दी कि जरा हाथ पाँव सँभाल कर रहिएगा। आदमी योग्य हैं, पर बड़ा ही क्रोधी, बड़ा दम्भी। गुस्सा तो उसकी नाक पर रहता है। खुद हजारों हजम कर जाए और डकार तक न लें; पर क्या मजाल कि कोई मातहत एक कौड़ी भी हजम करने पाए। ऐसे आदमी से ईश्वर ही बचाये। मैं तो सोच रहा हूँ कि छुट्टी लेकर घर चला जाऊँ। दोनों वक्त घर पर हाजिरी बजानी होगी। आप लोग आज से सरकार के नौकर नहीं सेक्रेटरी साहब के नौकर हैं। कोई उनके लड़के को पढ़ायेगा, कोई बाजार से सौदा सुलफ लायेगा और कोई उन्हें अखबार सुनायेगा और चपरासियों के तो शायद दफ्तर में दर्शन ही न हों।

इस प्रकार सारे दफ्तर को सुबोधचन्द्र की तरफ से भड़का कर मदारीलाल ने अपना कलेजा ठण्डा किया।

२

इसके एक सप्ताह बाद सुबोधचन्द्र गाड़ी से उतरे तब स्टेशन पर दफ्तर के सब कर्मचारियों को हाजिर पाया। सब उनका स्वागत करने आये थे। मदारीलाल को देखते ही सुबोध लपक कर उनके गले से लिपट गये और बोले—तुम खूब मिले भाई! यहाँ कैसे आये? ओह! आज एक युग के बाद भेंट हुई।

मदारीलाल बोले—यहाँ जिला बोर्ड के दफ्तर में हेड क्लर्क हूँ। आप तो कुशल से हैं?

सुबोध—अजी, मेरी न पूछो। बसरा, फ्रांस, मिस्र और न जाने कहाँ कहाँ मारा मारा फिरा। तुम दफ्तर में हो, यह बहुत ही अच्छा हुआ। मेरी तो समझ ही में न आता था कि कैसे काम चलेगा। मैं तो बिल्कुल कोरा हूँ; मगर जहाँ जाता हूँ, मेरा सौभाग्य भी मेरे साथ जाता है। बसरे में सभी अफसर खुश थे। फ्राँस में भी खूब चैन किये। दो साल में कोई पच्चीस हजार रुपये बना लाया और सब उड़ा दिया।

वहाँ से आकर कुछ दिनों आपरेशन के दफ्तर में मटरगस्त करता रहा। यहां आया तब तुम मिल गए। (क्लर्कों को देखकर) ये लोग कौन हैं। ?

मदारी के हृदय में बर्छियाँ सी चल रही थीं। दुष्ट पच्चीस हजार बसरे से कमा लाया। यहाँ कलम घिसते घिसते मर गए और पाँच सौ भी न कमा सके। बोले—ये लोग बोर्ड के कर्मचारी हैं। सलाम करने आये हैं।

सुबोध ने उन सब लोगों से बारी बारी से हाथ मिलाया और बोला — आप लोगों ने व्यर्थ यह कष्ट किया। बहुत आभारी हूँ। मुझे आशा है कि आप सब सज्जनों को मुझ से कोई शिकायत न होगी। मुझे अपना अफसर नहीं, अपना भाई समझिये। आप सब लोग मिलकर इस तरह काम कीजिए कि बोर्ड की नेकनामी हो और मैं भी सुर्खरू रहूँ। आपके हेड क्लर्क साहब तो मेरे पुराने मित्र और लंगोटिया यार हैं।

एक वाक्चतुर क्लर्क ने कहा—हम सब हजूर के ताबेदार हैं। यथाशक्ति आपको असन्तुष्ट न करेंगे; लेकिन आदमी ही हैं, अगर कोई भूल हो जाय, तो हजूर उसे क्षमा करेंगे।

सुबोध ने नम्रता से कहा—यही मेरा सिद्धान्त है और हमेशा से यही सिद्धान्त रहा है। जहाँ रहा, मातहतों से मित्रों का सा बर्ताव किया। हम और आप दोनों ही किसी तीसरे के गुलाम हैं। फिर रौब कैसा और अफसरी कैसी ; हां, हमें नेक नियती के साथ अपना कर्त्तव्य पालना करना चाहिए।

जब सुबोध से विदा होकर कर्मचारी लोग चले, तब आपस में बातें होने लगीं ?

"आदमी तो अच्छा मालूम होता है।"

"हेड क्लर्क के कहने से तो ऐसा मालूम होता था कि सब को कच्चा ही खा जायगा।"

"पहले सभी ऐसी ही बातें करते हैं।"

"ये दिखाने के दांत हैं।"

३

सुबोध को आये एक महीना गुजर गया। बोर्ड के क्लर्क, अरदली, चपरासी सभी उसके बर्ताव से खुश हैं। वह इतना प्रसन्नचित्त है, इतना नम्र है कि जो उससे एक बार मिलता है, सदैव के लिए उसका मित्र हो जाता है। कठोर शब्द तो उनकी जबान पर आता ही नहीं। इन्कार को भी वह अप्रिय नहीं होने देता, लेकिन द्वेष की आँखों में गुण और भी भयंकर हो जाता है। सुबोध के ये सारे सद्गुण मदारीलाल की आंखों में खटकते रहते हैं। उसके विरुद्ध कोई न कोई गुप्त षड्यन्त्र रचते ही रहते हैं। पहले कर्मचारियों को भड़-काना चाहा, सफल न हुए। बोर्ड के मेम्बरों को भड़काना चाहा, मुँह की खायी। ठेकेदारों को उभारने का बीड़ा उठाया, लज्जित होना पड़ा। वे चाहते थे कि भुस में आग लगाकर दूर से तमाशा देखें। सुबोध से यों हँसकर मिलते, यों चिकनी-चुपड़ी बातें करते मानो उसके सच्चे मित्र हैं; पर घात में लगे रहते। सुबोध में सब गुण थे पर आदमी पहचानना न जानते थे। वे मदारीलाल को अब भी अपना दोस्त सम-झते हैं।

एक दिन मदारीलाल सेक्रेटरी साहब के कमरे में गए। तब कुरसी खाली देखी। वे किसी काम से बाहर चले गए थे। उनकी मेज पर पाँच हजार के नोट पुलिन्दों में बँधे हुए रखे थे। बोर्ड के मदरसों के लिए कुछ लकड़ी के सामान बनवाए गए थे। उसी के दाम थे। ठेकेदार वसूली के लिए बुलाया गया था। आज ही सेक्रेटरी साहब ने चैक भेज कर खजाने से रुपये मँगवाये थे। मदारीलाल ने बरामदे में झाँक कर देखा, सुबोध का कहीं पता नहीं। उनकी नीयत बदल गयी। ईर्ष्या में लोभ का सम्मिश्रण हो गया। काँपते हुए हाथों से पुलिन्दे उठाए;

पतलून की दोनों जेबों में भरकर तुरन्त कमरे से निकले और चपरासी को पुकार कर बोले—बाबूजी भीतर हैं ? चपरासी आज कुछ ठेकेदार से वसूल करने की खुशी में फूला हुआ था। सामने वाले तंबोली की दूकान से आकर बोला—जी नहीं, कचहरी में किसी से बातें कर रहे हैं। अभी अभी तो गये हैं।

मदारीलाल ने दफ्तर में आकर एक क्लर्क से कहा—यह मिसिल ले जाकर सेक्रेटरी साहब को दिखाओ।

क्लर्क मिसिल लेकर चला गया। जरा देर में लौट कर बोला—सेक्रेटरी साहब कमरे में न थे। फाइल मेज पर रख कर आया हूँ।

मदारीलाल ने मुँह सिकोड़ कर कहा—कमरा छोड़ कर कहाँ चले जाया करते हैं, किसी दिन धोखा उठायेंगे ?

क्लर्क ने कहा—उनके कमरे में दफ्तर वालों के सिवा जाता ही कौन है ?

मदारीलाल ने तीव्र स्वर में कहा—तो क्या दफ्तर वाले सब के सब देवता हैं ? कब किसकी नीयत बदल जाए, कोई नहीं कह सकता ? मैंने छोटी छोटी रकमों पर अच्छों-अच्छों की नीयतें बदलते देखी हैं। इस वक्त हम सभी साह हैं; लेकिन अवसर पाकर ही शायद कोई चूके। मनुष्य की यही प्रकृति है। आप जाकर उनके कमरे के दोनों दरवाजे बन्द कर दीजिए।

क्लर्क ने टाल कर कहा—चपरासी तो दरवाजे पर बैठा हुआ है।

मदारीलाल ने झुँझला कर कहा—आप से मैं जो कहता हूँ, वह कीजिए। कहने लगे, चपरासी बैठा हुआ है। चपरासी कोई ऋषि है, मुनि है ? चपरासी ही कुछ उड़ा दे, तो आप उसका क्या लेंगे ? जमानत भी है तो तीन सौ की। यहां एक-एक कागज लाखों का है।

यह कहकर मदारीलाल खुद उठे और दफ्तर के द्वार दोनों तरफ से बन्द कर दिए। जब चित्त शान्त हुआ तब नोटों के पुलिन्दे जेब से निकालकर एक आलमारी में कागजों के बीच छिपा कर रख दिए।

फिर आकर अपने काम में व्यस्त हो गए।

सुबोधचन्द्र कोई घण्टे भर बाद लौटे तब उनके कमरे का द्वार बन्द था। दफ्तर में आकर मुस्कराते हुए बोले—मेरा कमरा किसने बन्द किया है, भाई क्या मेरी बेदखली हो गयी ?

मदारीलाल ने खड़े होकर मृदु तिरस्कार दिखाते हुए कहा—साहब, गुस्ताखी माफ हो, आप जब कभी बाहर जायँ, चाहे एक ही मिनट के लिए क्यों न हो, तब दरवाजा बन्द कर दिया करें। आपकी मेज पर रुपये पैसे और सरकारी कागज-पत्र बिखरे पड़े रहते हैं, न जाने किस वक्त किसकी नीयत बदल जाय। मैंने अभी सुना है कि आप कहीं बाहर गये हुए हैं, तब दरवाजे बन्द कर दिए।

सुबोधचन्द्र द्वार खोलकर कमरे में गए और एक सिगार पीने लगे। मेज पर नोट रखे हुए हैं, इसकी खबर ही न थी।

सहसा ठेकेदार ने आकर सलाम किया। सुबोध कुर्सी से उठ बैठे और बोले—तुमने बहुत देर कर दी, तुम्हारा ही इन्तजार कर रहा था। दस ही बजे रुपये मँगवा लिए थे। रसीद का टिकट लाये हो न ?

ठेकेदार—हुजूर, रसीद लिखवा लाया हूँ।

सुबोध—तो अपने रुपये ले जाओ। तुम्हारे काम से मैं बहुत खुश नहीं हूँ। लकड़ी तुमने अच्छी नहीं लगाई और काम में सफाई भी नहीं है। अगर ऐसा काम फिर करोगे, तो ठेकेदारों के रजिस्टर से तुम्हारा नाम निकाल दिया जायेगा।

यह कहकर सुबोध ने मेज पर निगाह डाली, तब नोटों के पुलिन्दे न थे, सोचा, शायद किसी फाइल के नीचे दब गए हों। कुरसी के समीप के सब कागज उलट पलट डाले, मगर नोटों का कहीं पता नहीं। ऐं ! नोट कहाँ गए ! अभी तो यहीं मैंने रख दिए थे। जा कहां सकते हैं ? फिर फाइलों को उलटने पलटने लगे। दिल में जरा जरा धड़कन होने लगी। सारी मेज के कागज छान डाले, पुलिन्दों का पता नहीं। तब वे कुरसी पर बैठकर इस आध घण्टे में होने वाली घटनाओं की मन में

आलोचना करने लगे—चपरासी ने नोटों के पुलिन्दे लाकर मुझे दिए, खूब याद है। भला, यह भी भूलने की बात है और इतनी जल्द ! मैंने नोटों को लेकर यहीं मेज पर रख दिया, गिना तक नहीं। फिर वकील साहब आ गये। पुराने मुलाकाती हैं। उनसे बातें करता जरा पेड़ तक चला गया। उन्होंने पान मंगवाये, बस इतनी ही देर हुई। जब गया हूँ तब पुलिन्दे रखे हुए थे। खूब अच्छी तरह याद है। तब ये नोट कहाँ गायब हो गए ? मैंने किसी सन्दूक, दराज या आलमारी में नहीं रखे। फिर गये तो कहाँ ? शायद दफ्तर में किसी ने सावधानी के लिए उठाकर रख दिए हों। यही बात है। मैं व्यर्थ में इतना घबरा गया। छिः !

तुरन्त दफ्तर में आकर मदारीलाल से बोले—आपने मेरी मेज पर से नोट तो उठाकर नहीं रख दिए ?

मदारीलाल ने भौंचक्के होकर कहा—क्या आपकी मेज पर नोट रखे हुए थे ? मुझे तोखबर ही नहीं। अभी पंडित सोहनलाल एक फाइल लेकर गये थे। तब आपको कमरे में न देखा। जब मुझे मालूम हुआ कि आप किसी से बातें करने चले गए हैं, तब दरवाजे बन्द करा दिए। क्या कुल नोट नहीं मिल रहे हैं ?

सुबोध आँखें फैलाकर बोले—अरे साहब, पूरे पाँच हजार के हैं। अभी-अभी चैक भुनाया है।

मदारीलाल ने सिर पीट कर कहा—पूरे पाँच हजार ! या भगवान् आपने मेज पर खूब देख लिया है ?

"अभी पन्द्रह मिनट से तलाश कर रहा हूँ।"

"चपरासी से पूछ लिया कि कौन-कौन आया था ?"

"आइए, जरा आप लोग भी तलाश कीजिए। मेरे तो होश उड़े हुए हैं।"

सारा दफ्तर सेक्रेटरी साहब के कमरे की तलाशी लेने लगा। मेज, अलमारियाँ, सन्दूक सब देखे गए। रजिस्टरों के वर्क उलट-पलट कर

देखे गए; मगर नोटों का कहीं पता नहीं। कोई उड़ा ले गया, अब इसमें कोई शुबहा न था। सुबोध ने एक लम्बी सांस ली और कुर्सी पर बैठ गये। चेहरे का रंग फक हो गया। जरा-सा मुँह निकल आया। इस समय कोई उन्हें देखता तो समझता कि महीनों से बीमार हैं।

मदारीलाल ने सहानुभूति दिखाते हुए कहा—गजब हो गया और क्या! आज तक कभी ऐसा अन्धेर न हुआ। मुझे यहाँ काम करते दस साल हो गये, कभी धेले की चीज भी गायब न हुई। मैंने आपको पहले ही दिन सावधान कर देना चाहा था कि रुपये पैसे के विषय में होशियार रहिएगा; मगर सुध न थी, ख्याल न रहा। जरूर बाहर से कोई आदमी आया और नोट उड़ा कर गायब हो गया। चपरासी का यही अपराध है कि उसने किसी को कमरे में जाने ही क्यों दिया? वह लाख कसम खाये कि बाहर से कोई नहीं आया; लेकिन मैं इसे मान नहीं सकता। यहां से तो केवल पण्डित सोहनलाल एक फाइल लेकर गये थे; मगर दरवाजे ही से झाँक कर चले आये।

सोहनलाल ने सफाई दी—मैंने तो अन्दर कदम ही नहीं रखा साहब! अपने जवान बेटे की कसम खाता हूँ, जो अन्दर कदम भी रखा हो।

मदारीलाल ने माथा सिकोड़ कर कहा—आप व्यर्थ में कसमें क्यों खाते हैं? कोई आप से कुछ कहता है? (सुबोध के कान में) बैंक में कुछ रुपये हों तो निकाल कर ठेकेदार को दे दिए जायें, वरना बदनामी होगी। नुकसान तो हो ही गया, अब उसके साथ अपमान क्यों हो?

सुबोध ने करुण स्वर में कहा—बैंक में मुश्किल से दो चार सौ रुपये होंगे, भाई जान! रुपये होते तो क्या चिन्ता थी। समझ लेता, जैसे पचीस हजार उड़ गये, वैसे ही तीस हजार भी उड़ गये। यहां तो कफन को भी कौड़ी नहीं।

उसी रात को सुबोधचन्द्र ने आत्महत्या कर ली। इतने रुपयों का

प्रबन्ध करना उनके लिए कठिन था। मृत्यु के परदे के सिवा उन्हें अपनी वेदना, अपनी विवशता को छिपाने की और कोई आड़ न थी।

४

दूसरे दिन प्रातःकाल चपरासी ने मदारीलाल के घर पहुँच कर आवाज दी। मदारी को रात भर नींद न आयी थी। घबराकर बाहर आये। चपरासी उन्हें देखते ही बोला—हजूर! बड़ा गजब हो गया। सेक्रेटरी साहब ने रात को अपनी गर्दन पर छुरी फेर ली।

मदारीलाल की आंखें ऊपर चढ़ गयीं, मुँह फैल गया और सारी देह सिहर उठी, मानो उनका हाथ बिजली के तार पर पड़ गया हो।

"छुरी फेर ली ?"

"जी हां आज सवेरे मालूम हुआ। पुलिस वाले जमा हैं। आपको बुलाया है।"

"लाश अभी पड़ी हुई है ?"

"जी हाँ, अभी डाक्टरी होने वाली है ?"

"बहुत से लोग जमा हैं ?"

"सबसे बड़े अफसर जमा हैं। हजूर लाश की ओर ताकते नहीं बनता। कैसा भला मानुस हीरा आदमी था। सब लोग रो रहे हैं। छोटे-छोटे दो बच्चे हैं, एक स्यानी लड़की है ब्याह लायक, बहूजी को लोग कितना रोक रहे हैं, पर बार-बार दौड़कर लाश के पास आ जाती हैं। कोई ऐसा नहीं है, जो रूमाल से आंखें न पोंछ रहा हो। अभी इतने ही दिन आये हुए, पर सबसे कितना मेल-जोल हो गया था। रुपये की तो कभी परवाह ही नहीं थी। दिलदरियाव था।"

मदारीलाल के सिर में चक्कर आने लगा। द्वार की चौखट पकड़ कर अपने को न सम्भाल लेते, तो शायद गिर पड़ते। पूछा—बहूजी बहुत रो रही थीं ?

"कुछ न पूछिए, हजूर ! पेड़ की पत्तियाँ झड़ जाती हैं। आंखें फूलकर गूलर हो गयी हैं।"

"कितने लड़के बतलाये तुमने ?"

"हजूर, दो लड़के और एक लड़की।"

"हां-हां, लड़कों को तो देख चुका हूँ ! लड़की स्यानी होगी ?"

"जी हां, ब्याहने लायक है। रोते-रोते बेचारी की आँखें सूज आयी हैं।"

"नोटों के बारे में भी बात चीत हो रही होगी ?"

"जी हाँ, सब लोग यही कहते हैं कि दफ्तर के किसी आदमी का काम है। दरोगाजी तो सोहनलाल को गिरफ्तार करना चाहते थे; पर शायद आपसे सलाह लेकर करेंगे। सेक्रेटरी साहब तो लिख गये हैं कि मेरा किसी पर शक नहीं है।"

"क्या सेक्रेटरी साहब कोई खत लिख कर छोड़ गये हैं ?"

"हाँ, मालूम होता है, छुरी चलाते वक्त याद आयी कि सुबह में दफ्तर के सब लोग पकड़ लिए जायेंगे। बस, कलक्टर साहब के नाम चिट्ठी लिख दी।"

"हजूर, अब मैं क्या जानूँ, मुदा इतना सब लोग कहते थे कि आप की बड़ी तारीफ लिखी है।"

"मदारीलाल की सांस और तेज हो गयी। आँखों से आंसू की दो बड़ी-बड़ी बूंदे गिर पड़ीं। आंखें पोंछते हुए बोले—वे और मैं एक साथ के पढ़े थे नन्दू ! आठ दस साल साथ रहा। उठते-बैठते साथ खाते, साथ खेलते, बस इसी तरह रहते थे, जैसे सगे दो भाई रहते हों। खत में मेरी क्या तारीफ लिखी है ? मगर तुम्हें क्या मालूम होगा।"

"आप भी तो चल ही रहे हैं, देख लीजिएगा।"

"कफन का इन्तजाम हो गया है ?"

"नहीं हजूर कहा न कि अभी लाश की डाक्टरी होगी। मुदा अब जल्दी चलिए। ऐसा न हो, कोई दूसरा आदमी बुलाने आता हो।"

"हमारे दफ्तर के सब लोग आगए होंगे ?"

"जी हां, इस मुहल्ले वाले तो सभी थे।"

"पुलिस ने मेरे बारे में तो उनसे कुछ पूछ ताछ नहीं की ?"

"जी नहीं, किसी से भी नहीं ?"

मदारीलाल जब सुबोधचन्द्र के घर पर पहुँचे, तब उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि सब लोग उनकी तरफ सन्देह की आँखों से देख रहे हैं। पुलिस इन्सपेक्टर ने तुरन्त उन्हें बुलाकर कहा—आप भी अपना बयान लिखा दें और सबके बयान तो लिख चुका हूँ।

मदारीलाल ने ऐसी सावधानी से बयान लिखाया कि पुलिस के अफसर दंग रह गये। मदारीलाल पर शुबाह होता था, पर इस बयान ने उसका अंकुर भी निकाल डाला।

इसी वक्त सुबोध के दोनों बालक रोते हुए मदारीलाल के पास आये और कहा—चलिए, आपको अम्मा बुलाती हैं। दोनों मदारीलाल से परिचित थे। मदारीलाल यहाँ तो रोज ही आते थे; पर घर में कभी नहीं गये थे। सुबोध की स्त्री उनसे परदा करती थी। यह बुलावा सुनकर उनका दिल धड़क उठा—कहीं इसका मुझ पर शुबहा न हो। कुछ झिझकते और कुछ डरते हुए भीतर गये, तब विधवा का करुण-विलाप सुनकर कलेजा काँप उठा। इन्हें देखते ही उस अबला के आँसुओं का कोई दूसरा स्रोत खुल गया और लड़की तो दौड़ कर इनके पैरों से लिपट गयी। दोनों लड़कों ने भी घेर लिया। मदारीलाल को उन तीनों की आंखों में ऐसी अगाध वेदना, ऐसी विदारक याचना भरी हुई मालूम हुई कि वे उनकी ओर देख न सके। उनकी आत्मा उन्हें धिक्कारने लगी। जिन बेचारों को उन पर इतना विश्वास, इतना भरोसा, इतनी आत्मीयता, इतना स्नेह था, उन्हीं की गर्दन पर उन्होंने छुरी फेरी! उन्हीं के हाथों यह भरा पूरा परिवार धूल में मिल गया। इन असहायों का अब क्या हाल होगा? लड़की का विवाह करना है अब कौन करेगा? बच्चों के लालन-पालन का भार कौन उठायेगा?

मदारीलाल को इतनी आत्म-ग्लानि हुई कि उनके मुँह से तसल्ली का एक शब्द भी न निकला। उन्हें ऐसा जान पड़ा कि मेरे मुख में कालिख पुती हुई है, मेरा कद कुछ छोटा हो गया है। उन्होंने जिस वक्त नोट उड़ाये थे, उन्हें गुमान भी न था कि उसका यह फल होगा। वे केवल सुबोध को ज़िच करना चाहते थे। उनका सर्वनाश करने की इच्छा न थी।

शोकातुर विधवा ने सिसकते हुए कहा—भैया जी, हम लोगों को वे मंझधार में छोड़ गए हैं। अगर मुझे मालूम होता कि मन में यह बात ठान चुके हैं, तो अपने पास जो कुछ था, वह सब उनके चरणों पर रख देती। मुझ से तो वे यही कहते रहे कि कोई न कोई उपाय हो जायेगा। आप ही की मार्फत वे कोई महाजन ठीक करना चाहते थे। आपके ऊपर उन्हें कितना भरोसा था कि कह नहीं सकती।

मदारीलाल को ऐसा मालूम हुआ कि कोई उनके हृदय पर नश्तर चला रहा है। उन्हें अपने कण्ठ में कोई चीज फँसी हुई जान पड़ती थी।

रामेश्वरी ने फिर कहा—रात सोये, तब खूब हँस रहे थे। रोज की तरह दूध पिया, बच्चों को प्यार किया, थोड़ी देर हारमोनियम बजाया और तब कुल्ली करके लेटे। कोई ऐसी बात न थी जिससे लेश मात्र भी संदेह होता। मुझे चिन्तित देख कर बोले—तुम व्यर्थ घबराती हो। बाबू मदारीलाल से मेरी पुरानी दोस्ती है, आखिर वह किस दिन काम आयेगी? मेरे साथ के खेले हुए हैं। इस नगर में उनका सबसे परिचय है। रुपयों का प्रबन्ध आसानी से हो जायगा। फिर न जाने कब मन में यह बात समायी। मैं नसीबों जली ऐसी सोयी की रात को मिनकी तक नहीं। क्या जानती थी कि वे अपनी जान पर खेल जायेंगे?

मदारीलाल को सारा विश्व आँखों में तैरता हुआ मालूम हुआ। उन्होंने बहुत जब्त किया; मगर आँसुओं के प्रवाह को न रोक सके।

रामेश्वरी ने आँखें पोंछकर फिर कहा—भैया जी, जो कुछ होना

था, वह तो हो चुका; लेकिन आप उस दुष्ट का पता जरूर लगाइए। जिसने हमारा सर्वनाश कर दिया है। यह दफ्तर ही के किसी आदमी का काम है। वे तो देवता थे। मुझसे यही कहते रहे कि मेरा किसी पर सन्देह नहीं है; पर है यह दफ्तर वाले ही का काम। आपसे केवल इतनी विनती करती हूँ कि उस पापी को बचकर न जाने दीजिएगा। पुलिस वाले शायद कुछ रिश्वत लेकर उसे छोड़ दें। आपको देखकर उनका यह हौसला न होगा। अब हमारे सिर पर आपके सिवा और कौन है? किससे अपना दुख कहें? लाश की यह दुर्गति होनी भी लिखी थी।

मदारीलाल के मन में एक बार ऐसा उबाल उठा कि सब कुछ खोल दें। साफ कह दें, मैं ही वह दुष्ट, वह अधम, वह पामर हूँ। विधवा के पैरों पर गिर पड़ें और कहें, वही छुरी इस हत्यारे की गर्दन पर फेर दो। पर जबान न खुली, इसी दशा में बैठे २ उनके सिर में ऐसा चक्कर आया कि वे जमीन पर गिर पड़े।

५

तीसरे पहर लाश की परीक्षा समाप्त हुई। अर्थी जलाशय की ओर चली। सारा दफ्तर, सारे हुक्काम और हजारों आदमी साथ थे। दाह-संस्कार लड़कों को करना चाहिए था, पर लड़के नाबालिग थे। इसलिए विधवा चलने को तैयार हो रही थी कि मदारीलाल ने जाकर कहा—वहूजी, यह संस्कार मुझे करने दो। तुम क्रिया पर बैठ जाओगी, तो बच्चों को कौन सँभालेगा। सुबोध मेरे भाई थे। जिन्दगी में उनके साथ कुछ सलूक न कर सका, अब जिन्दगी के बाद मुझे दोस्ती का कुछ हक अदा कर लेने दो। आखिर मेरा भी तो उन पर कुछ हक था। रामेश्वरी ने रोकर कहा—आप को भगवान् ने बड़ा उदार हृदय दिया है भैया जी, नहीं तो मरने पर कौन किसको पूछता है? दफ्तर के और लोग जो आधी-आधी रात तक हाथ बांधे खड़े रहते थे, झूठों

बात पूछने न आये कि जरा ढाढ़स होता।

मदारीलाल ने दाह-संस्कार किया। तेरह दिन तक क्रिया पर बैठे रहे। तेरहवें दिन पिण्डदान हुआ, ब्राह्मणों ने भोजन किया, भिखारियों को अन्नदान दिया गया, मित्रों की दावत हुई और यह सब कुछ मदारी-लाल ने अपने खर्च से किया। रामेश्वरी ने बहुत कहा कि आपने जितना किया उतना ही बहुत है, अब मैं आपको और जेरबार नहीं करना चाहती। दोस्ती का हक इससे ज्यादा और कोई क्या अदा करेगा। मगर मदारीलाल ने एक न सुनी। शहर में उनके यश की धूम मच गयी, मित्र हो तो ऐसा हो।

सोलहवें दिन विधवा ने मदारीलाल से कहा—भैया जी, आपने हमारे साथ जो उपकार और अनुग्रह किये हैं, उनसे हम मरते दम तक उऋण नहीं हो सकते। आपने हमारी पीठ पर हाथ न रखा होता, तो न जाने हमारी क्या गति होती? कहीं सुख की भी छाँह तो नहीं थी। अब हमें घर जाने दीजिए। वहाँ देहात में खर्च भी कम होगा और कुछ खेतीबारी का सिलसिला भी कर लूँगी। किसी-न-किसी तरह विपत्ति के दिन कट ही जायेंगे। इसी तरह हमारे ऊपर दया रखिएगा।

मदारीलाल ने पूछा—घर पर कितनी जायदाद है?

रामेश्वरी—जायदाद क्या है, एक कच्चा मकान है और दस बारह बीघे की काश्तकारी है। पक्का मकान बनवाना शुरू किया था; मगर रुपये पूरे न पड़े। अभी अधूरा पड़ा हुआ है। दस-बारह हजार खर्च हो गये और अभी छत पड़ने की नौबत नहीं आयी।

मदारी—कुछ रुपये बैंक में जमा हैं या बस खेती ही का सहारा है।

विधवा—जमा तो एक पाई भी नहीं है भैया जी! उनके हाथ में रुपये रहने ही न पाते थे। बस वही खेती का सहारा है।

मदारी—तो उन खेतों में इतनी पैदावार हो जायगी कि लगान भी अदा हो जाय और तुम लोगों की गुजर बसर भी हो।

रामेश्वरी—और कर क्या सकते हैं भैया जी ! किसी-न-किसी तरह जिन्दगी तो काटनी है। बच्चे न होते तो मैं जहर खा लेती।

मदारी—और अभी बेटी का विवाह भी तो करना है ?

विधवा—उसके विवाह की अब कोई चिन्ता नहीं। किसानों में ऐसे बहुत से मिल जायेंगे; जो बिना कुछ लिये-दिये विवाह कर लेंगे।

मदारीलाल ने एक क्षण सोच कर कहा—अगर मैं कुछ सलाह दूँ, तो उसे मानेंगी आप ?

रामेश्वरी—भैया जी, आपकी सलाह न मानूँगी तो किसकी सलाह मानूँगी ? और दूसरा है ही कौन !

मदारी—तो आप अपने घर जाने के बदले मेरे घर चलिए। जैसे मेरे बाल-बच्चे रहेंगे, वैसे ही आप के भी रहेंगे। आपको कष्ट न होगा। ईश्वर ने चाहा, तो कन्या का विवाह भी किसी अच्छे कुल में हो जायेगा।

विधवा की आँखें सजल हो गयीं। बोली—मगर भैया जी, सोचिए।

मदारीलाल ने बात काट कर कहा—मैं कुछ न सोचूँगा और न कोई उज्र सुनूँगा। क्या दो भाइयों के परिवार एक साथ नहीं रहते ? सुबोध को मैं अपना भाई समझता था और हमेशा समझूँगा।

विधवा का कोई उज्र न सुना गया। मदारीलाल सबको अपने साथ ले गये और आज दस साल से उनका पालन कर रहे हैं। दोनों बच्चे कालेज में पढ़ते हैं और कन्या का एक प्रतिष्ठित कुल में विवाह हो गया है। मदारीलाल और उनकी स्त्री तन-मन से रामेश्वरी की सेवा करते हैं और उसके इशारों पर चलते हैं। मदारीलाल सेवा से अपने पाप का प्रायश्चित कर रहे हैं।

जयशंकर प्रसाद

सं० १९४६-१९९४ ई०

जयशंकर प्रसाद हिन्दी साहित्य के लिए देवी-प्रसाद थे। आपने हिन्दी साहित्य को विश्व साहित्य रूपी गगन का सितारा बना दिया है जिसको छूने में भी दूसरे असमर्थ हैं। आपकी लेखनी ने जहाँ यौवन और उन्माद, प्रेम और संयोग-शृंगार आदि का विशद् वर्णन किया है तो दूसरी ओर निराशा और वियोग, वेदना और रुदन, विरह और क्रन्दन में भी अपना चमत्कार दिखाने से पीछे नहीं हटी है। आपकी रचनाओं ने मानव-हृदय में उठने वाले भावों का प्राधान्य रहा है।

जीवन—आप हिन्दी साहित्य में कहानीकार, नाटककार, उपन्यास-कार और कवि के नाते प्रसिद्ध हैं। आपका जन्म काशी में सुँघनी साहू परिवार में देवीप्रसाद के यहां हुआ था। आपके पिता सुँघनी के व्यापारी थे। अल्प आयु में तीर्थों के भ्रमण से प्राकृतिक सौन्दर्य, पर्वतों के अनुपम दृश्य आपके हृदय में घर कर गए जिनका सजीव चित्रण आपकी रचनाओं में मिलता है। पिता की अल्पायु में ही मृत्यु के कारण घर पर ही हिन्दी, संस्कृत, और अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन करने को मिला। आपने इतिहास का भी गम्भीर अध्ययन किया। आप भारतीय संस्कृति के पोषक रहे। उसकी झलक आपके प्रायः सभी नाटकों में मिलती है। आपकी भावना दर्शन शास्त्र और बौद्ध धर्म से सर्वदा प्रेरित रही। आपको हिन्दी के सर्वगुण सम्पन्न कलाकार की उपाधि से सुशोभित किया गया। आप सक्रान्ति कालीन प्रमुख रहस्य-वादी कवियों में से एक थे।

रचनाएं—कवि के रूप में आपने 'लहर', 'आँसू', प्रेम पथिक, महाराणा का महत्व, 'कानन कुसुम' और 'कामायनी' जैसा

महाकाव्य हिन्दी साहित्य को भेंट किया। उपन्यास क्षेत्र में 'कंकाल' 'तितली' और 'इरावती' (अधूरा) उपन्यास दिए। नाटककार के रूप में ध्रुव 'स्वामिनी', 'चन्द्रगुप्त', 'करुणालय', 'प्रायश्चित का एक घूँट', 'जनमेजय का नागयज्ञ', 'राज्यश्री', 'अजातशत्रु', 'समुद्रगुप्त', 'स्कंद, गुप्त', 'सज्जन', विशाखा आदि प्रस्तुत किए। कहानी क्षेत्र में 'इन्दु' पत्रिका के माध्यम से आगे बढ़े। केवल ६९ कहानियाँ ही लिख पाये जो कि 'आकाश-दीप', 'आँधी', 'प्रतिध्वनि' और छाया आदि में संग्रहीत हैं।

भाषा-शैली—आपकी भाषा में तत्सम शब्दों की भरमार के कारण वह कुछ क्लिष्ट हो गई है, कहीं भी किसी ऐसे शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है जो हल्कापन प्रगट करता हो। शैली में कवित्व की गंध स्पष्ट रूप से है। वैसे कहानियों में पत्रात्मक, आत्मचरित, प्रतीकात्मक शैलियों का पता चलता है।

कहानी-साहित्य की विशेषता—आपकी अधिकाँश कहानियाँ भाव प्रधान हैं। कहीं-कहीं पर चरित्र प्रधानता भी दृष्टिगत होती है। प्रकृति वर्णन मानसिक संघर्ष का निरूपण आपकी कहानियों में गूढ़ शब्दावली द्वारा हुआ है। कहानियों में मनोवैज्ञानिक ढंग से चलते हुए जहाँ उनका अन्त होना चाहिए था, वहीं कर देना ही आपकी विशेषता है।

प्रस्तुत-कहानी—'ममता' में एक भारतीय हिन्दू विधवा की धर्म-परायणता, कर्तव्य-निष्ठा और स्वाभिमान की रक्षा का जीता जागता चित्रण है। जिसने अपने पिता की शत्रु-जाति के एक मुग़ल को निःस्वार्थ भाव से आश्रय देकर हिन्दू संस्कृति को गौरवान्वित किया।

ममता

जयशंकर प्रसाद

रोहतास-दुर्ग के प्रकोष्ठ में बैठी हुई युवती ममता, शोण के तीक्ष्ण गंभीर प्रवाह को देख रही है। ममत विधवा थी। उसका यौवन शोण के समान ही उमड़ रहा था। मन में वेदना, मस्तक में आंधी, आँखों में पानी की बरसात लिये, वह सुख के कंटक-शयन में विकल थी। वह रोहतास दुर्गपति के मंत्री चुड़ामणि की अकेली दुहिता थी, फिर उसके लिए कुछ अभाव होना असम्भव था, परन्तु वह विधवा थी, हिन्दू-विधवा संसार में सबसे तुच्छ निराश्रय प्राणी है—तब उसकी विडम्बना का कहाँ अन्त था ?

चूड़ामणि ने चुपचाप उसके प्रकोष्ठ में प्रवेश किया। शोण के प्रवाह में, उसके कल-नाद में, अपना जीवन मिलाने में वह बेसुध थी। पिता का आना न जान सकी। चूड़ामणि व्यथित हो उठे। स्नेह-पालिता पुत्री के लिए क्या करें, यह स्थिर न कर सकते थे। लौटकर बाहर चले गये। ऐसा प्रायः होता, पर आज मंत्री के मन में बड़ी दुश्चिन्ता थी। पैर सीधे न पड़ते थे।

एक पहर बीत जाने पर वे फिर ममता के पास आये। उस समय उनके पीछे दस सेवक चाँदी के बड़े थालों में कुछ लिये हुये खड़े थे; कितने ही मनुष्यों के पद-शब्द सुन ममता ने घूम कर देखा। मंत्री ने सब थालों को रखने का संकेत किया। अनुचर थाल रख कर चले गये।

ममता ने पूछा—"यह क्या है पिता जी ?"

"तेरे लिए बेटी ! उपहार है।"—कहकर चूड़ामणि ने उसका आवरण उलट दिया। स्वर्ण का पीलापन उस सुनहरी संध्या में विकीर्ण होने लगा।

ममता चौंक उठी।

"इतना स्वर्ण ! यह कहाँ से आया ?"

"चुप रहो ममता, यह तुम्हारे लिए है।"

"तो क्या आपने म्लेच्छ का उत्कोच स्वीकार कर लिया ? पिता-जी ! यह अनर्थ है, अर्थ नहीं। लौटा दीजिये। पिता जी ! हम लोग ब्राह्मण हैं, इतना सोना लेकर क्या करेंगे ?"

"इस पतनोन्मुख प्राचीन सामन्त-वंश का अन्त समीप है, बेटी ! किसी भी दिन शेरशाह रोहिताश्वर पर अधिकार कर सकता है; उस दिन मंत्रित्व न रहेगा, तब के लिये बेटी !"

"हे भगवान् ! तब के लिए ! विपद के लिए ! इतना आयोजन ! परमपिता की इच्छा के विरुद्ध इतना साहस ! पिताजी, क्या भीख न मिलेगी ? क्या कोई हिन्दू भू-पृष्ठ पर न बचा रह जायगा, जो ब्राह्मण को दो मुट्ठी अन्न दे सके ? यह असंभव है। फेर दीजिए पिताजी, मैं काँप रही हूँ—इसकी चमक आँखों को अंधा बना रही है।"

"मूर्ख है"—कह कर चूड़ामणि चले गये।

दूसरे दिन जब डोलियों का ताँता भीतर आ रहा था, ब्राह्मण-मंत्री चूड़ामणि का हृदय धक्-धक् करने लगा। वह अपने को रोक न सका। उसने जाकर रोहिताश्व-दुर्ग के तोरण पर डोलियों का आवरण खुलवाना चाहा। पठानों ने कहा—

"यह महिलाओं का अपमान करना है।"

बात बढ़ गई। तलवारें खिची, ब्राह्मण वहीं मारा गया और राजा रानी और कोष सब छली शेरशाह के हाथ पड़े; निकल गई ममता। डोली में भरे हुए पठान-सैनिक दुर्ग भर में फैल गये, पर ममता न मिली।

२

काशी के उत्तर धर्मचक्र विहार, मौर्य और गुप्त सम्राटों की कीर्ति का खंडहर था। भग्न चूड़ा, तृण-गल्मों से ढके हुए प्राचीर, ईटों की ढेर में बिखरी हुई भारतीय शिल्प की विभूति, ग्रीष्म रजनी को चन्द्रिका में अपने को शीतल कर रही थी।

जहाँ पञ्चवर्गीय भिक्षु गौतम का उपदेश ग्रहण करने के लिए पहले मिले थे, उसी स्तूप के भग्नावशेष की मलिन छाया में एक झोंपड़ी के दीपालोक में एक स्त्री पाठ कर रही थी—

"अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्य्युपासते"।

पाठ रुक गया। एक भीषण और हताश आकृति दीप की मन्द प्रकाश में सामने खड़ी थी। स्त्री उठी, उसने कपाट बन्द करना चाहा परन्तु उस व्यक्ति ने कहा—"माता! मुझे आश्रय चाहिए।"

"तुम कौन हो?"—स्त्री ने पूछा।

"मैं मुगल हूँ। चौसा-युद्ध में शेरशाह से विपन्न होकर रक्षा चाहता हूँ। इस रात अब आगे चलने में असमर्थ हूँ।"

"क्या शेरशाह से!"—स्त्री ने अपने होंठ काट लिये।

"हाँ, माता!"

"परन्तु तुम भी वैसे ही क्रूर हो, वही भीषण रक्त की प्यास, वही निष्ठुर प्रतिबिम्ब, तुम्हारे मुख पर भी! सैनिक! मेरी कुटी में स्थान नहीं, जाओ कहीं दूसरा आश्रय खोज लो!"

"गला सूख रहा है, साथी छूट गये हैं, अश्व गिर पड़ा है—इतना थका हुआ हूँ, इतना!"—कहते-कहते वह व्यक्ति धम-से बैठ गया और उसके सामने ब्रह्माण्ड घूमने लगा। स्त्री ने सोचा, यह विपत्ति कहाँ से आई! उसने जल दिया, मुगल के प्राणों की रक्षा हुई। वह सोचने लगी—"सब विधर्मी दया के पात्र नहीं—मेरे पिता का वध करने वाले आततायी!" घृणा से उसका मन विरक्त हो गया।

स्वस्थ होकर मुगल ने कहा—"माता ! तो फिर मैं चला जाऊँ ?"

स्त्री विचार कर रही थी—"मैं ब्राह्मणी हूँ, मुझे तो अपने धर्म—अतिथिदेव की उपासना—का पालन करना चाहिए। परन्तु यहाँ... ......नहीं नहीं, सब विधर्मी दया के पात्र नहीं। परन्तु यह दया तो नहीं.........कर्त्तव्य करना है। तब ?"

मुगल अपनी तलवार टेककर उठ खड़ा हुआ। ममता ने कहा—

"क्या आश्चर्य है कि तुम भी छल करो; ठहरो।"

"छल ! नहीं, तब नहीं स्त्री ! जाता हूँ। तैमूर का वंशधर स्त्री से छल करेगा ? जाता हूँ। भाग्य का खेल है।"

ममता ने मन में कहा—"यहाँ कौन दुर्ग है ! यही झोपड़ी न; जो चाहे ले ले, मुझे तो अपना कर्त्तव्य करना पड़ेगा।" वह बाहर चली आई और मुगल से बोली—"जाओ भीतर, थके हुए भयभीत पथिक ! तुम चाहे कोई हो, मैं तुम्हें आश्रय देती हूँ। मैं ब्राह्मण—कुमारी हूँ; सब अपना धर्म छोड़ दें, तो मैं भी क्यों छोड़ दूँ ?" मुगल ने चन्द्रमा के मन्द प्रकाश में वह महिमामय मुखमण्डल देखा; उसने, मन-ही-मन नमस्कार किया। ममता पास की टूटी हुई दीवारों में चली गई। भीतर थके पथिक ने झोंपड़ी में विश्राम किया।

प्रभात में खण्डहर की सन्धि से ममता ने देखा, सैंकड़ों अश्वारोही उस प्रान्त में घूम रहे हैं। वह अपनी मूर्खता पर अपने को कोसने लगी।

अब उस झोंपड़ी से निकल कर उस पथिक ने कहा—"मिरजा ! मैं यहाँ हूँ।"

शब्द सुनते ही प्रसन्नता की चीत्कार-ध्वनि से वह प्रान्त गूँज उठा। ममता अधिक भयभीत हुई। पथिक ने कहा—"वह स्त्री कहां है ? उसे खोज निकालो।" ममता छिपने के लिए अधिक सचेष्ट हुई। वह मृग—दाव में चली गई। दिन भर उसमें से न निकली। संध्या में जब उन लोगों के जाने का समय हुआ, तो ममता ने सुना, पथिक घोड़े

पर सवार होते हुए कह रहा है—"मिरजा ! उस स्त्री को मैं कुछ दे न सका। उसका घर बनवा देना, क्योंकि मैंने विपत्ति में यहाँ विश्राम पाया था। यह स्थान भूलना मत।"—इसके बाद वे चले गये।

चौसा के मुग़ल-पठान-युद्ध को बहुत दिन बीत गये। ममता अब सत्तर वर्ष की वृद्धा है। वह अपनी झोंपड़ी में एक दिन पड़ी थी। शीतकाल का प्रभात था। उसका जीर्ण कंकाल खाँसी से गूँज रहा था। ममता की सेवा के लिए गांव की दो-तीन स्त्रियाँ उसे घेरकर बैठी थीं; क्योंकि वह आजीवन सब के सुख-दुख की सम-भागिनी रही।

ममता ने जल पीना चाहा, एक स्त्री ने सीपी से जल पिलाया। सहसा एक अश्वारोही उसी झोंपड़ी के द्वार पर दिखाई पड़ा। वह अपनी धुन में कहने लगा—"मिरजा ने जो चित्र बनाकर दिया है, वह तो इसी जगह का होना चाहिए। वह बुढ़िया मर गई होगी।"

अब किससे पूँछू कि एक दिन शाँहशाह हुमायूँ किस छप्पर के नीचे बैठे थे ? यह घटना भी तो सैंतालीस वर्ष से ऊपर की हुई।"

ममता ने अपने विकल कानों से सुना। उसने पास की स्त्री से कहा—"उसे बुलाओ।"

अश्वारोही पास आया। ममता ने रुक-रुककर कहा—"मैं नहीं जानती कि वह शांहशाह था, या साधारण मुगल; पर एक दिन इसी झोंपड़ी के नीचे वह रहा। मैंने सुना था कि वह मेरा घर बनवाने की आज्ञा दे चुका था। मैं आजीवन अपनी झोंपड़ी खोदवाने के डर से भयभीत ही थी ! भगवान ने सुन लिया, मैं आज इसे छोड़े जाती हूँ। अब तुम इसका मकान बनाओ या महल, मैं अपने चिर-विश्राम-गृह में जाती हूँ।"

वह अश्वारोही अवाक् खड़ा था। बुढ़िया के प्राण-पक्षी अनन्त में उड़ गये।

वहाँ एक अष्टकोण मन्दिर बना, और उस पर शिलालेख लगाया गया—

"सातों देश के नरेश हुमायूं ने एक दिन यहाँ विश्राम किया था। उनके पुत्र अकबर ने उनकी स्मृति में यह गगन चुम्बी मन्दिर बनाया।"

पर उसमें ममता का कहीं नाम नहीं।

चन्द्रधर शर्म्मा गुलेरी

सन् १८८३-१९२२ ई०

वास्तव में जीवन के सुख-दुख का यथार्थ रूप से अंकन करके ही कहानीकार पाठक को मुग्ध कर सकता है। तभी उसकी लेखनी का श्रम, जीवन और जीविका का लक्ष्य बन सकता है , गुलेरी जी ऐसे ही हिन्दी के श्रेष्ठ कहानीकारों में अग्रगण्य हैं।

जीवन—आपका जन्म पंजाब में हुआ था। आप सन् १९०४ ई० में प्रयाग विश्वविद्यालय से बी० ए० में प्रथम रहे। उसी समय संस्कृत के प्रधानाध्यापक के रूप में मेयो कालेज अजमेर में कार्य किया। सन् १९२० में बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी के कालेज ऑफ ओरिण्टियल लर्निग के प्रिंसिपल नियुक्त हुए। आप पुरातत्व, भाषातत्व, प्राचीन इतिहास, संस्कृत, पाली और प्राकृत के विद्वान थे।

रचनाएँ—आपने केवल तीन कहानियाँ ही लिखीं। पहली कहानी 'सुखमय जीवन' सन् १९११ ई० में भारतमित्र में प्रकाशित हुई थी दूसरी कहानी 'बुद्धू का कांटा' कला की दृष्टि से असफल रही। तीसरी कहानी 'उसने कहा था' सन् १९१५ ई० में सरस्वती के अक्टूबर अंक में प्रकाशित हुई थी। यह हिन्दी की श्रेष्ठतम कहानियों में एक निकली और लेखक का नाम अमर कर गई। यह भाव भाषा एवं विधान सम्बन्धी सभी दृष्टियों से पूर्ण है।

भाषा-शैली—आपकी शैली विवरणात्मक है। उसकी रोचकता और स्वाभाविकता कहीं भी जाने नहीं पाई है। भाषा पात्रानुकूल है। पंजाब के वातावरण को स्पष्ट करते करते आपने (कुड़माई) 'तिमिया' आदि अनेक पंजाबी शब्दों का प्रयोग किया है। भाषा प्रवाह पूर्ण होने

के कारण आरम्भ के लम्बे लम्बे विवरण पढ़ते हुए भी पाठक नहीं उकताता है।

कहानी-साहित्य की विशेषता—आपकी पहली कहानी 'सुखमय जीवन' और तीसरी कहानी 'उसने कहा था' घटना प्रधान हैं। पहली कहानी के नायक जयदेव शरण वर्मा हैं और तीसरी कहानी के नायक लहनासिंह हैं। पहली कहानी साधारण कोटि की ही रह गई है। इस में आपकी कला शिशु रूप में ही दृष्टिगत होती है। उसमें 'उसने कहा था' के समान न तो वैधानिक पूर्णता ही है और न शैलीगत चमत्कार। दूसरी कहानी 'बुद्धू का कांटा' की नायिका है भागवती। इसमें इसी के चरित्र की प्रधानता है पर कला की दृष्टि से चरित्र-चित्रण सफल नहीं है।

प्रस्तुत कहानी—'उसने कहा था' में आदर्श प्रेम की अभिव्यक्ति कहानी के नायक लहनासिंह के त्याग से दिखाई गई है। शैशवकाल से ही वह चंचल प्रकृति का बालक होता है; किन्तु उसकी चंचलता में ही हृदय की निर्बलता भी छिपी हुई होती है, जिसे वह प्रदर्शित नहीं करना चाहता। युवा होने पर भी इस स्वभाव को नहीं बदल पाता है। सूबेदारनी के प्रति अपने प्रेम को हृदय में रखकर ही उसके प्राणों को ही नहीं अपितु उसके पति और पुत्र को भी लड़ाई के मैदान में मृत्यु के पंजे से छुड़ा लेता है; पर इसके लिए उसे प्राण न्यौछावर करने पड़ जाते हैं। यह उच्च आत्मीय स्नेह का सुन्दरतम रूप गुलेरी जी ने इस कहानी में दर्शाया है।

घटना प्रधान

उसने कहा था

चन्द्रधर शर्म्मा गुलेरी

बड़े-बड़े शहरों के इक्के गाड़ी वालों की जबान के कोड़ों से जिनकी पीठ छिल गई है और कान पक गए हैं, उनसे हमारी प्रार्थना है कि अमृतसर के बम्बूकार्ट वालों की बोली का मरहम लगावें। जब बड़े-बड़े शहरों की चौड़ी सड़कों पर घोड़े की पीठ को चाबुक से धुनते हुए इक्के वाले कभी घोड़े की नानी से अपना निकट सम्बन्ध स्थिर करते हैं, कभी राह चलते पैदलों की आँखें न होने पर तरस खाते हैं, कभी उनके पैरों की अंगुलियों के पोरों को चीथकर अपने ही को सताया हुआ बताते हैं और संसार-भर की ग्लानि, निराशा और क्षोभ के अवतार बने नाक की सीध चले जाते हैं, तब अमृतसर में उनकी बिरादरी वाले तंग, चक्करदार गलियों में, हर एक लड्ढी वाले के लिए ठहरकर सब्र का समुद्र उमड़ाकर 'बचो खालसा जी', 'हटो भाई जी' 'ठहरना माई', 'आने दो लाला जी', 'हटो बाछा', कहते हुए सफेद फेंटों, खच्चरों और बत्तकों, गन्ने खोमचे और भार वालों के जंगल में से राह खेते हैं। क्या मजाल है कि 'जी, और 'साहब' बिना सुने किसी को हटना पड़े। बात यह नहीं। कि उनकी जीभ चलती ही नहीं चलती है, पर मीठी छुरी की तरह महीन मार करती हुई। यदि कोई बुढ़िया बार-बार चितौनी देने पर भी लीक से नहीं हटती तो उनकी वचनावली के ये नमूने हैं—हट जा जीरणे जोगिए; हट जा करमाँ वालिए; हट जा पुत्ताँ प्यारिए; बच जा लक्ष्मी वालिए। समष्टि में इसका अर्थ है

कि तू जीने योग्य है, तू भाग्यों वाली है, तू पुत्रों को प्यारी है, लम्बी उमर तेरे सामने है, तू क्यों मेरे पहियों के नीचे आना चाहती है ? बच जा।

ऐसे बम्बूकार्ट वालों के बीच में होकर एक लड़का और एक लड़की चौक की एक दूकान पर आ मिले। उसके बालों और ढीले सुथने से जान पड़ता था कि दोनों सिख हैं। वह अपने मामा के केश धोने के लिए दही लेने आया था और यह रसोई के लिए बड़ियाँ। दुकानदार एक परदेशी से गुथ रहा था, जो सेर भर गीले पापड़ों की गड्डी को बिना गिने न हटता था।

"तेरे घर कहाँ हैं ?"

"मगरे में,—और तेरे ?"

"माझे में,—यहाँ कहाँ रहती है ?"

"अतरसिंह की बैठक में, वे मेरे मामा होते हैं ?"

"मैं भी मामा के यहाँ आया हूँ, उनका घर गुरू बाजार में है।"

इतने में दूकानदार निबटा और इनका सौदा देने लगा। सौदा लेकर दोनों साथ-साथ चले। कुछ दूर जाकर लड़के ने मुस्कराकर पूछा—"तेरी कुड़माई होगई ?" इस पर लड़की कुछ आंखें चढ़ाकर 'धत्' कहकर दौड़ गई और लड़का मुँह देखता रह गया।

दूसरे-तीसरे दिन सब्जी वाले के यहां या दूध वाले के यहां अकस्मात् दोनों मिल जाते। महीना भर यही हाल रहा। दो-तीन बार लड़के ने फिर पूछा, "तेरी कुड़माई हो गई ;" और उत्तर में वही 'धत्' मिला। एक दिन जब फिर लड़के ने वैसे ही हँसी में चिड़ाने के लिए पूछा तो लड़की, लड़के की सम्भावना के विरुद्ध बोली—"हाँ हो गई।"

"कब ?"

"कल,—देखते नहीं यह रेशम से कढ़ा हुआ सालू।" लड़की भाग गई। लड़के ने घर की राह ली। रास्ते में एक लड़के को मोरी में ढकेल दिया, एक छाबड़ी वाले की दिन-भर की कमाई खोई, एक कुत्ते

पर पत्थर मारा और एक गोभीवाले के ठेले में दूध उँडेल दिया। सामने नहाकर आती हुई किसी वैष्णवी से टकराकर अन्धे की उपाधि पाई। तब कहीं घर पहुँचा।

२

'राम राम, यह भी कोई लड़ाई है! दिन-रात खंदकों में बैठे-बैठे हड्डियाँ अकड़ गईं। लुधियाने से दस गुना जाड़ा और मेह और बरफ ऊपर से। पिंडलियों तक कीचड़ में धँसे हुए हैं। ग़नीम कहीं दीखता नहीं—घंटे दो घंटे में कान के परदे फाड़ने वाले धमाके के साथ सारी खंदक हिल जाती है और सौ-सौ गज धरती उछल पड़ती है। इस ग़ैबी गोले से बचे तो कोई लड़े। नगरकोट का जलजला सुना था। यहाँ दिन में पच्चीस जलजले होते हैं। जो कहीं खंदक से बाहर साफा या कुहनी निकल गई, तो चटाख से गोली लगती है। न मालूम बेईमान मिट्टी में लेटे हुए या घास की पत्तियों में छिपे रहते हैं।

"लहनासिंह, और तीन दिन हैं। चार तो खंदक में बिता ही दिये। परसों 'रिलीफ' आ जायगी और फिर सात दिन की छुट्टी। अपने हाथों झटका करेंगे और पेट भर खाकर सो रहेंगे। उसी फिरंगी मेम के बाग में, मख़मल की सी हरी घास है। फल और दूध की वर्षा कर देती है। लाख कहते हैं, दाम नहीं लेती; कहती है तुम राजा हो, मेरे मुल्क को बचाने आए हो।"

'चार दिन तक पलक नहीं झँपी बिना फेरे घोड़ा बिगड़ता है और बिना लड़े सिपाही। मुझे तो संगीन चढ़ाकर मार्च का हुक्म मिल जाय। फिर सात जर्मनों को अकेला मार कर न लौटूँ तो मुझे दरबार साहब की देहली पर मत्था टेकना नसीब न हो। पाजी कहीं के, कलों के घोड़े—संगीन देखते ही मुँह फाड़ देते हैं और पैर पकड़ने लगते हैं। यों अंधेरे में तीस-तीस मन का गोला फेंकते हैं। उस दिन धावा किया था—चार मील तक एक जर्मन भी नहीं छोड़ा था। पीछे

जनरल साहब ने हट आने का कमान दिया, नहीं तो—"

"नहीं तो सीधे बर्लिन पहुँच जाते, क्यों ?" सूबेदार हजारासिंह ने मुस्कराकर कहा—"लड़ाई के मामले जमादार या नायक के चलाए नहीं चलते। बड़े अफसर दूर की सोचते हैं। तीन सौ मील का सामना है। एक तरफ बढ़ गये तो क्या होगा ?"

"सुबेदार जी, सच है"—लहनासिंह बोला—"पर करें क्या? हड्डियों-हड्डियों में तो जाड़ा धँस गया है। सूर्य निकलता नहीं और खाई में दोनों तरफ से चम्बे की बावलियों के से सोते झर रहे हैं। एक धावा हो जाय तो गरमी आ जाय।" "उदमी उठ, सिगड़ी में कोले डाल। वजीरा तुम चार जने बाल्टियां लेकर खाई का पानी बाहर फेंको। महासिंह शाम हो गई, खाई के दरवाजे का पहरा बदल दे।" यह कहते हुए सुबेदार सारी खंदक में चक्कर लगाने लगे।

वजीरासिंह पलटन का विदूषक था। बाल्टी में गँदला पानी भरकर खाई के बाहर फेंकता हुआ बोला—"मैं पाधा बन गया हूँ। करो जर्मनी के बादशाह का तर्पण!" इस पर सब खिलखिला पड़े और उदासी के बादल फट गये।

लहनासिंह ने दूसरी बाल्टी भरकर उसके हाथ में देकर कहा—"अपनी बाड़ी के खरबूजों में पानी दो। ऐसा खाद का पानी पंजाब भर में नहीं मिलेगा।"

"हाँ, देश क्या है, स्वर्ग है। मैं तो लड़ाई के बाद सरकार से दस घुमां जमीन यहाँ माँग लूँगा और फलों के बूटे लगाऊँगा।"

"लाड़ी होराँ को भी यहाँ बुला लोगे ? या वही दूध पिलाने वाली फिरंगी मेम—"

"चुप कर। यहाँ वालों को शरम नही।"

'देश-देश की चाल है। आज तक मैं उसे समझा न सका कि सिख तम्बाकू नहीं पीते। यह सिगरेट देने में हठ करती है, ओठों में लगाना चाहती है, और मैं पीछे हटता हूँ तो समझती है कि राजा बुरा मान

गया, अब मेरे मुलक के लिए लड़ेगा नहीं ?"

"अच्छा अब बोधासिह कैसा है ?"

"अच्छा है।"

"जैसे मैं जानता ही न होऊँ। रात भर तुम अपने दोनों कम्बल उसे ओढ़ाते हो और आप सिगड़ी के सहारे गुज़र करते हो। उसके पहरे पर आप पहरा दे आते हो। अपने सूखे लकड़ी के तख्तों पर उसे सुलाते हो, आप कीचड़ में पड़े रहते हो। कहीं तुम माँदे न पड़ जाना। जाड़ा क्या है, मौत है और 'निमोनिया' से मरने वालों को मुरब्बे नहीं मिला करते।"

"मेरा डर मत करो। मैं तो बुलेल की खड्ड के किनारे मरूँगा। भाई कीरतसिंह की गोदी पर मेरा सिर होगा और मेरे हाथ के लगाये हुए आंगन के आम के पेड़ की छाया होगी।"

वजीरासिह ने त्योरी चढ़ाकर कहा—"क्या मरने मारने की बात लगाई है ?"

इतने में एक कोने से पंजाबी गीत की आवाज सुनाई दी। सारी खंदक गीत से गूँज उठी और सिपाही फिर ताजे हो गये, मानों चार दिन से सोते और मौज ही करते रहे हों।

(३)

दो पहर रात गई है। अँधेरा है। सन्नाटा छाया हुआ है। बोधासिंह खाली बिस्कुटों के तीन टिनों पर अपने दोनों कम्बल बिछाकर और लहनासिह के दो कम्बल और एक ब्रानकोट ओढ़ कर सो रहा है। लहनासिंह पहरे पर खड़ा हुआ है। एक आँख खाई के मुख पर है और एक बोधासिह के दुबले शरीर पर। बोधासिह कराहा।

"क्यों बोधासिंह भाई !" क्या है ?

"पानी पिला दो।"

लहनासिह ने कटोरा उसके मुँह से लगाकर पूछा—"कहो कैसे हो?"

पानी पीकर बोधा बोला—"कँपनी छूट रही है। रोम-रोम के तार दौड़ रहे हैं। दाँत बज रहे हैं।"

"अच्छा, मेरी जरसी पहन लो।"

"और तुम?"

"मेरे पास सिगड़ी है और मुझे गरमी लगती है। पसीना आ रहा है।"

"ना, मैं नहीं पहनता, चार दिन से तुम मेरे लिए···"

"हां, याद आई। मेरे पास दूसरी गरम जरसी है। आज सवेरे ही आई है। विलायत से मेमें बुन-बुनकर भेज रही हैं। गुरु उनका भला करें।" यों कहकर लहना अपना कोट उतार कर जरसी उतारने लगा।

"सच कहते हो?"

"और नहीं झूठ?" यों कहकर नाहीं करते बोधा को उसने जबर-दस्ती जरसी पहना दी और आप खाकी कोट जीन का कुरता पहनकर पहरे पर आ खड़ा हुआ। मेम की जरसी की कथा केवल कथा थी।

आधा घंटा बीता। इतने में खाई के मुँह से आवाज़ आई। "सूबेदार हजारासिंह।"

"कौन ? लपटन साहब ! हुक्म हुजूर !" कहकर सूबेदार तन कर फौजी सलाम करके सामने हुआ।

"देखो, इसी दम धावा करना होगा। मील भर की दूरी पर पूरब के कोने में एक जर्मन खाई है। उसमें पचास से ज्यादा जर्मन नहीं हैं। इन पेड़ों के नीचे-नीचे दो खेत काटकर रास्ता है। तीन-चार घुमाव हैं। जहाँ मोड़ है, वहाँ पन्द्रह जवान खड़े कर आया हूँ। तुम यहां दस आदमी छोड़कर सब को साथ ले, उनसे जा मिलो। खंदक छीन कर वहीं जब तक दूसरा हुक्म न मिले डटे रहो। हम यहां रहेगा।"

"जो हुक्म।"

चुपचाप सब तैयार हो गये। बोधा भी कम्बल उतारकर चलने लगा। तब लहनासिंह ने उसे रोका। लहनासिंह आगे हुआ, तो बोधा

के बाप सूबेदार ने उंगली से बोधा की ओर इशारा किया। लहनासिंह समझकर चुप हो गया। पीछे दस आदमी कौन रहें, इस पर बड़ी हुज्जत हुई। कोई रहना न चाहता था। समझा बुझाकर सूबेदार ने मार्च किया। लपटन साहब लहना की सिगड़ी के पास मुँह फेर कर खड़े हो गये और जेब से सिगरेट निकाल कर सुलगाने लगे। दस मिनट के बाद उन्होंने लहना की ओर हाथ बढ़ाकर कहा—"लो तुम भी पियो।"

आँख मारते-मारते लहनासिंह सब समझा गया। मुँह का भाव छिपाकर बोला—"लाओ, साहब।" हाथ आगे करते ही उसने सिगड़ी के उजाले में साहब का मुँह देखा, बाल देखे, तब उसका माथा ठनका। लपटन साहब के पट्टियों वाले बाल एक दिन में कहाँ उड़ गये और उनकी जगह कैदियों के-से कटे हुए बाल कहाँ से आ गये ?

शायद साहब शराब पिये हुए हैं और उन्हें बाल कटवाने का मौका मिल गया है ? लहनासिंह ने जाँचना चाहा। लपटन साहब पाँच वर्ष से उनकी रेजीमेंट में थे।

"क्यों साहब, हम लोग हिन्दुस्तान कब जायेंगे ?"

"लड़ाई खत्म होने पर। क्यों क्या यह देश पसन्द नहीं ?"

"नहीं साहब, शिकार के वे मजे यहाँ कहाँ ? याद है, पारसाल नकली लड़ाई पीछे हम और आप जगाधारी के जिले में शिकार करने गये थे—'हाँ, हाँ—वहीं, जब आप खोते* पर सवार थे और आपका खानसामा अब्दुल्ला रास्ते के एक मन्दिर में जल चढ़ाने को रह गया था ? 'बेशक, पाजी कहीं का। सामने से वह नीलगाय निकली कि ऐसी बड़ी मैंने कभी न देखी थी। और आपकी एक गोली कंधे में लगी और पुट्ठे में निकली। ऐसे अफसर के साथ शिकार खेलने में मजा है। क्यों साहब, शिमले से तैयार होकर उस नीलगाय का सिर आ गया था न ? आपने कहा था कि रेजीमेंट की मैस में लगायेंगे !" "हो,

*गधे।

पर मैंने वह विलायत भेज दिया" "ऐसे बड़े-बड़े सींग ! दो-दो फुट के तो होंगे ?"

"हाँ, लहनासिंह दो फुटचार इंच के थे, तुम ने सिगरेट नहीं पिया ?"

"पीता हूँ साहब, दियासलाई ले आता हूँ" कहकर लहनासिंह खन्दक में घुसा। अब उसे सन्देह नहीं रहा था। उसने झटपट निश्चय कर लिया कि क्या करना चाहिये।

अंधेरे में किसी सोने वाले से वह टकराया।

"कौन ? वजीरासिंह ?"

"हाँ क्यों लहना ? क्या कयामत आ गई ; जरा तो आँख लगने दी होती ?"

४

"होश में आओ। कयामत आई है और लपटन साहब की वर्दी पहनकर आई है।"

"क्या ?"

"लपटन साहब या तो मारे गये हैं या कैद हो गये हैं। उनकी वर्दी पहनकर कोई जर्मन आया है। सूबेदार ने इसका मुँह नहीं देखा, मैंने देखा है और बातें की हैं। सौहरा* साफ उर्दू बोलता है, पर किताबी उर्दू और मुझे पीने को सिगरेट दिया है ?"

"तो अब ?"

"अब मारे गये। धोखा है। सूबेदार कीचड़ में चक्कर काटते फिरेंगे और यहाँ खाई पर धावा होगा। उधर उन पर खुले में धावा होगा। उठो, एक काम करो। पल्टन के पैरों के निशान देखते-देखते दौड़ जाओ। अभी बहुत दूर न गये होंगे। सूबेदार से कहो एक दम लौट आवें। खंदक की बात झूठ है। खंदक के पीछे से निकल जाओ, पत्ता तक न खड़के। देर मत करो।'

*सुसरा (गाली)

"हुकुम तो यह है कि यहीं—"

"ऐसी तैसी हुकुम की। मेरा हुकुम—जमादार लहनासिंह जो इस वक्त यहाँ सबसे बड़ा अफसर है उसका हुकुम है। मैं लपटन साहब की खबर लेता हूँ।"

"पर यहाँ तो तुम आठ ही हो।"

"आठ नहीं दस लाख। एक-एक सिख सवा लाख के बराबर होता है। चले जाओ।"

लौटकर खाई के मुहाने पर लहनासिंह दीवार से चिपक गया। उसने देखा कि लपटन साहब ने जेब से बेल के बराबर तीन गोले निकाले। तीनों को तीन जगह ख़ंदक की दीवारों में घुसेड़ दिया और तीनों में एकतार-सा बाँध दिया। तार के आगे सूत की एक गुत्थी थी, जिसे सिगड़ी के पास रखा। बाहर की तरफ जाकर एक दियासलाई जलाकर गुत्थी पर रखने—

बिजली की तरह दोनों हाथों से उल्टी बन्दूक को उठाकर लहनासिंह ने साहब की कुहनी पर तान कर दे मारा। धमाके के साथ साहब के हाथ से दियासलाई गिर पड़ी। लहनासिंह ने एक कुंदा साहब की गर्दन पर मारा और साहब 'ओ माई गाड*' कहते हुए चित्त हो गये। लहनासिंह ने तीन गोले बीनकर खंदक के बाहर फेंके और साहब को घसीटकर सिगड़ी के पास लिटाया। जेबों की तलाशी ली। तीन चार लिफाफे और एक डायरी निकालकर उन्हें अपनी जेब के हवाले किया।

साहब की मूर्छा हटी। लहनासिंह हँसकर बोला—"क्यों लपटन साहब? मिजाज कैसा है? आज मैंने बहुत बातें सीखीं। यह सीखा कि सिख सिगरेट पीते हैं। यह सीखा कि जगाधरी के जिले में नीलगायें होती हैं और उनके दो फुट चार इंच के सींग होते हैं। यह सीखा कि मुसलमान ख़ानसामा मूर्तियों पर जल चढ़ाते हैं और लपटन साहब खोते पर चढ़ते हैं, पर यह तो कहो, ऐसा साफ उर्दू कहाँ से सीख आये?

*हाय! मेरे राम! (जर्मन)

हमारे लपटन साहब तो बिना 'डेम' के पाँच लफ्ज भी नहीं बोला करते थे।'

लहना ने पतलून की जेबों की तलाशी नहीं ली थी। साहब ने, मानों जाड़े से बचने के लिए, दोनों हाथ जेबों में डाले।

लहनासिंह कहता गया—"चालाक तो बड़े हो; पर माझे का लहना इतने बरस लपटन साहब के साथ रहा है। उसे चकमा देने के लिए चार आँखें चाहिए। तीन महीने हुए, एक तुरकी मौलबी मेरे गाँव में आया था। औरतों को बच्चे होने का ताबीज बांटता था और बच्चों को दवाई देता था। चौधरी के बड़ के नीचे मंजा* बिछाकर हुक्का पीता रहता था और कहता था कि जर्मनी वाले बड़े पण्डित हैं। वेद पढ़कर उनमें से विमान चलाने की विद्या जान गये हैं। गौ को नहीं मारते। हिन्दुस्तान में आ जायेंगे तो गौ हत्या बन्द कर देंगे। मण्डी में बनियों को बहकाता था कि डाकखाने से रुपये निकाल लो, सरकार का राज्य जाने वाला है। डाक-बाबू पोल्हूराम भी डर गया था। मैंने मुल्ला जी की दाढ़ी मूँड दी थी और गाँव से बाहर निकालकर कहा था कि जो मेरे गाँव में अब पैर रक्खा तो—

साहब की जेब में से पिस्तौल चली और लहना की जाँघ में गोली लगी। इधर लहना की हैनरी मार्टिनी के दो फायरों ने साहब की कपाल-क्रिया कर दी। धड़का सुनकर सब दौड़ आये।

बोधा चिल्लाया—'क्या है ?'

लहनासिंह ने तो उसे यह कहकर सुला दिया कि एक हड़का हुआ कुत्ता आया था, मार दिया और औरों से सब हाल कह दिया। सब बन्दूकें लेकर तैयार हो गये। लहना ने साफा फाड़कर घाव के तरफ दोनों पट्टियाँ कसकर बाँधी। घाव मांस ही में था। पट्टियों के कसने से लहू निकलना बन्द हो गया।

---

*खटिया

इतने में सत्तर जर्मन चिल्लाकर खाई में घुस पड़े। सिक्खों की बन्दूकों की बाढ़ ने पहले धावे को रोका। पर यहाँ थे आठ (लहनासिंह तक-तक कर मार रहा था, वह खड़ा था और लेटे हुए थे) और वे सत्तर। अपने मुर्दा भाइयों के शरीर पर चढ़कर जर्मन आगे घुस आते थे। थोड़े से मिनटों में वे—

अचानक आवाज आई 'वाह गुरुजी की फतह ! वाह गुरुजी का खालसा !' और धड़ाधड़ बन्दूकों के फायर जर्मनों की पीठ पर पड़ने लगे। ऐन मौके पर जर्मन दो चक्की के पाटों के बीच में आ गये। पीछे से सूबेदार हजारासिंह के जवान आग बरसाते थे और सामने लहनासिंह के साथियों के संगीन चल रहे थे। पास आने पर पीछे वालों ने भी संगीन पिरोना शुरू कर दिया। एक किलकारी और—'अकाल सिक्खाँ दी फौज आई। वाह गुरुजी दी फतह ! वाह गुरुजी दा खालसा !! सत श्री अकाल पुरुख !!!' और लड़ाई खतम हो गई। तिरसठ जर्मन या तो खेत रहे थे या कराह रहे थे। सिक्खों में पन्द्रह के प्राण गये। सूबेदार के दाहिने कंधे में से गोली आर-पार निकल गई। लहनासिंह की पसली में एक गोली लगी। उसने घाव को खंदक की गीली मिट्टी से पूर लिया और बाकी को साफा कसकर कमरबन्द की तरह लपेट लिया। किसी को खबर न हुई कि लहना के दूसरा घाव—भारी घाव लगा है।

लड़ाई के समय चांद निकल आया था, ऐसा चांद जिसके प्रकाश से संस्कृत-कवियों का दिया हुआ 'क्षयी' नाम सार्थक होता है और हवा ऐसी चल रही थी जैसा कि बाणभट्ट की भाषा में 'दन्तवीणोपदेशाचार्य्य' कहलाती। वजीरासिंह कह रहा था कि कैसे मन-मन-भर फ्रांस की भूमि मेरे बूटों से चिपक रही थी, जब मैं दौड़ा-दौड़ा सूबेदार के पीछे गया था। सूबेदार ने लहनासिंह से सारा हाल सुना और कागजात पाकर वे उसकी तुरत-बुद्धि को सराह रहे थे और कह रहे थे कि तू न होता तो आज सब मारे जाते।

इस लड़ाई की आवाज तीन मील दाहिनी ओर की खाई वालों ने सुन ली थी। उन्होंने पीछे टेलीफोन कर दिया था। वहाँ से झटपट दो डाक्टर और दो बीमार ढोने की गाड़ियाँ चलीं, जो कोई डेढ़ घंटे के अन्दर-अन्दर आ पहुँची। फील्ड अस्पताल नजदीक था। सुबह होते-होते वहाँ पहुँच जायेंगे, इसलिए मामूली पट्टी बाँध कर एक गाड़ी में घायल लिटाये गये और दूसरी में लाशें रक्खी गईं। सूबेदार ने लहनासिंह की जाँघ में पट्टी बँधवानी चाही, पर उसने यह कहकर टाल दिया कि थोड़ा घाव है, सवेरे देखा जायगा। बोधासिंह ज्वर में बर्रा रहा था। वह गाड़ी में लिटाया गया। लहना को छोड़कर सूबेदार जाते नहीं थे। यह देख लहना ने कहा—"तुम्हें बोधा की कसम है और सूबेदारनी जी की सौगंध है, जो इस गाड़ी में न चले जाओ।"

"और तुम ?"

"मेरे लिए वहाँ पहुँच कर गाड़ी भेज देना। और जर्मन मुर्दों के लिए भी तो गाड़ियाँ आती होंगी। मेरा हाल बुरा नहीं हैं। देखते नहीं, मैं खड़ा हूँ ? वजीरासिंह मेरे पास ही है।"

"अच्छा, पर—"

"बोधा गाड़ी पर लेट गया ? भला। आप भी चढ़ जाओ। सुनिए तो, सूबेदारनी होराँ को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिखा देना और जब घर जाओ तो कह देना कि मुझसे जो उसने कहा था, वह मैंने कर दिया।"

गाड़ियाँ चल पड़ी थीं। सूबेदार ने चढ़ते-चढ़ते लहना का हाथ पकड़ कर कहा—"तूने मेरे और बोधा के प्राण बचाये हैं। लिखना कैसा ? साथ ही घर चलेंगे। अपनी सूबेदारनी को तू ही कह देना। उसने क्या कहा था ?"

"अब आप गाड़ी पर चढ़ जाओ। मैंने जो कहा, वह लिख देना।"

गाड़ी के जाते ही लहना लेट गया—"वजीरा पानी पीला दे और मेरा कमरबंद खोल दे। तर हो रहा है।"

५

मृत्यु के कुछ समय पहले स्मृति बहुत साफ हो जाती है। जन्म भर की घटनाएँ एक-एक करके सामने आती हैं। सारे दृश्यों के रंग साफ होते हैं, समय की धुंध बिलकुल उन पर से हट जाती है।

× × ×

लहनासिंह बारह वर्ष का है। अमृतसर में मामा के यहाँ आया हुआ है। दही वाले के यहाँ, सब्जी वाले के यहाँ, हर कहीं उसे एक आठ वर्ष की लड़की मिल जाती है। जब वह पूछता है, तेरी कुड़माई हो गई ? तब 'धत्' कह कर वह भाग जाती है। एक दिन उसने वैसे ही पूछा तो उसने कहा—"हाँ, कल हो गई, देखते नहीं यह रेशम के फूलों वाला सालू ?" सुनते ही लहनासिंह को दुःख हुआ। क्रोध हुआ। क्यों हुआ ?

"वजीरासिंह पानी पिला दे।"

× × ×

पच्चीस वर्ष बीत गये। अब लहनासिंह नं० ७७ राइफल्स में जमादार हो गया है। उस आठ वर्ष की कन्या का ध्यान ही न रहा। न मालूम वह कभी मिली थी, या नहीं। सात दिन की छुट्टी लेकर जमीन के मुकद्दमे की पैरवी करने वह अपने घर गया। यहाँ रेजिमेंट के अफसर की चिटठी मिली कि फौज लाम पर जाती है। फौरन चले आओ। साथ ही सूबेदार हजारासिंह की चिट्ठी मिली कि मैं और बोधासिंह भी लाम पर जाते हैं। लौटते हुए हमारे घर होते जाना। साथ चलेंगे। सूबेदार का गाँव रास्ते में पड़ता था और सूबेदार उसे बहुत चाहता था। लहनासिंह सूबेदार के यहाँ पहुँचा।

जब चलने लगे, तब सूबेदार 'बड़' में से निकल कर आया। बोला—'लहना, सूबेदारनी तुम को जानती हैं। बुलाती हैं ?" कब से रेजिमेंट के क्वार्टरों में तो कभी सूबेदार के घर के लोग रहे नहीं। दरवाजे पर

जाकर 'मत्था टेकना' कहा। असीस सुनी। लहनासिंह चुप।

"मुझे पहचाना ?"

"नहीं।"

"तेरी कुड़माई हो गई ?—धत्—कल हो गई—देखते नहीं रेशमी बूटों वाला सालू—अमृतसर में—"

भावों की टकराहट से मूर्छा खुली। करवट बदली। पसली का घाव बह निकला।

"वजीरा, पानी पिला"—उसने कहा था।

× × ×

स्वप्न चल रहा है सूबेदारनी कह रही है—"मैंने तेरे को आते ही पहचान लिया। एक काम कहती हूँ। मेरे तो भाग फूट गये। सरकार ने बहादुरी का खिताब दिया है, लायलपुर में जमीन दी है, आज नमक-हलाली का मौका आया है। पर सरकार ने हम तीमियों+की एक घघरिया पलटन क्यों न बना दी जो मैं भी सूबेदार जी के साथ चली जाती ? एक बेटा है। फौज में भर्ती हुए उसे एक ही बरस हुआ। उसके पीछे चार और हुए, पर एक भी नहीं जिया।" सूबेदारनी रोने लगी—"अब दोनों जाते हैं। मेरे भाग ! तुम्हें याद है, एक दिन टाँगे वाले का घोड़ा दही वाले की दुकान के पास बिगड़ गया था। तुमने उस दिन मेरे प्राण बचाये थे। आप घोड़े की लातों में चले गये थे और मुझे उठा कर दूकान के तख्ते पर खड़ा कर दिया था। ऐसे ही इन दोनों को बचाना। यह मेरी भिक्षा है। तुम्हारे आगे मैं आँचल पसारती हूँ।"

रोती-रोती सूबेदारनी ओवरी × में चली गई। लहना भी आंसू पोंछता हुआ बाहर आया।

"वजीरासिंह, पानी पिला"—उसने कहा था।

लहना का सिर अपनी गोद में रखे वजीरासिंह बैठा है। जब

+स्त्रियों। ×अन्दर का घर

माँगता है, तब पानी पिला देता है। आध घण्टे तक लहना चुप रहा, फिर बोला—"कौन ? कीरतसिंह ?"

वजीरा ने कुछ समझ कर कहा—"हाँ।"

"भइया, मुझे और ऊँचा कर ले। अपने पट्ट+पर मेरा सिर रख ले।"

"हाँ, अब ठीक है। पानी पिला दे। बस, अब के हाड़×में यह आम खूब फलेगा। चाचा भतीजा दोनों यहीं बैठकर आम खाना। जितना बड़ा तेरा भतीजा है उतना ही बड़ा यह आम है। जिस महीने उसका जन्म हुआ था उसी महीने में मैंने इसे लगाया था।

वजीरासिंह के आंसू टप-टप टपक रहे थे।

× × ×

कुछ दिन पीछे लोगों ने अखबारों में पढ़ा—फ्राँस और बेल्जियम-६८ वीं सूची—मैदान में घावों से मरा—नं० ७७ सिख राइफल्स जमादार लहनासिंह।

+जाँघ ×आषाढ़

महादेवी वर्मा

जन्म सन् १९०७ ई०

जहाँ चित्रकला की निपुण चितेरी महादेवी जी ने आत्म प्रेरक गीत रचकर गीत काव्य के माध्यम से हृदय की कोमल भावनाओं को अभि-व्यक्त करने में ही कला प्रदर्शित की है वहाँ रोचक कहानियाँ, आकर्षक संस्मरणात्मक रेखाचित्र और निबन्ध लिखकर यह सिद्ध कर दिया है कि पद्य की भाँति ही गद्य पर भी उनका गहन अधिकार है।

जीवन—महादेवी जी का जन्म फर्रुखाबाद के एक प्रतिष्ठित घराने में हुआ। माता हिन्दी कविता की विदुषी एवं उपासिका थीं तो नाना ब्रजभाषा के अच्छे कवि और भक्त पुरुष। तुलसी, सूर और मीरा की रचनाओं का प्रथम परिचय माता ही के द्वारा मिला। हिन्दी और संस्कृत के प्रति रुचि बढ़ गई। १९३३ में संस्कृत में एम. ए. पास किया और उसी वर्ष प्रयाग महिला विद्यापीठ में प्रिंसिपल नियुक्त हो गईं। अभी तक आप वहीं पर कार्य कर रही हैं। सर्वप्रथम आपने ब्रजभाषा में कुछ कविताएँ लिखीं; परन्तु शीघ्र ही राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त की खड़ी बोली की रचनाओं से प्रभावित होकर आपने भी खड़ी बोली में कवितायें लिखना आरम्भ कर दिया और उसके लेखकों में अग्रणी बन गईं। मंगला पुरस्कार भी आपको मिल चुका है और कुछ समय पूर्व उत्तर-प्रदेश धारा सभा की सदस्या चुनी गई हैं तथा राष्ट्रपति द्वारा 'पद्म भूषण' पदक से भी शोभित किया गया है।

रचनाएँ—कला पक्ष पर जोर न देकर हृदय पक्ष पर ही आपकी लेखनी अधिक चली है। वेदना और करुणा की मात्रा इतनी अधिक है कि गीतों के रस के साथ २ टीस उठकर उसे और भी अधिक मोहक बना देती है। सत्य तो यह है कि जीवन पर छाई हुई गहन परिस्थितियों

का प्रभाव इनकी सभी रचनाओं पर है जिसके कारण वे हिन्दी साहित्य में अमर हैं। आपकी काव्य रचनाओं में 'दीपशिखा' और 'यामा' अत्याधिक प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। 'सान्ध्यगीत' और 'नीरजा' भी लोकप्रिय हैं। 'अतीत के चल चित्र', 'स्मृति की रेखायें', 'पथ के साथी' आदि की कहानियाँ और रेखाचित्र तथा 'क्षणदा' और 'शृंखला की कड़ियाँ' के निबन्ध और अन्य रचनाएँ विभिन्न रूपों में साहित्य की निधि बनकर उसके भण्डार को पूरा कर रही हैं।

भाषा-शैली—आपकी रचनायें खड़ी बोली में हैं। भाषा में मधुरता और कोमलता को विशेष स्थान मिला है। शब्द प्रयोग करते समय प्रायः संस्कृत के सरस तत्सम शब्दों और उनके तद्‌भव रूपों का संचय किया है। कहीं-कहीं पर अरबी और फारसी के प्रचलित शब्दों का भी प्रयोग किया गया है और कहीं ग्रामों में सहज प्रचलित शब्दों का। अपनी भाषा को अधिक सुन्दर बनाने के लिए लक्षणा एवं व्यंजना नामक शब्द शक्तियों के साथ-साथ अनुस्वारान्त शब्दों, मुहावरों और लोकोक्तियों का भी समावेश किया है। शैली प्रयोग में यह अग्रण्य रही हैं। चित्र-शैली, प्रगीत शैली, सम्बोधन शैली और प्रश्न शैली का विभिन्न रचनाओं में दर्शन होते हैं।

प्रस्तुत-कहानी—'घीसा' में महादेवी वर्मा जी की अन्तरात्मा में मची उथल-पुथल का और भारतीय हीनतामय जीवन का सजीव चित्रण है।

चरित्र प्रधान संस्मरण

घीसा

महादेवी वर्मा

वर्तमान की कौन-सी अज्ञात प्रेरणा हमारे अतीत की किसी भूली हुई कथा को सम्पूर्ण मार्मिकता के साथ दोहरा जाती है यह जान लेना सहज होता तो मैं भी आज गाँव के उस मलिन सहमे नन्हें से विद्यार्थी की सहसा याद आ जाने का कारण बता सकती जो एक छोटी लहर के समान ही मेरे जीवन-तट को अपनी सारी आर्द्रता से छूकर अनन्त जल-राशि में विलीन हो गया है।

गंगा पार झूँसी के खंडहर और उसके आस-पास के गाँवों के प्रति मेरा जैसा अकारण आकर्षण रहा है उसे देखकर ही सम्भवतः लोग जन्म-जन्मान्तर के सम्बन्ध का व्यंग्य करने लगे हैं। है भी तो आश्चर्य की बात! जिस अवकाश के समय को लोग इष्ट-मित्रों से मिलने, उत्सवों में सम्मिलित होने तथा अन्य आमोद-प्रमोद के लिए सुरिक्षत रखते हैं उसी को मैं इस खंडहर और उसके क्षत-विक्षत चरणों पर पछाड़ें खाती हुई भगीरथी के तट पर काट ही नहीं, सुख से काट देती हूँ।

दूर पास बसे हुए गुड़ियों के बड़े-बड़े घरौंदों के समान लगने वाले कुछ लिपे-पुते कुछ जीर्ण घरों से स्त्रियों का जो झुण्ड पीतल-ताँबे के चमचमाते, मिट्टी के नये, लाल और पुराने बदरंग घड़े लेकर गंगाजल भरने आता है उसे भी मैं पहचान गई हूँ। उनमें कोई बूटेदार लाल, कोई निरी काली, कोई कुछ सफेद और कोई छेदों से चलनी बनी हुई

धोती पहने रहती है। किसी की मोम लगी पाटियों के बीच में एक अँगुल चौड़ी सिंदूर-रेखा अस्त होते सूर्य की किरणों में चमकती रहती है और किसी की कड़वे तेल से भी अपरिचित रूखी जटा बनी हुई छोटी-छोटी लट मुख को घेरकर उसकी उदासी को और अधिक केंद्रित कर देती है। किसी की साँवली गोल कलाई पर शहर की कच्ची नगदार चूड़ियों के नग रह-रह कर हीरे-से चमक जाते हैं और किसी की दुर्बल कलाई पर लाख की पीली मैली चूड़ियाँ काले पत्थर पर मटमैले चंदन की मोटी लकीरें जान पड़ती हैं। कोई गिलहट के कड़े-युक्त हाथ घड़े की ओट में छिपाने का प्रयत्न-सा करती रहती है और कोई चाँदी के पछेली कंकना की झनकार के ताल के साथ ही बात करती है। किसी के कान में लाख की पैसे वाली तरकी धोती से कभी-कभी झाँक भर लेती है और किसी की ढारें लम्बी जंजीर से गला और गाल एक करती रहती हैं। किसी के गुदना गुदे गेहुँए पैरों में चाँदी के कड़े सुडौलता की परिधि-सी लगते हैं और किसी की फैली उँगलियों और सफेद एड़ियों के साथ मिली हुई स्याही राँगे और काँसे के कड़ों को लोहे की साफ की हुई बेड़ियाँ बना देती हैं।

वे सब पहले हाथ-मुँह धोती हैं फिर पानी में कुछ घुसकर घड़ा भर लेती हैं——तब घड़ा किनारे रख सिर पर इँडुरी ठीक करती हुई मेरी ओर देखकर कभी मलिन, कभी उजली, कभी दुःख की व्यथा-भरी, कभी सुख की कथा-भरी मुस्कान से मुस्करा देती हैं। अपने मेरे बीच का अंतर उन्हें ज्ञात है तभी कदाचित् वे इस मुस्कान के सेतु से उसका वार-पार जोड़ना नहीं भूलतीं।

ग्वालों के बालक अपनी चरती हुई गाय-भैंसों में से किसी को उस ओर बहकते देखकर ही लकुटी लेकर दौड़ पड़ते हैं, गडरियों के बच्चे अपने झुण्ड की एक भी बकरी या भेड़ को उस ओर बढ़ते देखकर कान पकड़ कर खींच ले जाते हैं और व्यर्थ दिन भर गिल्ली-डंडा खेलने वाले

निठल्ले लड़के भी बीच-बीच में नजर बचा कर मेरा रुख देखना नहीं भूलते।

उस पार शहर में दूध बेचने जाते या लौटते हुए ग्वाले किले में काम करने जाते या घर आते हुए मजदूर, नाव बाँधते या खोलते हुए मल्लाह कभी 'चुनरी तरंगाउब लाल मजीठी हो' गीत गाते मुझ पर दृष्टि पड़ते ही अकचका कर चुप हो जाते हैं। कुछ विशेष सभ्य होने का गर्व करने वालों से मुझे एक सलज्ज नमस्कार भी प्राप्त हो जाता है।

कह नहीं सकती कब और कैसे मुझे उन बालकों को कुछ सिखाने का ध्यान आया। पर जब बिना कार्यकारिणी के निर्वाचन के, बिना पदाधिकारियों के चुनाव के, बिना भवन के, बिना चंदे की अपील के और सारांश यह कि बिना किसी चिर-परिचित समारोह के मेरे विद्यार्थी पीपल के पेड़ की घनी छाया में मेरे चारों ओर एकत्र हो गए तब मैं बड़ी कठिनाई से गुरु के उपयुक्त गंभीरता का भार वहन कर सकी।

और वे जिज्ञासु कैसे थे सो कैसे बताऊँ! कुछ कानों में बालियाँ और हाथ के कड़े पहने धुले कुरते और ऊँची मैली धोती में नगर और ग्राम का सम्मिश्रण जान पड़ते थे, कुछ पसलियों, बड़े पेट और टेढ़ी दुर्बल टांगों के कारण अनुमान से ही मनुष्य-संतान की परिभाषा में आ सकते थे और कुछ अपने दुर्बल, रूखे और मलिन मुखों की करुणा, सौम्यता और निष्प्रभ पीली आँखों में संसार भर की अपेक्षा बटोर बैठे थे। पर घीसा उनमें अकेला ही रहा और आज भी मेरी स्मृति में अकेला ही आता है।

वह गोधूली मुझे अब तक नहीं भूली। सन्ध्या के लाल सुनहली आभा वाले उड़ते हुए दुकूल पर रात्रि ने मानों छिप कर अंजन की मूठ चलादी थी। मेरा नाववाला कुछ चिन्तित-सा लहरों की ओर देख रहा था; बूढ़ी भक्तिन मेरी किताबें, कागज-कलम आदि सँभाल कर नाव पर रख

कर बढ़ते अन्धकार पर खिजला कर बुदबुदा रही थी या मुझे सनकी बनाने वाले विधाता पर, यह समझना कठिन था। बेचारी मेरे साथ रहते-रहते दस लम्बे वर्ष काट आयी है, नौकरानी अपने-आप को एक प्रकार की अभिभाविका मानने लगी है, परन्तु मेरी सनक का दुष्परिणाम सहने के अतिरिक्त उसे क्या मिला है ? सहसा ममता से भरा मन भर आया, परन्तु नाव की ओर बढ़ते हुए मेरे पैर, फैलते हुए अन्धकार में से एक स्त्री-मूर्ति को अपनी ओर आता देख ठिठक रहे। साँवले कुछ लम्बे-से मुखड़े में पतले स्याह ओठ कुछ अधिक स्पष्ट हो रहे थे। आँखें छोटी, पर व्यथा से आर्द्र थीं। मलिन बिना किनारी की गाढ़े की धोती ने उसके सलूका रहित अंगों को भली-भाँति ढँक लिया था; परन्तु तब भी शरीर की सुडौलता का आभास मिल रहा था। कन्धे पर हाथ रख कर वह जिस दुर्बल अर्धनग्न बालक को अपने पैरों से चिपकाए हुए थी उसे मैंने सन्ध्या के झुटपुटे में ठीक से नहीं देखा।

स्त्री ने रुक-रुक कर कुछ शब्दों और कुछ संकेतों में जो कहा उससे, मैं केवल यह समझ सकी कि उसके पति नहीं हैं, दूसरों के घर लीपने-पोतने का काम करने वह चली जाती है और उसका यह अकेला लड़का ऐसे ही घूमता रहता है। मैं इसे भी और बच्चों के साथ बैठने दिया करूँ तो यह कुछ तो सीख सके। दूसरे इतवार को मैंने उसे सब से पीछे अकेले एक ओर दुबक कर बैठे हुए देखा। पक्का रंग पर गठन में और अधिक सुडौल, मलिन मुख जिसमें दो पीली पर सचेत आँखें जड़ी-सी जान पड़ती थीं। कस कर बन्द किये हुए पतले होठों की दृढ़ता और सिर पर खड़े हुए छोटे-छोटे रूखे बालों की उग्रता उसके मुख की संकोच-भरी कोमलता से विद्रोह कर रही थीं। उभरी हुई हड्डियों वाली गर्दन को संभाले हुए झुके कंधों से, रक्तहीन मटमैली हथेलियों और टेढ़े-मेढ़े कटे हुए नाखूनों-युक्त हाथों वाली पतली बाहें ऐसी झूलती थीं जैसे ड्रामा में विष्णु बनने वाले की दो नकली भुजाएँ। निरन्तर दौड़ते रहने के कारण उस लचीले शरीर से दुबले पतले पैर ही विशेष

पुष्ट जान पड़ते थे—बस ऐसा ही था वह घीसा। न नाम में कवित्व की गुंजाइश न शरीर में।

पर उसकी सचेत आँखों में न जाने कौन-सी जिज्ञासा थी। वे निरन्तर घड़ी की तरह खुली मेरे मुख पर टिकी ही रहती थीं।

लड़के उससे कुछ खिचे-खिचे से रहते थे। इसलिए नहीं कि वह कोरी था वरन् इसलिए कि किसी की माँ, किसी की नानी, किसी की बुआ आदि ने घीसा से दूर रहने की नितान्त आवश्यकता उन्हें कान पकड़-पकड़ कर समझा दी थी—यह भी उन्हीं ने बताया और बताया घीसा के सबसे अधिक कुरूप नाम का रहस्य। बाप तो जन्म से पहले ही नहीं रहा। घर में कोई देखने-भालने वाला न होने के कारण माँ उसे बंदरियों के बच्चे के समान चिपकाये फिरती थी। उसे एक ओर लिटा कर जब वह मजदूरी के काम में लग जाती थी तब पेट के बल घिसट-घिसट कर बालक संसार के प्रथम अनुभव के साथ-साथ इस नाम की योग्यता भी प्राप्त करता जाता था।

फिर धीरे-धीरे अन्य स्त्रियाँ भी मुझे आते-जाते रोक कर अनेक प्रकार की भाव-भंगिमा के साथ एक विचित्र सांकेतिक भाषा में घीसा की जन्म-जात अयोग्यता का परिचय देने लगीं। क्रमशः मैंने उसके नाम के अतिरिक्त और कुछ भी न जाना।

उसका बाप था कोरी, पर बड़ा अभिमानी और भला आदमी बनने का इच्छुक। डलिया आदि बुनने का काम छोड़कर वह थोड़ी बढ़ईगीरी सीख आया और केवल इतना नहीं, एक दिन चुपचाप दूसरे गांव से युवती वधू लाकर उसने अपने गाँव की सजातीय सुन्दरी बालिकाओं को उपेक्षित और उनके योग्य माता-पिता को निराश कर डाला। मनुष्य इतना अन्याय सह सकता है; परन्तु ऐसे अवसर पर भगवान् की असहिष्णुता प्रसिद्ध ही है। इसी से जब गाँव के चौखट किवाड़ बना कर और ठाकुरों के घर में सफेदी करके उसने कुछ ठाट-बाट से रहना आरम्भ किया तब अचानक हैजे के बहाने वह वहाँ बुला लिया गया

जहाँ न जाने का बहाना न उसकी बुद्धि सोच सकी, न अभिमान। पर स्त्री भी कम गर्वीली न निकली। गांव के अनेक विधुर और अविवाहित कोरियों ने केवल उदारतावश ही उसकी जीवन-नैया पार लगाने का उत्तरदायित्व लेना चाहा; परन्तु उसने कहा 'हम सिंध के महरारू होइके का सियारन के जाब।' और बिना स्वर ताल के आँसू गिराकर, बाल खोल कर चूड़ियाँ फोड़ कर और बिना किनारे की धोती पहन कर जब उसने बड़े घर की विधवा का स्वाँग भरना आरम्भ किया तो सारा समाज क्षोभ के समुद्र में डूबने उतारने लगा। उस पर घीसा बाप के मरने के बाद हुआ है। हुआ तो वास्तव में छः महीने बाद, परन्तु उस समय के सम्बन्ध में क्या कहा जाय, जिसका कभी एक क्षण वर्ष-सा बीतता है और कभी एक वर्ष क्षण हो जाता है। इसी से वह छः माह का समय रबड़ की तरह खिच कर एक साल की अवधि तक पहुँच गया तो इसमें गांव वालों का क्या दोष ?

यह कथा अनेक क्षेपकोमय विस्तार के साथ सुनायी तो गयी थी ? मेरा मन फेरने के लिये और मन फिरा भी; परन्तु किसी सनातन नियम के कथा वाचकों की ओर न फिर कर कथा के नायकों की ओर फिर गया और इस प्रकार घीसा मेरे और अधिक निकट आ गया। वह अपना जीवन-सम्बन्धी अपवाद कदाचित् पूरा नहीं समझ पाया था; परन्तु अधूरे का भी प्रभाव उस पर न था क्योंकि वह सबको अपनी छाया से इस प्रकार बचाता रहता था मानो उसे कोई छूत की बीमारी हो।

पढ़ने, उसे सबसे पहले समझने, उसे व्यवहार के समय स्मरण रखने, पुस्तक में एक भी धब्बा न लगाने, स्लेट को चमचमाती रखने और अपने छोटे-से छोटे काम का उत्तरदायित्व बड़ी गम्भीरता से निभाने में उसके समान कोई चतुर काम न था। इसी से कभी-कभी मन चाहता कि उसकी माँ से उसे माँग ले जाऊँ और अपने पास रखकर उसके विकास की उचित व्यवस्था कर दूँ—परन्तु उस उपेक्षिता पर

मानिनी विधवा का वही एक सहारा था। वह अपने पति का स्थान छोड़ने पर प्रस्तुत न होगी यह भी मेरा मन जानता था और उस बालक के बिना उसका जीवन कितना दुर्बल हो सकता है यह भी मुझ से छिपा न था। फिर नौ साल के कर्त्तव्यपरायण घीसा की गुरु-भक्ति देख कर उसकी मातृ-भक्ति के सम्बन्ध में कुछ सन्देह करने का स्थान ही नहीं रह जाता था और इस तरह घीसा वहीं और उन्हीं कठोर परिस्थितियों में रहा जहाँ क्रूरतम नियति ने केवल अपने मनोविनोद के लिए ही उसे रख दिया था।

शनिश्चर के दिन ही वह अपने छोटे दुर्बल हाथों से पीपल की छाया को गोबर मिट्टी से पीला चिकनापन दे आता था। फिर इतवार को माँ के मजदूरी पर जाते ही एक मैले फटे कपड़े में बँधी रोटी और कुछ नमक या थोड़ा चबेना और एक डली गुड़ बगल में दबाकर, पीपल की छाया को एक बार फिर झाड़ने बुहाड़ने के पश्चात् वह गंगा के तट पर आ बैठता और अपनी पीली सतेज आंखों पर क्षीण साँवले हाथ की छाया कर दूर-दूर तक दृष्टि को दौड़ाता रहता। जैसे ही उसे मेरी नीली सफेद नाव की झलक दिखाई पड़ती। वैसे ही वह अपनी टाँगों पर तीर के समान उड़ता और बिना नाम लिये हुए ही साथियों को सुनाने के लिए गुरु साहब कहता हुआ फिर पेड़ के नीचे पहुँच जाता जहाँ न जाने कितनी बार दुहराये-तिहराये हुए कार्यक्रम की एक अन्तिम आवृत्ति आवश्यक हो उठती। पेड़ की नीची डाल पर रखी हुई मेरी शीतलपाटी उतार कर बारम्बार झाड़-पोंछ कर बिछाई जाती, कभी काम न आने वाली सूखी काली स्याही से कच्चे काँच की दवात अपने टूटे निब और उखड़े हुए रंग वाले भूरे कलम के साथ पेड़ कोटर से निकाल कर यथास्थान रख दी जाती और तब इस विचित्र पाठशाला का विचित्र मन्त्री और निराला विद्यार्थी कुछ आगे बढ़कर मेरे सप्रणाम स्वागत के लिए प्रस्तुत हो जाता।

महीने में चार ही दिन मैं वहाँ पहुँच सकती थी और कभी-कभी

काम की अधिकता से एक-आध छुट्टी का दिन और भी निकल जाता था, पर उस थोड़े से समय और इने-गिने दिनों में भी मुझे उस बालक के हृदय का जैसा परिचय मिला वह चित्रों के एल्बम के समान निरन्तर नवीन-सा लगता है।

मुझे आज भी वह दिन नहीं भूलता जब मैंने बिना कपड़ों का प्रबन्ध किये हुये उन बेचारों को सफाई का महत्व समझाते-समझाते थका डालने की मूर्खता की। दूसरे इतवार को सब जैसे-के-जैसे ही सामने थे—केवल कुछ गंगाजी में मुँह इस तरह धो आये थे कि मैल अनेक रेखाओं में विभक्त हो गया था, कुछ ने हाथ-पाँव ऐसे घिसे थे कि शेष मलिन शरीर के साथ में अलग जुड़े हुए-से लगते थे और कुछ 'न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी' की कहावत चरितार्थ करने के लिए कोट से मैले फटे कुरते घर ही छोड़कर ऐसे अस्थिपंजरमय रूप में आ उपस्थित हुए थे जिसमें उनके प्राण, 'रहने का आश्चर्य है गये अचम्भा कौन' की घोषणा करते जान पड़ते थे। पर घीसा ग़ायब था। पूछने पर लड़के काना-फूसी करने या एक साथ सभी उसकी अनुपस्थिति का कारण सुनाने को आतुर होने लगे। एक-एक शब्द जोड़-तोड़ कर समझना पड़ा कि घीसा माँ से कपड़ा धोने के साबुन के लिए तभी से कह रहा था—माँ को मज़दूरी के पैसे मिले नहीं और दूकानदार ने नाज लेकर साबुन दिया नहीं। कल रात को माँ को पैसे मिले और आज सवेरे वह सब काम छोड़कर साबुन लेने गयी। अभी लौटी है, अतः घीसा कपड़े धो रहा है; क्योंकि गुरु साहब ने कहा था कि नहा-धो साफ कपड़े पहन कर आना। और अभागे के पास कपड़े ही कहाँ थे! किसी दयावती का दिया हुआ एक पुराना कुरता जिसकी एक आस्तीन आधी थी और एक अंगौछा जैसा फटा टुकड़ा। जब घीसा नहा कर गीला अंगौछा ही लपेटे और आधा भीगा कुरता पहने अपराधी के समान मेरे सामने आ खड़ा हुआ तब उस समय समझ में आया कि द्रोणाचार्य ने अपने भील शिष्य से अगूंठा कैसे कटवा लिया था।

एक दिन न जाने क्या सोचकर मैं उन विद्यार्थियों के लिए ५-६ सेर जलेबियाँ ले गयी पर कुछ तोलने वाले की सफाई से, कुछ तुलवाने वाले की समझदारी से और कुछ वहाँ की छीना-झपटी के कारण प्रत्येक को पाँच से अधिक न मिल सकीं। एक कहता था मुझे एक कम मिली, दूसरे ने बताया मेरी अमुक ने छीन ली, तीसरे को घर में सोते हुए छोटे भाई के लिये चाहिए, चौथे को किसी की और याद आ गयी। पर इस कोलाहल में अपने हिस्से की जलेबियां लेकर घीसा कहाँ खिसक गया। यह कोई न जान सका। एक नटखट अपने साथी से कह रहा था। 'सार एक ठो पिलवा पाले हैं ओही को देय गवा होई' पर मेरी दृष्टि से संकुचित होकर चुप रह गया। और तब तक घीसा लौटा ही। उसका सब हिसाब ठीक था—जलखईवाले छन्ने में दो जलेबियाँ लपेट कर वह माई के लिए छप्पर में खोंस आया है, एक उसने अपने पाले हुए माँ के कुत्ते के पिल्ले को खिला दी और दो स्वयं खालीं। और चाहिएं, पूछने पर उसकी संकोचभरी आँखें झुक गयीं—ओठ कुछ हिले। पता चला कि पिल्ले को उससे कम मिली हैं। दें तो गुरु साहब पिल्ले को ही एक और दे दें।

और होली के पहले की एक घटना तो मेरी स्मृति में ऐसे गहरे रंगों से अंकित है जिसका धुल सकना सहज नहीं। उन दिनों हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य धीरे-धीरे बढ़ रहा था और किसी दिन उसके चरम सीमा तक पहुँच जाने की पूर्ण सम्भावना थी। घीसा दो सप्ताह से ज्वर में पड़ा था—दवा मैं भिजवा देती थी; परन्तु देख-भाल का कोई ठीक प्रबन्ध न हो पाता था। दो-चार दिन उसकी माँ स्वयं बैठी रही फिर एक अन्धी बुढ़िया को बिठा कर काम पर जाने लगी।

इतवार की साँझ को मैं यथाक्रम बच्चों को बिदा दे घीसा को देखने चली; परन्तु पीपल के पचास पग पहुंचते-पहुँचते उसी को डगमगाते पैरों पर गिरते-पड़ते अपनी ओर आते देख मेरा मन उद्विग्न हो उठा। वह तो उधर पन्द्रह दिन से उठा ही नहीं था अतः मुझे उसके सन्निपात-

ग्रस्त होने का ही सन्देह हुआ। उसके सूखे शरीर में तरल विद्युत्-सी दौड़ रही थी, आँखें और भी सतेज और मुख ऐसा था जैसे हल्की आँच में धीरे-धीरे लाल होने वाला लोहे का टुकड़ा।

पर उसके वात-ग्रस्त होने से भी अधिक चिन्ताजनक उसकी समझदारी की कहानी निकली। वह प्यास से जाग गया था पर पानी पास मिला नहीं और अन्धी मनियाँ की आजी से माँगना ठीक न समझ कर वह चुपचाप कष्ट सहने लगा। इतने में मुल्लू के कक्का ने पार से लौट कर दरवाजे से ही अन्धी को बताया कि शहर में दङ्गा हो रहा है और तब उसे गुरु साहब का ध्यान आया। मुल्लू के कक्का के हटते ही वह ऐसे हौले-हौले उठा कि बुढ़िया को पता ही न चला और कभी दीवार कभी पेड़ का सहारा लेता-लेता वह इस ओर भागा। अब वह गुरु साहब के गोड़ धर कर यहीं पड़ा रहेगा पर पार किसी तरह भी न जाने देगा।

तब मेरी समस्या और भी जटिल हो गयी। पार तो मुझे पहुँचना था ही पर साथ ही बीमार घीसा को ऐसे समझा कर जिससे उसकी स्थिति और गम्भीर न हो जाय। पर सदा के संकोची, नम्र और आज्ञाकारी घीसा का इस दृढ़ और हठी बालक में पता ही न चलता था। उसने पारसाल ऐसे ही अवसर पर हताहत दो मल्लाह देखे थे और कदाचित् इस समय उसका रोग से विकृत मस्तिष्क उन चित्रों में और गहरा रंग भर कर मेरी उलझन को और उलझा रहा था। पर उसे समझाने का प्रयत्न करते-करते अचानक ही मैंने एक ऐसा तार छू दिया जिसका स्वर मेरे लिए भी नया था। यह सुनते ही कि मेरे पास रेल में बैठकर दूर-दूर से आये हुये बहुत से विद्यार्थी हैं जो अपनी माँ के पास साल भर में एक ही बार पहुँच पाते हैं और जो मेरे न जाने से अकेले घबरा जायेंगे, घीसा का सारा हठ, सारा विरोध ऐसे बह गया जैसे वह कभी था ही नहीं।—और तब घीसा के समान तर्क की क्षमता किस में थी! जो साँझ को अपनी माई के पास नहीं जा सकते

उनके पास गुरु साहब को जाना ही चाहिए। घीसा रोकेगा तो उसके भगवान् जी गुस्सा हो जाएँगे; क्योंकि वे ही तो घीसा को अकेला बेकार घूमता देखकर गुरु साहब को भेज देते है आदि आदि। उसके तर्कों का स्मरण कर आज भी मन भर आता है। परन्तु उस दिन मुझे आपत्ति से बचाने के लिए अपने बुखार से जलते हुए अशक्त शरीर को घसीट लाने वाले घीसा को जब उसकी टूटी खटिया पर लिटाकर मैं लौटी तब मेरे मन से कौतूहल की मात्रा ही अधिक थी।

इसके उपरान्त घीसा अच्छा हो गया और धूल और सूखी पत्तियों को बाँधकर उन्मत्त के समान घूमने वाली गर्मी की हवा से उसका रोज संग्राम छिड़ने लगा—झाड़ते-झाड़ते वही पाठशाला धूल-धूसरित होकर, भूरे, पीले और कुछ हरे पत्तों की चादर में छिपकर; तथा कंकाल-शेष शाखाओं में उलझते, रूखे पत्तों को पुकारते, वायु की संतप्त सरसर से मुखरित होकर उस भ्रान्त बालक को चिढ़ाने लगती। तब मैंने तीसरे पहर से संध्या समय तक वहाँ रहने का निश्चय किया; परन्तु पता चला घीसा किसकिसाती आँखों को मलता और पुस्तक से बराबर धूल झाड़ता हुआ दिन भर वहीं पेड़ के नीचे बैठा रहता है मानो वह किसी प्राचीन युग का तपोव्रती दृढ़ ब्रह्मचारी हो जिसकी तपस्या भंग करने के लिए ही लू के झोंके आते हैं।

इस प्रकार चलते-चलते समय ने जब दाईं छूने के लिए दौड़ते हुए बालक के समान झपटकर उस दिन पर उँगली धर दी जब मुझे उन लोगों को छोड़ जाना था तब तो मेरा मन बहुत ही अस्थिर हो उठा। कुछ बालक उदास थे और कुछ खेलने की छुट्टी से प्रसन्न। कुछ जानना चाहते थे कि छुट्टियों के दिन चूने की टिपकियाँ रखकर गिने जायें या कोयले की लकीरें खींच कर। कुछ के सामने बरसात में चूते घरों में आठ पृष्ठ की पुस्तक बचा रखने का प्रश्न था और कुछ कागजों पर अकारण ही चूहों की समस्या का समाधान चाहते थे। ऐसे महत्व-पूर्ण कोलाहल में घीसा न जाने कैसे अपना रहना आवश्यक समझ लेता

था अतः सदा के समान आज भी मैंने उसे न खोज पाया। जब मैं चिन्तित-सी वहाँ से चली तब मन भारी भारी हो रहा था, आँखों में कोहरा-सा घिर आता था। वास्तव में उन दिनों डाक्टरों को मेरे पेट में फोड़ा होने का संदेह हो रहा था—आपरेशन की सम्भावना थी। कब लौटूँगी या नहीं लौटूँगी यही सोचते-सोचते मैंने फिर चारों ओर जो आर्द्र दृष्टि डाली वह कुछ समय तक उन परिचित स्थानों को भेंट कर वहीं उलझ रही।

पृथ्वी के उच्छ्वास के समान उठते हुए धुँधलेपन में वे कच्चे घर आकंठ मग्न हो गये थे—केवल फूस से मटमैले और खपरैल के पत्थर और काले छप्पर में वर्षा में वढ़ी गंगा के मिट्टी जैसे जल में पुरानी नावों के समान जान पड़ते थे। कछार की बालू में दूर तक फैले तरबूज के खेत अपने सिरकी और फूस के मुठियों, टट्टियों और रखवाली के लिए बनी पर्णकुटियों के कारण जल में बसे किसी आदिम दीप का स्मरण दिलाते थे। उनमें एक-दो दिये जल चुके थे तब मैंने दूर पर एक छोटा-सा काला धब्बा आगे बढ़ता देखा। वह घीसा ही होगा यह मैंने दूर से ही जान लिया। आज गुरु साहब को उसे विदा देना है यह उसका नन्हा हृदय अपनी पूरी संवेदन-शक्ति से जान रहा था इसमें संदेह नहीं था; परन्तु उस उपेक्षित बालक के मन में मेरे लिए कितनी सरल ममता और मेरे बिछोह की कितनी गहरी व्यथा हो सकती है यह जानना मेरे लिए शेष था।

निकट आने पर देखा कि उस धूमिल गोधूली में बादामी कागज पर काले चित्र के समान लगनेवाला नंगे बदन घीसा एक बड़ा तरबूज दोनों हाथों में सम्हाले था जिसमें बीच के कुछ कटे भाग में से भीतर की ईषत्‌लक्ष्य ललाई चारों ओर के गहरे हरेपन में कुछ खिले कुछ बंद गुलाबी फूल जैसी जान पड़ती थी।

घीसा के पास न पैसा था न खेत—तब क्या वह इसे चुरा लाया है! मन का संदेह बाहर आया ही और तब मैंने जाना कि जीवन का

खरा सोना छिपाने के लिए उस मलिन शरीर को बनाने वाला ईश्वर उस बूढ़े आदमी से भिन्न नहीं जो अपनी सोने की मोहर को कच्ची मिट्टी की दीवार में रखकर निश्चिन्त हो जाता है। घीसा गुरु साहब से झूठ बोलना भगवान् जी से झूठ बोलना समझता है। वह तरबूज कई दिन पहले देख आया था। माई के लौटने में न जाने क्यों देर हो गयी तब उसे अकेले खेत पर जाना पड़ा। वहाँ खेतवाले का लड़का था जिस की उसके नये कुरते पर बहुत दिन से नज़र थी। प्रायः सुना-सुना कर कहता रहता था कि पैसा नहीं है तो कुरता दे जाओ। और घीसा आज तरबूज़ न लेता तो कल उसका क्या करता? इससे कुरता दे आया—पर गुरु साहब को चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं; क्योंकि गर्मी में वह कुरता पहनता ही नहीं और जाने-आने के लिए पुराना ठीक रहेगा। तरबूज़ सफेद न हो इसलिये कटवाना पड़ा—मीठा है या नहीं यह देखने के लिये उँगली से कुछ निकाल भी लेना पड़ा।

गुरु साहब न लें तो घीसा रात भर रोयेगा—छुट्टी भर रोयेगा, ले जावें तो वह रोज़ नहा-धोकर पेड़ के नीचे, पड़ा हुआ पाठ दोहराता रहेगा और छुट्टी के बाद पूरी किताब पट्टी पर लिखकर दिखा सकेगा।

और तब अपने स्नेह में प्रगल्भ उस बालक के सिर पर हाथ रखकर मैं भावातिरेक से ही निश्चल हो रही। उस तट पर किसी गुरु को किसी शिष्य से कभी ऐसी दक्षिणा मिली होगी ऐसा मुझे विश्वास नहीं; परन्तु फिर घीसा के सुख का विशेष प्रबन्ध कर मैं बाहर चली गयी और लौटते-लौटते कई महीने लग गये। इस बीच में उसका कोई समाचार न मिलना ही सम्भव था। जब फिर उस ओर जाने का मुझे अवकाश मिल सका तब घीसा को उसके भगवान् जी ने सदा के लिये पढ़ने से अवकाश दे दिया था—आज वह कहानी दोहराने की मुझ में शक्ति नहीं है पर सम्भव है आज कल, कल के कुछ दिन, दिनों के मास और मास के वर्ष बन जाने पर मैं दार्शनिक के समान धीर भाव से उस छोटे जीवन का उपेक्षित अन्त बना सकूँगी। अभी मेरे लिए इतना ही पर्याप्त है कि मैं अन्य मलिन मुखों में उसकी छाया ढूँढ़ती रहूँ।

विश्वम्भर नाथ शर्म्मा 'कौशिक'

जन्म सन् १८८९ ई०

एक समालोचक ने कहा है कि आप कला की दृष्टि से उपन्यास सम्राट् प्रेमचन्द जी के निकट हैं। आदर्शवाद और यथार्थवाद को साथ-साथ चलाते हैं, समाज और गृहस्थ जीवन का वर्णन करते हुए इनकी कुरीतियों पर सरस, मधुर और तीखी चोटें करते हैं।

जीवन—विश्वम्भर नाथ शर्म्मा 'कौशिक' जी के पूर्वज पहले अम्बाला छावनी (पंजाब) में रहा करते थे। वहाँ से वे व्यापार हेतु कानपुर (उत्तर प्रदेश) चले आये और वहीं पर बस गये। वहाँ के बंगाली मुहल्ला में आप का जन्म हुआ। आपकी शिक्षा दीक्षा भी वहीं पर हुई। जमींदार होने के कारण किसान के व्यक्तित्व को समीप से देखा। समाज सुधारक होने के नाते नगर की अनेक संस्थाओं से गहरा सम्बन्ध रहा। कट्टर हिन्दू होते हुये भी उन्होंने हिन्दू-मुसलिम समस्या का गहरा अध्ययन किया और मानव धर्म के अनुयायी बने। 'द्विवेदी' जी के प्रोत्साहन से साहित्य सेवा में लगे।

रचनाएँ—आप ने उपन्यास और कहानियाँ ही लिखी हैं। आपकी सबसे पहली कहानी 'रक्षाबन्धन' है जो कि सन् १९१३ ई० की 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित हुई। मन्दिर-गल्प', 'मणिमाला', चित्रशाला' और 'कल्लोल' आपके प्रसिद्ध कथा संग्रह हैं। 'भिखारिनी', 'माँ' और 'संघर्ष' आदि औपन्यासिक कृतियों से आपकी कीर्ति सर्वत्र फैल गई है। वास्तविकता तो यह है कि कहानी की मौलिकता के विकास का श्रेय आप ही को है।

भाषा-शैली—आपने जनता की भाषा में उनका साहित्य लिखा जिसके कारण अत्यन्त लोकप्रिय हो गये और भाषा प्रभाव पूर्ण नैसर्गिक

ग्रौर पात्रों के ग्रनुकूल बन गई। ग्रापकी कहानियों में विशेषरूप से कथोपकथन शैली के ही दर्शन होते हैं।

कहानी साहित्य की विशेषता—'कौशिक' जी की कहानियों में जमींदार-किसान समस्या, नागरिकता सम्बन्धी उलझनों का हल, मैत्री सम्बन्धी घात प्रतिघात, हिन्दू-मुसलिम एकता के साधन ग्रौर ग्रामीण लोगों की ग्रवस्था का ही अधिकांश चित्रण है। ग्रापके जीवन की ग्रनुभूतियों का निचोड़ इन्हीं में हैं। भाव परिष्कृत हैं ग्रौर सम्भाषण द्वारा उनका प्रदर्शन ग्रापकी विशेषता है।

प्रस्तुत-कहानी—'धुन' में दो ग्रामीणों की मूर्खता का दृश्य ग्रंकित किया गया है। जो ग्रापसी वैमनस्य के ग्रावेश में मुकदमेबाजी कर सारी पूँजी नष्ट कर देते हैं। गाँव के पटवारी ग्रौर जमींदार ग्रादि लोग मिल कर उनकी मूर्खता का लाभ उठाते हैं।

समस्याप्रधान

घुन

विश्वम्भर नाथ शर्म्मा 'कौशिक'

दोपहर का समय था। गाँव के मुखिया बरजोर सिंह भोजन करके अपनी चौपाल में बैठे कुछ आदमियों से बातें कर रहे थे। इसी समय एक व्यक्ति सम्मुख आकर खड़ा हो गया। बरजोर सिंह ने उसकी ओर देख कर पूछा—"क्या है कामता ! कैसे आये ?"

कामता बोला—"काका, आप ही के पास आये थे, अब तो गांव में बड़ा अंधेर होने लगा।"

मुखिया ने मुस्करा कर पूछा—"कैसा अंधेर ?"

"काका चल के देखो तो पता लगे।"

"क्या बात है, कुछ बताओ तो।"

"लल्लूसिंह ने हमारे खेत की तरफ अपनी मेंढ़ बढ़ा ली है, हमारी कोई बित्ता भर ज़मीन अपने खेत में मिला ली है।"

"अच्छा फिर ?"

"फिर क्या, उनसे कहा तो लड़ने को तैयार हो गये। वैसे चाहे हम न भी बोलते, पर मेंढ़ पर एक शीशम का बड़ा अच्छा पेड़ है, वह उन्होंने अपनी हद में कर लिया—वैसे हमारी हद में था।"

मुखिया के पास एक दूसरा व्यक्ति बैठा था, वह बोल उठा—"लल्लू सिंह अब बहुत बढ़ चले हैं—उनके मारे कोई गांव में न रहने पायेगा। उस दिन हमारे जानवर काँजी हौस में हाँकने जा रहे थे। वह तो कहो हम वक्त पर पहुँच गये नहीं तो चार-छः रुपये की ठुक जाती।

"तुम्हारे जानवर कांजी हौस में क्यों हांके दे रहे थे ?"

"काका तुम जानते ही हो, जानवर खेतों में घुस ही जाते हैं ऐसा गाँव में कौन है जिसके जानवर कभी खेतों में न घुसते हों ? तीन-चार दिन की बात है, मुनुवा अहीर की भैंस हमारे खेत में घुस गई। रात भर मजे में चरती रही। सवेरे हमने देखा तो अटल खड़ी थी। कलेजा धक से हुआ, पर क्या करते ? ऐसा हो ही जाता है। सो कहीं हमारी दो गायें उनके खेत में घुस गईं, बस उन्होंने हुक्म दे दिया कि काँजी हौस में हाँक आओ। उनका आदमी लेकर चला ही था कि हम पहुँच गये। हमने उनसे कहा—"लल्लू दादा, आपको ऐसा न चाहिए।" बस काका मैंने इतनी सी बात कही कि वह तो आपे से बाहर हो गए। हमने उनके मुँह लगना ठीक न समझा, चुपचाप अपनी गाय लेकर चले आये। सो काका आज कल उनके दिमाग़ आसमान पर हैं।"

एक अन्य व्यक्ति बोला—"दिमाग़ आसमान पर होना ही चाहिए; जमींदार से मेल है, पटवारी तो मानो उनका दामाद ही है। उनके मुकाबले इस वक्त गाँव में है कौन?"

कामता ने आवेश पूर्वक कहा—"तो इस धोके में न रहें; टका धरेंगे पैसा उठावेंगे। दिल्लगी नहीं हैं—यह अंगरेज राज है। एक दरखास्त में पिड़ी बोल जायगी। पटवारी और जमींदार कोई काम न आयेंगे।"

"अरे जब बोल जायगी तब देखा जायगा अभी तो तप रहे हैं।"

"और पिड़ी बोल जायगी? वह क्या कुछ यों ही हैं। उनके पास आज कल पैसा है। मामूली आदमी नहीं हैं।" एक तीसरे व्यक्ति ने कहा।

कामता बोला—"अच्छी बात है। पैसा है तो चेताये देते हैं, फिर हमें दोष न देना। हमारी लल्लूसिंह की मुकदमें बाजी होगी यह बताये देते हैं। हम इन्हें हाई कोर्ट तक नहीं छोड़ेंगे, चाहे लोटा-थाली बिक जाएँ।"

मुखिया ने कहा—"अरे मुकदमेबाजी क्यों होगी, हम लल्लू को समझा देंगे।"

"कौन? वह सगे बाप की मानने वाले नहीं हैं, इसकी हमें पक्की खबर मिल चुकी है।"

मुखिया ने उत्तेजित होकर कहा—"न मानेंगे तो सिर पर हाथ धर कर रोयेंगे भी।" फिर एक व्यक्ति की ओर देखकर कहा—"चतुरा जरा जाके देख तो लल्लूसिंह कहाँ है? मिले तो बुला लाना, कहना जरूरी काम है।"

चतुरा उधर गया। इधर कामतासिंह ने कहा—"तो हम चलते हैं, काका।"

"क्यों? लल्लू को बुलाया गया है उसे आ जाने दो।"

"हमारे सामने ठीक न होगा, वह लाल पीले होंगे, हमसे रहा न जायगा, मुफ्त में लड़ाई हो जायगी। हम उनसे दबेंगे नहीं।"

अन्य लोगों ने कामता की इस बात का समर्थन किया और मुखिया से बोले—"इनका टल जाना ही ठीक है। आप उन से अलग कहिए तभी ठीक होगा।"

मुखिया ने कहा—"अच्छा तो तुम जाओ।"

कामता चला गया।

कामता के जाने के थोड़ी देर बाद लल्लूसिंह अकड़ते हुए आये। उन्हें आता देख एक व्यक्ति मुखिया से बोला—"जरा चाल तो देखो काका, धरती पर पैर ही नहीं धरते हैं।"

लल्लूसिंह आकर मुखिया के सम्मुख चारपाई पर बैठ गए और बोले—"क्यों काका, क्या हुक्म है?"

मुखिया ने कहा—"हमने सुना है, तुमने कामतासिंह के खेतों की ओर मेंड़ बढ़ा ली है।"

लल्लूसिंह भौं चढ़ाकर बड़ी लापरवाही से बोले—"काका, कामता तो है बौड़म। उसको कुछ अक्ल-सहूर तो है नहीं। लोगों ने जैसे समझा

दिया वैसे कहने लगा। हमें मेंड़ बढ़ाने से क्या परोजन् (प्रयोजन)। आपके चरणों की दया से इस वक्त हमारे पास कोई पचास बीघा के करीब ज़मीन है। उनकी बित्ता भर जमीन से हमारा भला नहीं हो सकता। उन्हें जरूरत हो तो दो चार बीघा हम उन्हें दे सकते हैं। यह तो भलमनसाहत की बात चीत है। और जैसे नेंगई पर वह उतारू हैं वैसे ही हम भी करें तो हम कहते हैं कि हाँ दाब तो ली है, उन्हें जो करना हो सो करें। क्यों ननकू भाई, इसमें कोई बात ग़ैर तो नहीं है?"

ननकू भाई बोले—"नहीं भइया, इसमें क्या ग़ैर है, मामलेदारी की बात है।"

यह ननकू भाई वही थे जो अभी लल्लूसिंह के आने से पूर्व लल्लू सिंह की शिकायत बड़े जोरों से कर रहे थे।

"जब वह कहते फिरते हैं कि दाब ली है तो दाब ली है। हम कहें नहीं दाबी है तो हमारी कोई मानेगा ?"

"ठीक बात होगी तो मानी ही जायगी।"

"ठीक बात तो काका, यह है कि हमारी ज़मीन खुद कामतासिंह ने दाब ली थी। हमें यह मालूम नहीं थी। पटवारी ने हमें बताया कि तुम्हारी ज़मीन कुछ कामता सिंह ने दाब ली है सो वही इस साल हमने निकाल ली। बस इतनी बात है, पटवारी झूठ नहीं बोल सकता। क्यों ननकू भाई ?"

ननकू भाई इस समय चक्कर में पड़ गये। उनके हृदय में इतना साहस नहीं था कि लल्लूसिंह के मुख पर उनकी किसी बात का विरोध करें। उन्होंने कहा—"यही बात है, लल्लू भाई।"

मुखिया—"यह अच्छी रही, वह कहता है लल्लू ने दाब ली यह कहते हैं उसने दाब ली थी। अब इसका निर्णय कैसे हो कि किसकी बात ठीक है?"

लल्लूसिंह बोले—हमें तो निर्णय कराने की जरूरत है नहीं। हम ने तो जो कुछ किया है बहुत सोच-समझ कर किया है। अब जिसे

निर्णय कराना हो वह जैसे चाहे वैसे करावे।"

"अरे भइया अदालत जाने से तो यह अच्छा है कि आपस में यहीं फैसला कर लो।"

"अदालत जाता कौन है? हमें अदालत जाने की जरूरत ?"

"पर कामता तो जायगा ?"

"कामता जायगा तो जाय, देख लेंगे। कोई कमजोर नहीं?"

मुखिया ने कहा—"हमारा समझाने का काम था सो समझा दिया; अब आगे तुम जानो और वह जाने ?"

लल्लूसिंह बोला—"अरे काका, तुम इस झगड़े में न पड़ो। अपने आराम से बैठे राम भजन करो। हमारी उनकी बात है दोनों निपट लेंगे। उन्हें अदालत का शौक़ लगा है तो उनका शौक़ पूरा हो जाने दो। यहाँ क्या है हजार, पाँच सौ न सही—पर वह किसी काम के न रहेंगे ?"

मुखिया—"अच्छा भाई जैसी तुम्हारी मर्जी।" कहकर चुप हो रहे।

२

गाँव का पटवारी छप्पर के नीचे अपने काग़जात फैलाये बैठा था। इसी समय कामतासिंह उसके पास पहुँचा। पटवारी ने उसे देखते ही मुस्करा कर पूछा—"कहो ठाकुर क्या हाल चाल है!" कामतासिंह बोला—"हाल चाल क्या बतावें दीवानजी, लल्लूसिंह के मारे गाँव में नहीं रहने पायेंगे।"

पटवारी बहुत हँसते हुए बोला—"क्या हुआ ?"

कामतासिंह खूब हँसी हँसकर बोला—"अब इतने बनो नहीं, सब जान बूझकर पूछते हो कि क्या हुआ ?"

"ख़ैर हम तो जानते ही हैं, तुम भी कुछ कहोगे ?"

"कहें क्या, लल्लूसिंह ने हमारा खेत दाब लिया है और जब उनसे कहा तो फौजदारी करने पर आमादा हो गए।"

"तो क्या इरादा है ?"

"इसीलिए तो तुम्हारी सरन (शरण) आए हैं, जैसी सलाह बताओ वैसा करें।"

"पहले सलाह बताने की फीस तो सामने धरो। शहर में वकील लोग सलाह बताने के सैंकड़ों रुपये लेते हैं।"

"फीस भी मिलेगी, पहले बताओ !"

"यह हमारे गुरु ने नहीं पढ़ाया है। गँवार बड़ागों-यार होता है। काम निकल जाने पर बात नहीं करता।"

"अरे दीवानजी, ऐसा गजब न करो; हम उन गंवारों में नहीं हैं और फिर आप से चालाकी करके रहेंगे कहाँ ?"

"सो तो ठीक है, पर हमारा खर्चा कैसे चले ?"

कामतासिंह ने टेंट से एक रुपया निकालकर पटवारी के सामने रख दिया।

पटवारी ने रुपये को देखकर मुँह बनाया और बोला—"ठाकुर यह रुपया लड़कों-बच्चों के काम आयेगा।"

"क्यों दीवानजी, ऐसी खफगी ?"

"शहर में वकीलों को सैंकड़ों पूज आओगे, मगर हमें, जो रात-दिन तुम्हारा काम करते हैं, देते छाती फटती है।"

कामतासिंह ने म्लान मुख होकर एक रुपया और निकाला और पहले रुपये पर रखकर बोला—"बस, अब तो प्रसन्न हो ?"

पटवारी ने—"खैर तुम्हारी मर्जी" कहकर रुपये उठा लिये और सामने रखे हुए हुक्के की निगाली पकड़कर तीन-चार कश लेकर कहा—"इसमें तुम्हें अदालत करनी पड़ेगी—बिना अदालत लड़े काम नहीं बनेगा।"

"सो तो हम पहले ही से जानते हैं। पर कोई ऐसी तरकीब बताओ कि बिना अदालत गए काम हो जाय।"

"सो भी हो सकता था, पर लल्लूसिंह माने तब ना; सो वह मानने वाला नहीं है।"

"अदालत में तो बड़ा खर्च पड़ेगा।"

"सो तो पड़ता ही है। खर्च करने का मौका भी है। चुप बैठे रहोगे तो आज को बिस्वा भर दवाई है, कल वह बिसुवे-दो बिसुवे दबा लेंगे।"

"यही तो हम भी सोचते हैं "

"तो बस हमारी सलाह तो यह है कि दावा कर दो।"

"अच्छा यह बताओ कि हम जीत जायँगे ?"

"जीतोगे क्यों नहीं, जब तुम्हारी ज़मीन दबा ली है तब जीतने में क्या है ?"

"पर उस दिन तो लल्लूसिंह मुखिया काका से कहते थे कि वह उन्हीं की ज़मीन थी !"

"तुमने भी दबा ली थी, यह बताओ ?"

"हमने तो अपनी जान में कभी दबायी नहीं।"

"तो बस फिर लल्लूसिंह को कहने दो, उसके कहने से क्या होता है ?"

कामतासिंह कुछ सोचकर बोला—"तो दावा करना ही पड़ेगा ?"

"और क्या फौजदारी करने का बूता हो तो फौजदारी करो।"

"बूता तो सब कुछ है; पर यही सोचते हैं कि सजा-वजा खा गए तो बाल-बच्चे भूखों मरेंगे।"

"सो तो बनी बनाई बात है।"

"तो फिर अच्छी बात है"—कहकर कामतासिंह चलने को उद्यत हुआ। पटवारी ने कहा—"लेकिन एक बात का ध्यान रखना किसी से हमारा नाम मत लेना कि उन्होंने दावा दायर करने को कहा है। हम सरकारी मुलाजिम ठहरे। हमको ऐसी सलाह-वलाह देने का हुक्म नहीं है, यह तो तुम्हारे मेल के कारण हमने इतना बता दिया है।"

कामतासिंह बोला—"सो तुम बे खटके रहो। हम से ऐसी ग़लती नहीं होने पायेगी।"

इतना कहकर कामतासिंह चला गया। इधर पटवारी ने मुस्करा-कर हुक्के की निगाली मुँह से लगाई।

कामतासिंह के जाने के दस मिनट बाद लल्लूसिंह आया। लल्लू-सिंह को देखकर पटवारी मुस्कराकर बोला—"आओ ठाकुर!"

लल्लूसिंह बैठते हुए बोला—"क्या अभी आपके पास कामता आया था?"

"हाँ, आया था।"

"क्या कहता था?"

"यही पूछ रहा था कि इस मामले में क्या करें, सो हमने कह दिया, भाई जो तुम्हारी समझ में आवे सो करो। हमारे हिसाब से तो वह लल्लूसिंह की ज़मीन है, आगे अदालत जो करे सो ठीक है।"

"तब फिर क्या बोला?"

"बोला क्या, यही कहने लगा कि तब तो अदालत ही करनी पड़ेगी।"

"अदालत तो वह लड़ेगा, यह हम जाने बैठे हैं। पर यह तो बताओ कि हमारा मामला कमजोर तो नहीं रहेगा।"

"तुम तो हो पागल। कमज़ोर कैसे रहेगा? तुम्हारी ज़मीन है, तुमने ले ली।"

"तब फिर कोई चिन्ता नहीं, एक नहीं हजार बार अदालत करो।"

"पर एक बात बताये देते हैं कि हमारा नाम मत लेना। हमने जो बात तुम्हें बताई है, उसे बताने का हमें सरकार की तरफ से हुक्म नहीं है। हमने खाली तुम्हारे मेल-मुरव्वत के कारण बता दी। अगर तुमने किसी से कह दिया और हाकिम परगना को खबर लग गई तो हम पर तो दाब पड़ेगी ही, तुम फँस जाओगे।"

"नहीं दीवानजी, ऐसा क्या मैं बच्चा हूँ?"

"यह तो मैं भी समझता हूँ; पर हमारा काम कह देने का है सो हमने कह दिया।"

"एक बात और बतावें—शायद ज़मींदार या मुखिया तुम से कहें

कि जरीब से नापकर फैसला करो तो तुम मत मानना, इसमें तुम्हें नुकसान रहेगा।"

"सो कैसे ?"

"बात यह है कि बन्दोबस्त के समय तुम्हारे खेत का रकबा अधिक था, बीच में न जाने कैसे कम का इन्दराज हो गया। सो वह तो इस समय जो इन्दराज काग़ज़ात में मौजूद है उसके हिसाब से नाप-तोल करेंगे; उसमें तुम्हें वह ज़मीन वापिस करनी पड़ेगी। और जो मामला अदालत में चला गया तो वहाँ पूरी जाँच पड़ताल होकर फैसला होगा। उसमें तुम्हारी जीत रहेगी।"

लल्लूसिंह ने कृतज्ञता का भाव दिखाकर कहा—"यह आपने अच्छा बता दिया। अब कुछ चिन्ता नहीं।"

"कैसी-कैसी बातें तुम्हें बताते हैं यह तो देखो। ये सैंकड़ों रुपये खर्च करने पर भी न मालूम होतीं।"

"सो तो यह आपकी दया है, मेहरबानी है।"

"खाली दया कह देने से काम नहीं चलता। सवेरे का समय है, बोहनी तो कराओ।"

लल्लूसिंह ने दाँत निकाल कर कहा—"उस दिन तो दस रुपये दे चुका हूँ।"

"अरे वह दस रुपये तो ख़ाली शीशम के पेड़ की निछावर हैं। इतना अच्छा और पुराना पेड़ है। साथ इतनी ज़मीन मिली। उन दस को भूल जाओ। आज जो यह नुक्ता बताया है इसका भी तो कुछ मिलना चाहिए।"

लल्लूसिंह ने दो रुपये निकाल कर सामने रखे।

पटवारी राम मुँह बिगाड़ कर बोले—"बस इन्हीं बातों से जी जलता है। हजारों रुपये खर्च कर देते तब भी यह बात न मालूम होती दो रुपये दिखाते हो। इसीसे तो कहा है—"घर का जोगी जोगड़ा, आन गाँव का सिद्ध।"

"अच्छा ये तो रक्खो दो रुपये और देंगे ।"

"दे देने का झगड़ा मैं नहीं पालता ।"

"इस समय तो और हैं नहीं ।"

"तो जाकर घर से ले आओ ।"

"अरे भाई, दे देंगे और आज ही दे देंगे, इतना तो विश्वास करो ।"

"अच्छी बात है पर दो नहीं तीन और देना, कम नहीं लेंगे ।"

"अच्छा तीन ही ले लेना । बस अब तो खुश हो ?"

३

जमींदार साहब अपने विशाल भवन के आँगन में बैठे थे। उनके समीप गांव के तीन-चार प्रतिष्ठित व्यक्ति बैठे हुए थे । इसी समय पटवारी राम आये और ज़मींदार साहब को प्रणाम करके एक खाली मोढ़े पर बैठ गये ।

ज़मींदार ने मुस्कराकर पूछा "कहो दीवानजी, क्या समाचार हैं ।"

"समाचार सब अच्छे हैं, आपसे कुछ जरूरी बात करनी थी ।"

"क्या इसी समय ?"

"हाँ ।"

"अच्छा इधर आ जाओ", कह कर ज़मींदार उठे और एक कमरे की ओर चले । पटवारी भी उनके पीछे-पीछे चला । कमरे में पहुँचकर ज़मींदार ने पूछा—"कहो क्या बात है ?"

पटवारी बोला—"यह तो आपने सुना होगा कि लल्लूसिंह ने कामतासिंह की कुछ जमीन अपने खेत में मिला ली है, उसी झगड़े का फैसला कराने के लिए लोग आपके पास आ रहे हैं । सो आप कह देना कि हम कुछ नहीं जानते, अदालत में जाओ !"

"तो फैसला क्यों नहीं कर देते ? कौन बड़ा मामला है, जरीब ले कर दोनों का रकबा नाप लो और जिसकी ज़मीन निकले उसे दिलादो । उनके सैकड़ों रुपये क्यों बरबाद कराते हो ?"

"वे दोनों इसी काबिल हैं। लल्लूसिंह के पास रुपया बहुत बढ़ा है, वह अपने आगे किसी को समझता नहीं, दो एक बार उसने आपकी शान में भी कुछ बेजा बातें कही हैं। इसलिए कटने-मरने दो और चुप-चाप तमाशा देखो। कामतासिंह भी थोड़ा नहीं है; एक ही विष की गाँठ है। इनको सीधा करने की यही तरकीब है कि जो कुछ थोड़ा-बहुत है वह अदालत में ठंडा करा दो, बस सीधे हो जायेंगे। और इस के अलावा हमारा भी कुछ भला हो जायगा। हमारे कुछ पैसे थोड़े ही लगते हैं। थोड़ी सी आपकी मदद की जरूरत है।"

"अगर यह बात है तो हम न बोलेंगे। हम तो तुम्हारे भले के साथी हैं।"

"भगवान आपके बाल-बच्चे सुखी रक्खें। हमारा तो काम ऐसे ही चलता है। सीधी तरह कौन देता है? वैसे आप यह तो कहिए ही कि फैसला करलो, क्योंकि आप ऐसा न कहेंगे तो ज़रा देखने में बुरा लगेगा। आपकी बदनामी होगी। सो ऐसा हम नहीं चाहते कि आपकी बदनामी हो। दो-एक बार कहिएगा, अधिक दबाव न डालियेगा, बस इतना हम चाहते हैं।"

"अच्छी बात है!"

दोनों बाहर आकर अपने-अपने स्थान पर बैठ गये। थोड़ी देर बाद सबसे पहले गांव के मुखिया आये। जमींदार ने उन्हें आदर पूर्वक बिठाया और पूछा—"कहो ठाकुर, इस समय कैसे कष्ट किया?"

मुखिया बोले—"आप ही के पास आये है, सरकार! एक फैसला कर दीजिए। कामता और लल्लू का एक झगड़ा है सो दोनों अदालत जाने पर तैयार हैं। आप बीच में पड़ कर फैसला कर दें तो दोनों के सैकड़ों रुपये बच जायेंगे। आप जो कह देंगे उसे वे मान लेंगे, दूसरे की तो सुनते नहीं। मैं दोनों को बुला आया हूँ। खुद समझा कर हार गया, मेरी तो मानते नहीं। रुपया बढ़ा है, सो उछल रहे हैं।"

एक दूसरे सज्जन बोले—"न कहीं रुपया बढ़ा है, न कुछ, दो-चार

सौ पेट काट-काट कर जमा किये होंगे, सो अदालत की एक ठोकर में विला जायँगे।"

"परन्तु वे दो-चार सौ में ही आसमान पर चढ़ने लगे।"

पटवारी राम इस प्रकार चुप चाप बैठे थे, मानों उन्हें इस झगड़े से कोई मतलब ही नहीं है।

थोड़ी देर में कामता और लल्लूसिंह भी आगए और ज़मींदार तथा मुखिया को अभिवादन करके बैठ गए।

ज़मींदार ने पूछा—"तुम दोनों का क्या झगड़ा है ?"

लल्लूसिंह ने संक्षेप में बता दिया।

ज़मींदार ने कहा—"यह तो कोई बड़ी बात नहीं है, इसका फैसला तो जरीब से हो सकता है। जरीब से नाप कर देख लो, जिसकी निकले वह ले लो।"

लल्लूसिंह ने कहा—"अन्नदाता, इसका फैसला जरीब से नहीं हो सकता। इसका फैसला तो अदालत ही से होगा।"

पटवारी—"हमारे पास जरीब, नक्शा, खसरा सब मौजूद है, यहाँ फैसला हो सकता है। खसरे में खेतों का जो रकबा दिया हो उसके हिसाब से दोनों नाप कर तय कर लो।"

लल्लूसिंह बोला—"सरकार, उस में ऐसा पेच है कि वह यहाँ किसी तरह तय नहीं हो सकता ? वैसे आप हमारे मालिक हैं, हुक्म दें तो अपना घर लुटा दूँ, आपका हुक्म कभी न टालूँगा, पर झगड़ा यहाँ तय न होगा।"

ज़मींदार साहब ने पटवारी राम की ओर देखकर पूछा, "क्या ऐसी बात है दीवानजी ?"

दीवानजी बोले—"हां, मामला तो पेंचदार है, सरकार ! यहां तय होना कठिन ही है। वैसे आप जो हुक्म लगा देंगे वह तो इन्हें मानना ही पड़ेगा।"

ज़मींदार ने मुँह बनाकर कहा—"नहीं, यदि ऐसी बात है तो हम

दखल नहीं देंगे, अपना अदालत से निपटारा कराओ ।"

कामतासिंह खड़ा हो गया और हाथ जोड़कर बोला—"अच्छा तो दीनानाथ ! मेरी एक अरज है, और वह यह है कि आप किसी की तरफ-दारी न करें न मेरी न इनकी । हम और यह निबट लेंगे ।"

ज़मींदार ने कहा—"हमें तरफदारी करने से मतलब ? हमारे लिए जैसे तुम वैसे वह ।"

"बस, सरकार, यही मैं भी चाहता हूँ, अब हम इन्हें देख लेंगे ।"

लल्लूसिंह बोला—तुम बेचारे क्या देख लोगे ? तुम्हारी हस्ती क्या है ?"

कामता भी उत्तेजित होकर बोला—"तो तुम क्या समझे हो । हलवा नहीं है जो निगल जाओगे । दाँत खट्टे कर दूँगा । किसी धोखे में मत रहना । ऐसा अन्धेर ! दूसरे की जगह ज़मीन दाब लें और ऊपर से तेहा दिखावें । अदालत में घसीटूँगा तब जान पड़ेगा ।"

पटवारी राम बड़ी गम्भीरता से बोले—"अच्छा यहाँ सरकार के सामने गड़बड़ तो करो नहीं, लड़ना हो तो बाहर जाकर लड़ो ।"

इसके बाद कामतासिंह और लल्लूसिंह चले गए ।

मुखिया बोले—"न मानें तो मरें, अपने को क्या ! हम तो चाहते थे कि क्यों इनका रुपया मिट्टी हो ?"

एक अन्य सज्जन बोले—"अदालत में जाकर दोनों शुद्ध हो जायेंगे ।"

"सो तो हो ही जायेंगे, इसमें सन्देह क्या है"

४

कामतासिंह तथा लल्लूसिंह में मुकदमेबाजी चली । पहली अदालत ने कामतासिंह के पक्ष में फैसला दिया । लल्लूसिंह हार गये । वकीलों ने अपील करने के लिए उभारा और उन्हें विश्वास दिलाया कि अपील से वह अवश्य जीतेंगे । इधर लल्लूसिंह भी देहाती नीति के अनुसार बात

और मूँछ के फेर में पड़ गये। मुकदमा हार गए, बड़ा गजब हो गया। अपील अवश्य होनी चाहिए और किसी न किसी प्रकार मुकदमा जीतना चाहिए ? नहीं तो बात मिट्टी हो जायगी, मूँछ झुक जायगी। लोगों के पूछने पर कि क्यों भई लल्लूसिंह, क्या इरादे हैं ? लल्लूसिंह अकड़ कर उत्तर देते थे—"इरादे क्या हैं, अपील होगी। एक हाकिम का फैसला भी कोई फैसला है। सच पूछो तो मुकदमेबाजी अब आरम्भ हुई है। प्रयागराज तक पहुँचाऊँगा, मजाक नहीं है। इसी बहाने त्रिवेणी स्नान हो जायगा।"

इधर पटवारी राम ने भी, जो बीस-पच्चीस तो पहले ही खा चुके थे और मुकदमे के मध्य में भी दोनों पक्ष से दस बीस वसूल कर चुके थे, कामतासिंह को मुकदमा जीतने पर बधाई दी और बोले—"देखो हमने क्या कहा था, दावा दायर करके ही काम बना।"

कामतासिंह हाथ जोड़कर बोले—"हाँ, आपने तो कहा था, आप की सलाह उत्तम रही।"

"फिर अब मिठाई खिलवाओ।"

कामतासिंह ने दो रुपये पुनः भेंट किये।

इधर लल्लूसिंह से साक्षात होने पर पटवारी राम बोले—"लल्लू अपील जरूर करना, कच्चे न पड़ जाना, अपील से तुम्हारा मामला अवश्य बहाल होगा।"

लल्लूसिंह बोले—"अपील तो जरूर होगी। मगर दीवानजी, आप तो कहते थे कि बन्दोबस्त के काग़ज़ात में हमारी ज़मीन का रकबा शीशम के पेड़ से दिया हुआ है।"

दीवानजी बोले—"सो तो दिया हुआ है, पर हाकिम ने तो बन्दोबस्त के काग़ज़ात निकलवा कर देखे बिना फैसला दे दिया। उन्होंने बारहसाला कानून कायम रक्खा।"

"बारहसाला कानून कैसा ?"

"अगर किसी ज़मीन पर किसी आदमी का कब्जा व मलिकाना

बारह साल से अधिक रहा है तो वह उसका मालिक हो गया।"

"यह अच्छा कानून है।"

"हाँ, और क्या ? तुम अपील करो, अपील से तुम्हारा मामला बहाल होगा।"

"अपील तो करनी ही पड़ेगी, अब तो बात अटक गई है।"

इस प्रकार पटवारी तथा कुछ अन्य लोगों ने लल्लूसिंह को बढ़ावा दे कर अपील दायर करा दी।

अशिक्षित देहाती लोग स्वयं तो कानून के पेंच को कम समझते हैं अधिकतर वकीलों के भरोसे रहते हैं। वकील भी ईश्वर की दया से इतने आशावादी होते हैं कि मुर्दे को जिलाने का बीड़ा उठा लेते हैं। कैसा ही निर्जीव मामला क्यों न हो, वकील महोदय यही कहते रहेंगे कि इसमें शर्तिया जीत होगी। एक अदालत में हारे तो बोले—"यह हाकिम बेवकूफ है। अपील करो शर्तिया जीतोगे।" अपील में हारे तो हाईकोर्ट में जीतने का सब्ज बाग दिखाया। इस प्रकार मवक्किल अपने भाग्य से चेत जाय और बैठ रहे तो दूसरी बात अन्यथा वकील महोदय लड़-लड़ाकर सफाया कर देते हैं। लल्लूसिंह की भी यही दशा हुई। एक तो वह स्वयं बात के फेर में पड़ा हुआ था, इस पर गांव के आदमियों ने और वकीलों ने खराद पर चढ़ा दिया। परिणाम यह हुआ कि लल्लूसिंह हाईकोर्ट तक लड़ गया। अन्त में जब हाईकोर्ट से भी हारा तब उसकी आँखें खुलीं; परन्तु अब क्या होता है ? घर में जो पूंजी थी वह सब निकल गई, ऊपर से कुछ ऋण हो गया। कामतासिंह भी ऋणी हो गया; क्योंकि अंग्रेजी अदालत में मुद्दई और मुद्दालेह दोनों की खाल खींची जाती है। कोई व्यक्ति चाहे आरम्भ से जीतता चला आया हो; परन्तु यदि विपक्षी अपील करता है तो मुद्दालेह को जवाबदेही करनी ही पड़ती है।

× × ×

शाम का समय था। ज़मींदार साहब टहलने के लिए निकले थे।

साथ में एक चौकीदार, पटवारी तथा गाँव के दो अन्य व्यक्ति थे। हठात् सामने से एक व्यक्ति चरी का गट्ठर सिर पर रक्खे हुए निकला। यह व्यक्ति मैले तथा फटे कपड़े पहने हुए था, शरीर धूल-धूसरित हो रहा था। ज़मींदार के सामने जब वह पहुँचा तो बोला—"जोहार मालिक! ज़मींदार ने केवल सिर हिला दिया। जब वह थोड़ी दूर निकल गया तो ज़मींदार ने पूछा—"यह कौन था भाई।"

पटवारी हँसकर बोला—"इसे नहीं पहचाना? यह लल्लूसिंह था।"

ज़मींदार ने आश्चर्य से कहा—"अच्छा, यह लल्लूसिंह था। अब तो सूरत ही बदल गई।"

पटवारी ने कहा—"और क्या, पहले भी इन्हें कभी चरी का बोझ लादे देखा था। बालों से तेल बहा करता था; हर समय चिकने-चुपड़े रहते थे। अब देखिए, हुलिया बिगड़ गया, पहचान ही नहीं पड़ते!"

"कामता की क्या दशा है?" ज़मींदार ने पूछा।

"वह भी दुर्दशा को प्राप्त हो गए।" एक दूसरे व्यक्ति ने कहा।

"परन्तु मुकदमा तो जीत गया?"

"सो मिला क्या? एक शीशम का पेड़ मुश्किल से बीस रुपये का होगा, खर्च सैंकड़ों हो गए।"

ज़मींदार ने दीवानजी की ओर देख कर कहा—"वाहरे दीवानजी एक जरा से लटके में दोनों को दुरुस्त कर दिया।"

दीवानजी बड़े गर्व से बोले—"अब चार छः बरस के लिए छुट्टी है। अब पता नहीं लगेगा कि गाँव में हैं या नहीं। पहले गाँव भर को उठाये हुए थे।"

इतना कह कर पटवारी ने कहकहा लगाया। ज़मींदार भी खूब हँसे।

जिस समय ये दोनों नर-पिशाच अपने अट्टहास से सन्ध्याकालीन नीरवता का वक्षःस्थल विदीर्ण कर रहे थे, उसी समय दिन के थके हुए

दो प्राणी, जिनमें एक को लोग अब तक विजय-बधाई दे रहे थे अपने उस पिछले समय को जब कि इतना कठिन परिश्रम नहीं करना पड़ता था, जब कि उनके बाल-बच्चों को रोटी-कपड़े का अभाव नहीं था, जब कि उन्हें किसी का ऋण चुकाने की चिन्ता नहीं थी—याद करके अपने अश्रु बिन्दुओं से भारत माता का वक्षःस्थल विदीर्ण कर रहे थे ।

सुमित्रानन्दन पंत

सम्वत १९५२

प्रकृति के इस चतुर चितेरे ने उसका कोमल और भव्य रूप का स्वाभाविक चित्रण जिस कुशलता से खींचा है वह और किसी ने नहीं। वास्तव में प्रसाद जी की तरह आपका यह नवीन पग साहित्य में प्रगति चरण कहा जा सकता है।

जीवन—सुमित्रानन्दन पन्त का जन्म अलमोड़ा जिले के कुमाऊँ प्रदेश में हुआ था। अतः उनका प्रकृति प्रेमी होना स्वाभाविक था। यहाँ पर ये घंटों प्रकृति के अलौकिक दृश्यों को निहारते हुए अनिवर्चनीय आनन्द का अनुभव करते थे। शैशवकाल में ही माता का सहवास छूट गया। इसके उपरान्त प्रकृति की गोद में ही आप युवा हुये और साहित्य सेवी बने। आपका प्रकृति वर्णन स्वाभाविक, सरल और सादगी को लिये हुये है। इसी वर्ष आपको 'अभिनन्दन ग्रन्थ' भी भेंट किया गया है।

रचनाएँ—कवि के रूप में 'वीणा', 'गुंजन', 'पल्लव' 'उत्तरा' और 'प्रतिमा' आदि विशेष लोकप्रिय हुईं। कुछ कहानियाँ भी लिखीं। जिनमें से 'पाँच कहानियाँ' नामक एक संग्रह भी प्रकाशित हुआ है। आज से लगभग बारह वर्ष पूर्व आपने 'ज्योत्सना' नाम का एक नाटक भी हिन्दी साहित्य को भेंट किया था। इन सबसे आपकी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय मिलता है।

भाषा-शैली—आपके गद्य की भाषा काव्यमयी है। शुद्ध हिन्दी का प्रयोग है। कहीं-कहीं तो संस्कृत शब्दों के कारण अधिक बोझिल सी हो गई है। नये-नये शब्दों को स्थान मिला है। वर्णन शैली में आपने व्यास शैली को अपनाया है, जिससे कहानियों में जिज्ञासा और रुचि और आकर्षण का पूर्णरूप से निर्वाह हुआ है।

कहानी-साहित्य की विशेषता—आपकी कहानियों में कहानी कला रूप का सम्यक विकास तो नहीं दृष्टिगत होता, पर कला के अभिनव सौन्दर्य के दर्शन अवश्य होते हैं। कहानी में काव्य सौन्दर्य की सफल प्रतिष्ठा करने का श्रेय पंत जी को ही है। इनमें आपका कविरूप ही मुखरित हुआ है यही कारण है कि वस्तु विन्यास और सत्य व्यंजना की दृष्टि से वे पीछे हैं।

प्रस्तुत कहानी—'पानवाला' में पीताम्बर का चरित्र खींचकर समाज पर तीखे कटाक्ष किये हैं, जिसमें गरीबी मानव का सबसे बड़ा अवगुण है। जीवन की ठोकर मनुष्य को क्या से क्या बना देती है। यही पीताम्बर के चरित्र में दिखाया गया है। वास्तव में यह एक कहानी नहीं अपितु एक भाग्यहीन अनाथ बालक पीताम्बर की जीवन गाथा है। जिसने अच्छे घराने में जन्म लेकर भी अपने आत्म-स्वाभिमान को सुरक्षित रखने के लिए पानवाला बनना क्यों स्वीकार किया, यही कहानी का सच्चा लक्ष्य है?

चरित्र प्रधान

पान वाला

सुमित्रानंदन पंत

यह पान वाला और कोई नहीं, हमारा चिर-परिचित पीताम्बर है। बचपन से उसे वैसा ही देखते आए हैं। हम छोटे लड़के थे—स्थानीय हाई स्कूल में चौथी-पांचवीं क्लास में पढ़ते थे। मकान की गली पार करने पर सड़क पर पहुँचते ही जो सबसे पहली दूकान मिलती, यह पीताम्बर की। हम कई लड़के रहते, मास्टरों से लुक-छिप कर वहाँ पान का बीड़ा खाते, कुछ दूकान के अन्दर आलमारी की आड़ में खड़े-खड़े सिगरेट-बीड़ी के भी दो-चार कस लेते, पर मुख्य आकर्षण की सामग्री पीताम्बर की दूकान में आलू और मिठाइयाँ रहतीं। कभी-कभी वह स्कूल से लौटने तक हम लोगों के लिये औटाये हुए दूध में केले मिला कर रखता, कभी रबड़ी बना देता। स्कूल से लौटने पर थका-मांदा; भूख से व्याकुल हम लोगों का दल टिड्डियों की तरह पीताम्बर की दूकान पर टूट पड़ता, कोई मिठाई रायता खाता, कोई कचालू-मटर, दूध केला, रबड़ी इत्यादि। पान खाना, बीड़ी-सिगरेट फूंक लेना भी किसी-किसी के लिए आवश्यक हो जाता था। घर में हमारी उम्र के लड़कों को ये नियामतें कहाँ नसीब हो सकतीं? पीताम्बर हमें हँसाता, बहलाता, खुद हँसता, परिहास करता और थोड़ी बहुत छेड़खानी करने एवं ताना मारने से भी न चूकता। हम में से सभी को घर से पैसे तो न मिलते थे, हम उधार खाते और पीताम्बर को भी खिलाते। वह लोगों का दोस्त था, वह सभी का दोस्त था;—छोटे, बड़े, बच्चे, बूढ़े सभी से

वह परिहास करता, उन पर मीठी फबतियां कसता और सब को खुश रखता ।

पीताम्बर तब किस उम्र का था, अब किस उम्र का है, यह बात हम तब भी नहीं जानते थे, अब भी नहीं जानते । उससे पूछने का किसी का साहस भी हो ? वह तो सबको हँसी में उड़ा देता । ऐसी खरी-खोटी सुनाता, ताने और व्यंग-बाण मारता है कि अपने व्यक्तित्व को, निजी याद को, पास ही नहीं फटकने देता । लोग हँसकर, घिघियाकर, खिसिया कर, कुढ़ कर चुप हो जाते हैं । दूसरे ही क्षण वह उन्हें फिर खुश कर लेता है । वह कैसा ही आत्माभिमानी हो; परन्तु यह कभी नहीं भूलता कि उन्हीं लोगों से उसकी गुजर चलती है, लेकिन पीताम्बर को हो क्या गया ?

तब से बीस साल बीत गए, हम में से बहुतों की शादियां और बाल-बच्चे भी हो गए, भिन्न लोग कालेज की डिग्रियां लेकर बड़े-बड़े ओहदों पर पहुँच गए, भारी-भारी वेतन पाने लगे; कइयों ने कोठियाँ खड़ी कर दीं, मोटर गाड़ियाँ खरीद लीं,— पर पीताम्बर ! पीताम्बर वैसा ही रह गया है । तब कौन जानता था कि हमारे ही लिए विधाता ने भविष्य बनाया है, पीताम्बर के वास्ते भविष्य सी किसी वस्तु का आविष्कार नहीं हुआ है, अथवा वह भूत, भविष्य और वर्तमान से अतीत है । सावन सूखा न भादों हरा । अर्थशास्त्र के नियमों के लिए तो उसकी दूकान अपवाद थी ही । पर क्या प्रकृति के नियमों ने भी उसके लिए बदलना छोड़ दिया है ? किसी तरह का भी तो बदलाव उसमें इन बीस सालों में आंया—लेशमात्र नहीं, चिन्ह तक नहीं । वही आकृति, वही प्रकृति, वही कद, वही आदतें, और वही दूकान !—किसी में भी उन्नति-अवनति के कोई लक्षण नहीं । वह अब आलू और मिठाई नहीं रखता तो इसलिए कि मुहल्ले में अब वैसे चटोर, खाने के शौकीन लड़के ही नहीं रह गए । लेकिन पान, सुपारी, सिगरेट, बीड़ी—अब भी उसी प्रकार, उन्हीं जगहों पर दूकान में रक्खे हैं । चूने-कत्थे के बर्तन भी वही

पुराने पहचाने हुए हैं। चूने की लकड़ी घिस-कट कर पतली पड़ गई है, कत्थे की पपड़ी जम जाने से और भी मोटी हो गई है। दूकान के बीचो-बीच वही पुराना लैम्प टँगा है जो उसके किसी मित्र की इनायत है, चिमनी के ऊपर का भाग टीन की पत्ती का बना हुआ है। सामने मझोले आकार का शीशा लगा है, जिसके पारे में धब्बे और चकत्तियां पड़ जाने के कारण काँच के पीछे से बीच में द्रोपदी का तिरछा रंगीन चित्र चिपका दिया गया है। अन्दर के कमरे में मूंज की एक चारपाई और बिस्तरा, खूंटी पर टँगा कोट, सिगरेट-दियासलाई के खाली डिब्बे, एक लोहे की अँगीठी और कुछ चाय का सामान रहता है, बाहर वही पुराना काठ का बेंच पड़ा है, जिस पर सुबह, शाम, दोपहर, हर वक्त दो चार दोस्त लोग बैठे गप-शप करते, एक दूसरे की खिल्ली उड़ाते और शहर की बुराइयों एवं खराबियों की चर्चा करते हैं। उस बेंच से नित्य नई अफवाहों का आविष्कार एवं प्रचार होता, न जाने कितनी स्त्रियों की कलंक-कथायें, युवकों-रसिकों की लीलायें, भाग्यों के बनने-बिगड़ने के खेल, जन्म-मृत्यु के समाचार, गांव, शहर, देश, एवं विश्व के इतिहास का प्रवाह आने-जाने वालों के मुखों से निसृत हो पीताम्बर के कर्ण-कुहरों में जान्हवी की तरह समा गया उसका क्या पता, क्या पार ? वही उसका मानसिक भोजन है, जो उसकी अस्थि, रक्त, मज्जा, माँस बन गया है।

अपने लड़कपन के मित्रों के साथ उसकी एक तस्वीर है जो दूकान में गद्दी के ऊपर लटकी रहती है। कोई भी उस चित्र के गोल, सुडौल भरे हुए मुख की, अंगों की गठन, बनाव-शृंगार को देखकर यह नहीं विश्वास करेगा कि वह यही पीताम्बर है ! वह यही पीताम्बर है भी नहीं। वह सोलह-सत्रह साल का, यूनीफार्म पहने, हाथ में हाकी की स्टिक लेकर, अकड़कर, कुर्सी पर बैठा अमीरों और रईसों का अमीरदिल मित्र इस तंग दिल कोठरी में बैठा हुआ गरीब पनवारी कैसे हो सकता है ? उस की गोल चमकदार आँखों में गर्व और चालाकी भरी है;

दृष्टिगरिमा बाहर को फूट रही है, उसकी आँखें धँसी हुई लाल छड़ों से भरी; छिलका निकाल देने पर पिचकी हुई लीची की तरह गँदली, करुणा, क्षोभ, प्रतिहिंसा बरसा रही हैं। उनके कानों में कौओं के पंजे बन गए हैं। उस सोलह साल के नवयुवक के मुख-मंडल पर सुख-सौकुमार्य, स्वास्थ्य, आशा और उत्साह की आभा है, इस अधेड़ का मुख—जिसकी उम्र तीस से पचास साल तक कुछ भी कही जा सकती है—दुख,दारिद्रय, निराशा, आत्मपीड़न, असन्तोष का भग्न जीर्ण खण्डहर है। गालों की गोल रेखाओं को संसार में नींबू की तरह चूसकर टेढ़ा-मेढ़ा विकृत कर दिया है। दुख से काटे हुए रात-दिन शेष चिन्हों की तरह बेमेल स्याह, सफेद, घनी दाढ़ी मूछों ने—जिन्हें हफ्ते में एक बार बनाने की भी नौबत नहीं आती—उस सोलह साल के फूल को सुखा कर कांटों की झाड़ी ने घेर लिया है। दुर्भाग्य के स्रोत की शीर्ण, शुष्क धाराओं की तरह, सिकुड़े हुए भाल पर गहरी चिन्ता की रेखाएँ पड़ गई हैं। नीले मुरझाये हुए ओठों के दोनों ओर नाक से मिली हुई दो लकीरों ने मनचाहा खाना न मिलने के कारण अनावश्यक मुख को दोनों ओर से दो घेरों में बन्द कर दिया है। मुख का रंग धूप से जल कर काला पड़ गया है, और उसका प्रत्येक चर्म-अणु सूजी के दाने की तरह शोक-ताप में पक कर फूल गया है। रोड़े की तरह गले में अटकी हुई हड्डी मांस के सूख जाने से बाहर निकल आई है। वह चित्र भले ही हो, वास्तविक पीताम्बर यही है। दुबला, नाटा, अविकसित हड्डियों का ढांचा यह पीताम्बर—उसकी कलाइयाँ दो अंगुल से अधिक चौड़ी नहीं, वे भी जैसे कस कर ताँग चमड़े में बाँध दी गई हों। उसके इकहरे जीर्ण चमड़े के अन्दर से चरबी का अस्तर कभी का गायब हो चुका है। रक्तहीन हाथों में नीली-नीली फूली नाड़ियाँ और हथेलियों में चूने-कत्थे से कटी रेखाओं की जालियां पड़ गई हैं। दु:ख, दैन्य और दुर्भाग्य के जीवन-प्रवाह के तट पर ठूंठ की तरह खड़ा, उसके तीक्ष्ण, कटु आघातों से लड़ता हुआ पीताम्बर उस अभाव-वाचक स्थिति पर पहुँच गया है,

जहाँ उस पर आशा, तृष्णा, लोभ जीवतेच्छा, सौन्दर्य, स्पर्धा, मोह, ममता, उग्र आदि भाव वाचक विभूतियों के अत्याचार-उत्पात का कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। वर्तमान मनुष्यता, सामाजिकता, नैतिकता, धर्म, आचार, रूढ़ि-रीतियों की कला का वह एक साधारण नमूना मात्र है। अपने देश के वर्तमान जीवन के कुशल कलाकार की तरह भिन्न-भिन्न अवस्थाओं एवं परिस्थितियों की कूचियों से उस में रूप-रंग, रेखाएँ भरकर उसे हमारी पैशाचिकता, पशुत्व, अन्धकार का निर्मम सजीव चित्र बना दिया है। उस षोडस वर्षीय किशोर का चित्र इस चित्र से कैसे मिल सकता है? वह सब समय की मानवी प्रकृति की कला का नमूना था, यह हमारी इस समय की सभ्यता की मानवी विकृति का नमूना है।

पीताम्बर जात का तम्बोली नहीं, वह अच्छे घराने का है। छुटपन में ही माँ-बाप के मर जाने के कारण पीताम्बर अयाचित स्नेह के संरक्षण से वंचित हो गया। उसके भाई को, जो उससे पाँच साल बड़ा था, यह समझते देर नहीं लगी कि अब उसे दूसरों की चापलूसी, खुशामद कर, उनकी करुणा, दया को जागृत कर, उनके स्वभाव और इच्छाओं को अपनाकर, दूसरों की बुरी प्रवृत्तियों के सामने अपनी अच्छी प्रवृत्तियों का बलिदान कर, दबकर, सहकर, कुटकर, पिसकर जीवन निर्वाह करना है। मुक्ति-श्रेयी माँ-बाप उसकी शादी कर गए थे। एक असहाय, मूक, पंगु, अपढ़, अन्ध-विश्वासों से निर्मित माँस की लोथ, निष्प्राण, पतिप्राण, सतीभार उस पर था। इसलिए लाचार हो वाणी में दीनता, आंखों में याचना, होठों में शरमायी हुई करुण हँसी भर कर सबके सामने आँखें झुकाना, माथा नवाना सीख कर यज्ञदान ने अपना स्वरूप बदल डाला। पड़ोस और शहर के लोग उसकी नम्रता, परतत्परता पर मुग्ध हो गए, उसे जिला बोर्ड में दफ्तरी का काम दिला दिया। पन्द्रह रुपये वेतन मिलता, जिस में चार प्राणी किसी तरह

जीवन व्यतीत करते। यज्ञदत्त में कोई खास बात न थी वह जैसे ही छोटे-मोटे काम के लिए बना था।

पर इसी यज्ञदत्त का भाई, उन्हीं मां-बाप की दरिद्र कोख मे पैदा हुआ पीताम्बर अपने आत्माभिमान को न छोड़ सका, वह उस निर्धन घर का अमीर दिल प्रकाश था। उसके वैसे ही संस्कार थे। सृष्टिकर्ता ने उसे निर्माण करने में किसी प्रकार का संकोच या संकीर्णता न दिखाई थी। प्रकृति ने रईसों के लड़कों को और उसे समान-रूप से अपने मुक्तदान, अपनी गुप्त शक्तियों का अधिकारी बनाया था। उसके स्वभाव में आत्मसम्मान प्रमुख और इच्छाएँ गौण हो गई थीं। किसी के सामने झुकना, किसी के रोब में आना उससे न हो सकता था। मां को वह खो ही चुका था, जिसके हाथों का स्नेह स्पर्श उसके अभिमान और हठीले स्वभाव के तीखे कोनों को कोमल, चिकना बना सकता। अभिमान केवल स्नेह के सामने झुक सकता है, उसे सहिष्णु साथी की जरूरत होती है। पर अपने भले-बुरे के ज्ञान से अनभिज्ञ उस गरीब के लड़के को ऐसा कुछ भी न मिल सकने के कारण उसका अतृप्त अभिमान आत्म-निर्माण करने के बदले आत्म-संहारक हो गया। पीताम्बर उच्छृंखल, स्वतन्त्र तबीयत हो गया। आत्महीनता के पीड़ाजनक ज्ञान से बचने के लिए वह धनी युवकों से मित्रता स्थापित कर झूठा संतोष ग्रहण करने लगा। जीवनोपाय के लिए कोई हुनर, कोई उद्योग सीखने की ओर उसने कभी ध्यान ही नहीं दिया, जिससे पीछे उसे सच्चा सन्तोष मिल सकता। वह बड़ा तेज और होशियार था। बात की बात में शहर के अमीर लड़कों को अपने वश में कर, उन की स्नेह-सहानुभूति पर अधिकार प्राप्त कर मौज उड़ाया करता। वह मनोरंजन के उन्हें नित्य नवीन उपाय बतलाता; जवानी की बहार लूटने को उत्साहित करता, उन में साहस भरता और मुश्किल को आसान बना कर अपने को उनके लिए आवश्यक बना लेता था। वह उनसे दबता न था बराबरी का व्यवहार रखता था। उनके साथ पिकनिक में जाता, ताश खेलता,

हॉकी, फुटबाल, क्रिकेट में अपनी दक्षता दिखलाता, किसी के कुछ कहने पर या छेड़ने पर बिगड़ भी उठता। यदि वह वैसा उद्दण्ड, स्वतन्त्र एवं आत्मअभिमानी न होता, और अपने मित्रों की जरा भी खुशामद कर सकता, तो आज वह फटे हाल न होता।

अमीरजादों के साथ ऐश-आराम में रहना सीख कर शीघ्र ही वह जीवन-संग्राम की कठिनाइयों को झेलने और कठोर परिश्रम कर सकने में अक्षम साबित हो गया। जवानी का खुमार उतरने और होश आने पर उसने अपने को मोर के पर लगाए हुए कौए की तरह और भी दयनीय, कुरूप, एवं निकम्मा पाया। अपने भाई की गरीब गृहस्थी से, पास-पड़ौस से, शहर से और खुद अपने से उसे घृणा होने लगी, वह और भी चिड़चिड़ा, दुराग्रही, हठी निन्दक, आत्म-घातक और परद्रोही हो गया, उसके धनी मित्रों ने भी, जिनके साथ रह कर उसे अनेक प्रकार की कुटेवें और बुरी आदतें पड़ गई थीं, उस की ऐसी दशा देखकर उसका साथ छोड़ दिया। वह न घर का रह गया न घाट का। चाय, पान, सिगरेट के लिए, सुस्वादु भोजन के लिए अब उसका जी तरसने लगा। सिनेमा, थियेटर उसे और भी जोर से अपनी ओर खींचने लगे। लाचार हो, अपने से तंग आकर उसने अपने गरीब भाई की जेब पर हाथ साफ करना शुरू किया। भाई उससे पहले से ही रुष्ट था, अब उसका ऐसा पतन देखकर उसने उसका घर में आना बन्द कर दिया।

सब तरह से निराश हो, अपमान, भय, लज्जा, क्षोभ, यातना, आत्म-सम्मान, दारुण भूख-प्यास से एक साथ ही ग्रस्त पीड़ित क्लान्त एवं पराजित हो अन्त में पीताम्बर ने एक तम्बोली की दूकान में पान लगाने की नौकरी कर ली, पर वहाँ भी वह अधिक समय तक न ठहर सका। उसकी कुटेवें उसका दुर्भाग्य बन गई थीं, और एक रोज दूकान पर पान खाने को आई हुई एक वेश्या के रूप-सम्मोहन के तीर से बुरी तरह घायल हो उसने शाम के वक़्त चुपचाप गल्ले की सन्दूकची से

पाँच रुपये का नोट चुरा कर अपनी विपत्ति-निशा की कालिमा को एक रात के कलंक से और भी कलुषित कर डाला। उसका स्वास्थ्य अभी खराब नहीं हुआ था। उसके अविवाहित जीवन, सबल इन्द्रियों की स्वस्थ प्रेरणाओं का समाज अथवा संसार क्या मूल्य आंक सकता था, क्या सदुपयोग कर सकता था? फूल की मिलनेच्छा सुगन्ध कहीं जाती है। मनुष्य की प्रणयेच्छा दुर्गन्ध, उसे निर्मल समीर प्रवाहित करता है, इसे कलुषित लोकापवाद, नर-पुष्प के वीर्य का गीत गाता हुआ भौंरा, नृत्य करता हुआ मलयानिल, स्त्री-पुष्प के गर्भ में पहुँचा आता है, मनुष्य का वीर्य वैवाहिक स्वेच्छाचार की अच्छी कोठरियों, में पाशविक वेश्याचार की गन्दी नालियों में, सहस्र प्रकार के गर्हित, नीरस, कृत्रिम मैथुनों द्वारा छिपे-छिपे प्रवाहित होता है। यह इस लिए कि हम सभ्य हैं। असंख्य जीवों से परिपूर्ण यह सृष्टि एक ही अमर दिव्य शक्ति की अभिव्यक्ति है, प्रकृति के सभी कार्य पुनीत हैं, मनुष्य-मात्र की एक ही आत्मा है—हम ऐसे-ऐसे दार्शनिक सत्यों के ज्ञाता एवं विधाता हैं, हम प्रकाशवादी हैं।

खैर, दूकान का मालिक पीताम्बर को पुलिस के हवाले करने जा रहा था, उसके बड़े भाई ने बीच-बचाव कर, हाथ जोड़ कर, गिड़-गिड़ा कर तम्बोली के रुपये भर दिये और पीताम्बर को धिक्कार कर उस पर गालियों की बौछार कर, अन्त में लोगों के समझाने पर तरस खाकर उसके लिए निजी पान की दूकान खोल दी। तभी से हमारे कथानायक इस दूकान की गद्दी पर बैठ कर पान वाले की उपाधि से विभूषित हुए। अवश्य ही वह कोई शुभ मुहूर्त रहा होगा कि उस पान वाले की गद्दी अभी तक बनी हुई है; भले ही वह नाम-मात्र को हो।

पर यहाँ से पीताम्बर का दूसरा दुर्भाग्य शुरू हुआ। वह क्रिया-शील, निरंकुश पीताम्बर अब विचारशील और गम्भीर हो गया। उसका रुद्ध आत्म-अभिमान कुण्ठित हो गया; वह निर्जीव, निर्बलात्मा,

निश्चेष्ट, अस्थि-मांस का पुतला मात्र रह गया। उसने यथाशक्ति अपने स्वभाव और प्रवृत्तियों के अनुसार अपने परिस्थितियों के संसार से लड़ने, जीवन संग्राम में विजय पाने का प्रयत्न किया था, पर वह निष्फल हुआ—संसार ने ही अन्त में उस पर विजय पाई।

क्या वह निर्धन युवक किसी भाग्य-दोष से या अपने दोष से निरंकुश, उच्छृंखल अथवा आत्माभिमानी था ? क्या गरीब के लड़के में ऐसे गुण शोभा नहीं देते ? नहीं, नहीं, वह सुन्दर, स्वस्थ, सशक्त, सचेष्ट, आत्म-सम्मान से पूर्ण युवक गरीब का लड़का कैसे हो सकता है ? जब प्रकृति ने अपने सब विभवों से संवार कर उसे धनी-मानी बनाया था। वह युवक अपना सौन्दर्य पहचानता था, अपने सुन्दर स्वस्थ शरीर के प्रभाव से वह अनजान न था, युवावस्था की प्रवृत्तियों ने उसके मनःचक्षुओं के सामने जो एक सौन्दर्य का स्वर्ग, आशा-आकांक्षाओं का इन्द्रजाल उछाल दिया था, अपने और संसार के प्रति जो एक प्रगाढ़ अनुरक्ति एवं उपभोग की सामर्थ्य पैदा कर दी थी,—उसकी अमन्द मादकता से, प्रबल आकर्षण से वह कैसे आत्म-विस्मृत न होता ?

बाह्य-जगत के जीवन-संघर्ष का आघात लगते ही उसकी सहज-प्रेरणा उसके अन्दर एक आत्म-विश्वास पैदा करती रहती थी कि उसके अभिमान का, उसके अस्तित्व का मूल्य आंकने वाला कोई मिलेगा; कोई अवश्य मिलेगा जो उसकी समस्त आशा, आकांक्षाओं के लिये, प्रवृत्तियों की चेष्टाओं के लिए, मार्ग खोल देगा, तृप्त कर देगा। प्रत्येक युवक के भीतर स्वभावतः यह स्फुरण जन्म पाती है।

पर इस आत्म-संतोष के लिये धनी युवकों के पास जाना पीताम्बर की अनुभव-शून्यता एवं भ्रम था। वे इस काम के लिये उससे भी निर्धन थे। यह काम किसी एक व्यक्ति के करने का था भी नहीं। इसका संचालक या सम्पादक हो सकता है। हमारा सुव्यवस्थित,

सामाजिक या सामूहिक व्यक्तित्व। सामाजिक एकता, सामाजिक सुव्यवस्था एवं समुन्नति कर सकता है, जिसकी छत्रछाया में वह आत्मोन्नति कर सकता है, आत्म-तृप्ति पा सकता है। समाज व्यक्ति की सीमा का सापेक्ष निःसीम है। वह बून्दों की सम्मिलित शक्ति का समुद्र है जिसमें मिलकर प्रत्येक बून्द एकत्रित ऐश्वर्य का उपभोग कर सकता है, पर अपने देश में वह सामूहिक आधार है ही नहीं जिस की विशद् भूमि पर व्यक्ति निर्भीक रूप से खड़ा होकर आगे बढ़ सके। हम सब अनाथ, यतीम हैं, हमारा देश एक महान सभ्यता का विशाल भग्नावशेष है। हमारे यहां प्रत्येक व्यक्ति मात्र मांस-पिण्ड-मात्र हैं—वह कुलीन हो, अकुलीन, धनी हो या निर्धन। वह समाज नहीं है, वह देश नहीं है, उसके पीछे इन सब का सम्मिलित बल काम नहीं करता। वह निराधार है, वह क्षुद्र है।

हम केवल व्यक्तिगत उन्नति, व्यक्तिगत सम्मान, व्यक्तिगत शक्ति को ही समझ सकते हैं, उसी का उपभोग भी करते हैं—अपने सामाजिक व्यक्तित्व का सम्मान, उसकी शक्ति एवं उन्नति का महत्व अभी हमें मालूम नहीं हो पाया, इसीलिये हम कच्चे सूत की लच्छी के उन उलझे और बिखरे तागों की तरह हैं, जो अपनी एकता से बनने वाली रस्सी के बल से अपरिचित हैं।

फलतः इस विशाल पृथ्वी पर जटिल जीवन-संग्राम की कठिनाइयों का सामना हम में से प्रत्येक को केवल अपने बल पर करना पड़ता है, अर्थात् प्रत्येक तिनके को बाढ़ का सामना पृथक-पृथक रूप से करना पड़ता है। व्यक्ति के लिए देश के व्यक्तित्व का, मनुष्य के लिए विश्व के व्यक्तित्व का अभाव होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति की शक्ति की इकाई केवल व्यक्ति ही रह जाता है, और उसके लिए वाह्य-जगत के जीवन-संग्राम के घात-प्रतिघात, उत्थान पतनों को सहना कठिन ही नहीं असम्भव हो जाता है। दो एक बार निष्फल होकर वह शीघ्र ही अपने को अयोग्य समझने लगता है, और हतबुद्धि हो अन्त में

निराशावादी, भाग्यवादी, दुःखवादी, विरक्त, उदास, द्रोही, द्वेषी, निन्दक सभी कुछ बन जाता है। सभ्यता के ह्रास के युग में राष्ट्र के या समाज के अवनति के युगों में ऐसी ही विचारधारा जनसाधारण की बन जाती है।

इसी विचारधारा के प्रवाह में प्रताड़ित, प्रतिहत, पीताम्बर भी तिनके की तरह बह गया। समाज की दुर्बलता को वह अपनी दुर्बलता, उसके दोषों को अपने ही दोष समझने लगा। वह अपनी ही आँखों में गिर गया। ईश्वर ने उसे क्यों ऐसा हेय, जघन्य और निकम्मा बनाया, यह उसकी समझ में नहीं आया ? वह उसे अपने ही कर्मों का, पापों का फल, पूर्व जन्म का, भाग्य का दोष मानने लगा। अपने चारों ओर व्याप्त वातावरण में उसे ऐसे ही विचार और भावनाएँ मिलीं जो उसके भीतर भी जड़ जमा गईं। उसे अपने से घृणा, अच्छाई से से घृणा—जीवन, संसार सभी से विरक्ति हो गई। वह अन्दर की जीवनोत्पादक प्रेरणाओं, अभिलाषाओं, आशाओं, रुचियों को बल-पूर्वक दबाने लगा। मन ही मन जीवन-इच्छा के लिए आत्मा का तिरस्कार करने लगा। यह जीवन माया है, संसार भ्रम है, इच्छाओं का अन्त दुःख है, जीवन, संसार, आत्म-उन्नति सब कुछ दुःखमय हैं। यह सब निर्मम भाग्य का छल है। ऐसी ही बातों में उसका विश्वास बढ़ने लगा। उसके भीतर कार्य में प्रवृत्त करने वाली स्फुरणा निश्चेष्ट पड़ गई, मन की सब स्फूर्ति सदैव के लिए जाती रहीं। उसने अपने भी गए-बीतों, दुर्भाग्य पीड़ितों को देखना, उन पर सोचना प्रारम्भ किया; ऐसे विचारों से उसे सान्त्वना मिलने लगी और उसका विश्वास जीवन और संसार की निस्सारता पर बढ़ने लगा। व्यक्ति के जिस क्षुद्र रूप को उसने जीवन और संसार का स्वरूप समझ लिया था, वह अवश्य ही निस्सार एवं दुःखप्रद हैं। व्यक्ति के विशद् रूप का, उसके सामाजिक, दैशिक, विश्व-व्यक्तित्व का चिरन्तन स्वरूप उसे अपने यहाँ कहीं देखने को नहीं मिला। जीवन की सभ्यता से कट कर वह

अलग हो गया, और पेड़ की डाली से विच्छिन्न पुष्प की तरह मुरझाने और सूखने लगा।

किसी को सुन्दर, स्वस्थ, संसार में रत, आशा, सदिच्छा, सदाशयता में तत्पर देखकर उस के भीतर से एक विद्रुप हँसी निकलने लगी, वह सब का उपहास करने लगा। सभी पर ताने कसना, व्यंग बौछार करना उसका स्वभाव ही बन गया। उसका समस्त विश्वास भाव के विश्व से उठ गया। अभाव का विश्व कठोर है सही, पर वही सत्य है। सुख, सफलता, सम्पत्ति का स्वप्न देखना अज्ञान है। अब वह मनुष्यों की खोट, उनकी बुराइयों को खोजने लगा। जो कोई सुखी, सम्पत्तिशाली दीखता, समाज जिसे आदर-सम्मान देता उसमें भी दो-चार दोष निकाल कर वह अपने मन को संतोष देने लगा। उसके पड़ौस में उसके किसी सम्बन्धी ने एक विशाल दो-मंजिला कोठी खड़ी कर दी थी। वह आधुनिक ढंग की बड़ी ही सुन्दर, उस गरीब बस्ती में अपना गर्वोन्नत मस्तक उठाये हुए थी, पर पीताम्बर ने वह सड़क के किनारे है उस में पर्दा नहीं, उसके मालिक ने मजदूरों की तनख्वाह काटी इत्यादि, उसमें कई दोष निकाल दिए। वह जब मकान जाता उस कोठी की ओर कभी नहीं देखता, पहले से ही आँखे फेर लेता।

हम कभी से इस अभावात्मक सत्य पर विश्वास करते चले आ रहे हैं। ऐसा करने से सक्रिय जीवन के घात-प्रतिघात उसकी स्वास्थ्य-वर्धक स्पर्धाओं का सामना करने से बच जाते हैं, हम अपने विशद् व्यक्तित्व के उज्ज्वल परिमाणों से अनभिज्ञ होने के कारण क्षुद्र व्यक्तित्व को अपनाए हुए हैं, अपने को सर्वस्व न बना सकने के कारण हम शून्यवत हो गए हैं। पर सूरज, चाँद और तारे हमें शून्य बन जाने का उपदेश नहीं देते। नीला आकाश, हरी धरती, इठलाती वायु, रंग-बिरंगे फूल, गाते हुए पक्षी, दौड़ती हुई लहरें हमें दूसरा ही सन्देश देते, दूसरे ही सत्य का दर्शन कराते हैं। वहाँ अजेय जीवन, अविराम सृजन हमारे मरणशील व्यक्तित्व का, हमारे जड़त्व और निर्जीवता

का प्रत्येक क्षण उपहास उड़ाया करते हैं, हमें विश्व की समग्रता की ओर, हमारे अमर व्यक्तित्व की ओर आकर्षित करते रहते हैं। पारस्परिक स्पर्द्धा, द्वेष, द्रोह, छोटे-मोटे सुख-दुःख, हानि-लाभ, भेद-भाव के अन्धकार से गिरे सम सर्वत्र प्रकाशमान सम्पूर्णता से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर नाशवान हो गए हैं।

इसी अभावात्मक सत्य की निर्जीव, सजीव मूर्ति पीताम्बर को हम छुटपन से इस पान वाले के रूप में देखते आए हैं। उसे अब निश्चेष्ट, निर्जीव रहने ही में आराम मिलता है। उसका स्वास्थ्य अब नहीं के बराबर रह गया है। लगातार पान चबाने से दाँत सड़ गए, दिन-रात बैठे रहने से जठराग्नि बुझ गई है। वह केवल जीवित रहने के अभ्यास से जीता है। स्वास्थ्य गँवाकर बैठने एवं हृदय में निर्जीवता व्याप्त हो जाने के कारण वह अपनी पत्नी से भी प्रसन्न नहीं रह सका। पानवाला बन जाने के कुछ ही दिनों बाद भाई ने उसकी शादी कर दी थी। जब तेल टपक कर समाप्त हो चुका था तब केवल बत्ती को जलाने के लिए मानों दीपक को शिखा के पाश में बाँध दिया गया। पीताम्बर का निर्बल रुग्ण बच्चा जब जाता रहा तब उसने सन्तोष की सांस ली।

आज दिवाली के रोज दूकान सजाते हुए उसने एक पुराना मिट्टी का खिलौना कपड़े की तहों से बाहर निकाल गद्दी के पास रक्खा है। जिसके लिए पाँच साल पहले यह खिलौना लाया था वह तो रहा ही नहीं, यह खिलौना रह गया है। "वह मिट्टी का नहीं था इसलिए, वह मिट्टी का नहीं था!" ऐसा कहते हुए पीताम्बर उसी तरह ठठाकर हँस रहा है।

सुभद्रा कुमारी चौहान

सम्वत १९६१-२००४

रूढ़ियों और सामाजिक बंधनों की शिलाओं पर अनेक निरपराध आत्माएँ प्रतिदिन ही चूर-चूर होती रही हैं। उनके हृदय विन्दु जहाँ तहाँ मोतियों के समान बिखरे पड़े रहे हैं, उन्हीं को बटोर कर कहानी रूप में आपके सम्मुख रखा है। उन्हीं की प्रतिध्वनियों को अपने भावुक हृदय की तंत्री के साथ मिलाकर ताल स्वर में बैठाने का प्रयत्न किया है। जिसके कारण हिन्दी साहित्य में आपका विशिष्ट स्थान बन गया है।

जीवन—सुभद्रा कुमारी चौहान का जन्म प्रयाग में हुआ। आपके पिता ठाकुर रामनाथ सिंह साहित्य प्रेमी थे। अतः शैशवकाल में ही उनकी संगीत से साहित्यिक प्रवृत्ति जागृत हो गई। आपका विवाह जबलपुर के राष्ट्रीय कार्यकर्ता ठाकुर लक्ष्मण सिंह के साथ हुआ था। अभाग्य वश सन् १९४९ ई० में मोटर दुर्घटना से उनकी मृत्यु हो गई। आप सबसे पहले कवयित्री रूप में साहित्यिक क्षेत्र में उतरी थीं तत्पश्चात् आप गद्य लेखन में भी सिद्धहस्त हो गईं।

रचनाएँ—कवयित्री के रूप में 'मुकुल' और 'झांसी की रानी' और कहानी लेखिका के रूप में 'बिखरे मोती,' 'उन्मादिनी,' और 'सीधे सादे चित्र' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। "झांसी की रानी" कविता को पढ़कर तो हर देश के अभिमानी वीर का रक्त उबल पड़ता है। ऐसी ही उष्णता भरी अनुभूतियाँ आप अपने गद्य साहित्य में भी लिए हुए हैं।

भाषा-शैली—आप की कहानियों की भाषा बहुत सरल और बोल चाल की है। वर्णन शैली सरल, सुबोध, सरस, और प्रवाह पूर्ण है। इसी के कारण आप गूढ़ से गूढ़ भावनाओं एवं सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने में सफल हुई हैं।

कहानी-साहित्य की विशेषता—आप की कहानियों के पात्रों में सजीवता और आत्मिक अनुभूति बड़ी तीव्र प्रभावदायिनी बन उठती है। कहानी पढ़ने के बाद पाठक समझते हैं कि उसका हरेक पात्र हमारे साथ चिरंकाल से परिचित व्यक्ति की भांति अपना सम्बन्ध कर बैठा है। वास्तव में आपका कहानी साहित्य चिरकाल तक नारी जीवन और राष्ट्रीय जीवन में प्राण फूँकता रहेगा यही आपके साहित्य की विशेषता है।

प्रस्तुत कहानी—'ग्रामीणा' में सोना का चरित्र बड़े अनोखे ढंग से प्रस्तुत किया गया है। वह देहात के वातावरण में पली हुई स्वतंत्र स्वभावी है। नगर के प्रयत्नों से वह अनभिज्ञ है। दुर्भाग्य से उसे वधू बन कर नगर में जाना पड़ा। उसने नगर में आकर भी अपने उसी स्वतन्त्रतापूर्ण देहाती स्वभाव के कारण अधिक ध्यान नहीं दिया। परिणाम स्वरूप लोगों में उसके प्रति गलतफहमी फैली जिसने उसे आत्म-हत्या करने के लिए विवश कर दिया। सोना सुन्दर, पवित्र, निष्कपट और निष्कलंक होते हुए भी स्वयं को नगर वालों के अनुकूल नहीं बना सकी।

समस्याप्रधान

ग्रामीणा

✦✦

सुभद्राकुमारी चौहान

१

पंडित रामधन तिवारी को परमात्मा ने सब कुछ दिया था किन्तु सन्तान के बिना उनका घर सूना था। धन-धान्य से भरा पूरा घर उन्हें जंगल की तरह जान पड़ता। सन्तान की लालसा से उन्होंने न जाने कितने जप-तप और विधान करवाये और अन्त, में उनकी ढलकती उमर में पुत्र तो नहीं, पर उनके यहाँ एक पुत्री का जन्म हुआ। इस समय तिवारी जी ने खूब खुले-हाथों खर्च किया। सारे गाँव को प्रीति-भोज दिया। महीनों घर में ढोलक ठनकती रही। कन्या ही सही पर इसके जन्म ने तिवारी जी के निःसन्तान होने के कलंक को धो दिया था। कन्या का रंग गोरा चिट्टा, आँखें बड़ी-बड़ी, चौड़ा माथा और सुन्दर नासिका थी। उसके बाल घने, काले और असंख्य नन्हें-नन्हें छल्लों की भाँति सिर पर बड़े ही सुहावने लगते थे। उसका नाम रखा गया सोना। सोना का लालन-पालन बड़े लाड़-प्यार से होने लगा।

जब सोना सात साल की हुई तो घर ही में एक मास्टर लगाकर तिवारी जी ने सोना को हिन्दी पढ़वाना प्रारम्भ किया और थोड़े ही समय में सोना ने रामायण, महाभारत इत्यादि धार्मिक पुस्तकें पढ़ना सीख लिया। गाँव के सभी लोगों ने सोना की कुशाग्र बुद्धि की तारीफ की। इसके आगे अधिक पढ़ाकर तिवारी जी ने कन्या से कुछ नौकरी

तो करवानी न थी, इस लिये सोना का पढ़ना बन्द करवा दिया।

अब सोना नौ साल की सुकुमार सुन्दर बालिका थी। उसकी सुन्दरता और सुकुमारता देखकर गाँववाले कहते—"तिवारीजी! तुम्हारी लड़की तो देहात के लायक नहीं है। इसका विवाह तो भाई कहीं शहर में ही करना। सुनते हैं शहर में बड़ा आराम रहता है।"

इधर तिवारी जी की बहिन जानकी जिसका विवाह हुआ तो गाँव में ही था; किन्तु कुछ दिन से वह शहर में जाकर रहने लगी थी। जब कभी शहर से चौड़े किनारे की सफेद साड़ी, आधी बाँह का लेस लगा हुआ जाकेट, टिकली की जगह माथे पर लाल ईंगुर की बिन्दी और पैरों में काले-काले स्लीपर पहिन कर आती तो सारी गाँव की स्त्रियाँ उसे देखने को दौड़ आतीं। गाँव के तरुण जीवन में उसका आदर था और बूढ़ों की आँखों में वह खटकती थी। फिर भी सबके लिये वह नई चीज थी। जानकी के पति नारायण ने भी मिल में नौकरी कर ली थी। उसे २०) महावार मिलते थे। वह अब देहाती न था, सोलह आने शहर का बाबू बन गया था। धोती की जगह पाजामा, कुरते की जगह कमीज, वास्कट और कोट पहनता, पगड़ी की जगह काली टोपी पहनता और पैरों में पम्प शू था। जब कभी गाँव में जाता कान में इत्र का फाया जरूर रहता, कभी हिना कभी खस की मस्त खुशबू से बेचारे देहाती हैरान हो जाते। उन्हें अपने जीवन से शहर का जीवन बड़ा ही सुखमय और शान्तिदायक मालूम होता।

२

इन सब बातों को देखकर और सोना की सुकुमारता को देखते हुए सोना की माँ नन्दो ने निश्चय कर लिया था कि मैं अपनी सोना का विवाह शहर में ही करूँगी। मेरी सोना भी पैरों में पतले-पतले छल्ले और काले-काले स्लीपर पहनेगी, चौड़े किनारे की सफेद साड़ी और लेस लगा हुआ जाकेट पहनकर वह कितनी सुन्दर लगेगी। इसकी

कल्पना-मात्र से ही नन्दो हर्ष से विह्वल हो जाती; किन्तु सोना को कुछ ज्ञान न था, वह तो अपने देहाती जीवन में ही मस्त थी। वह दिन भर मधुबाला की तरह स्वच्छ फिरा करती। कभी-कभी समय पर खाना खाने आ जाती और कभी-कभी तो खेल में खाना भी भूल जाती। सुन्दर चीज इकट्ठी करने और उन्हें देखने का उसे व्यसन सा था। गाँव में अपने जोड़ की कोई लड़की उसे न मिलती इसलिए किसी लड़के से उसका अधिक मेल-जोल न था। नन्दो को सोना की यह स्वच्छन्द-प्रियता पसन्द न थी। जब वह कभी सोना को इसके लिये कुछ कहती तो तिवारीजी उसे आड़े हाथों लेते, कहते—"लड़की है पराए घर तो उसे जाना ही पड़ेगा। क्यों उसके पीछे पड़ी रहती हो? जितने दिन हैं खेल खा लेने दो। कुछ तुम्हारे घर जन्म भर थोड़े बनी रहेगी। लाचार नन्दो चुप हो जाती।

धीरे-धीरे सोना ने बारह वर्ष पूरे करके तेरहवें में पैर रखा; किन्तु तिवारी जी का इस तरफ ध्यान ही न था। एक दिन नन्दो ने उन्हें छेड़ा—"सोना के विवाह की भी कुछ फिकर है?"

तिवारीजी चौंक-से उठे, बोले—"सोना का विवाह? अभी वह है कै साल की?"

किन्तु यह कितने दिनों तक चल सकता था। लड़की का विवाह तो करना ही पड़ता। वैसे तो गाँव में ही कई ऐसे लड़के थे जिनसे सोना का विवाह हो सकता था; किन्तु नन्दो और तिवारीजी दोनों ही सोना का विवाह शहर में ही करना चाहते थे। शहर के जीवन का सुनहला सपना रह-रहके उनकी आँखों में छा जाता था। उन्होंने जानकी और नारायण से कोई योग्य वर तलाश करने के लिये कहा।

इधर सोना बारह साल की हो जाने पर भी, निरी बालिका ही थी, अब भी वही राजा रानी का खेल खेला जाता। सुन्दर फूल-पत्तियाँ अब भी इकट्ठी की जातीं और तितलियों के पीछे अब भी उसी प्रकार दौड़ लगाती। सोना के अंग-प्रत्यंग में धीरे-धीरे यौवन का प्रवेश आरम्भ

हो चुका था, किन्तु सोना को इसका ज्ञान न था। उसके स्वभाव में अब भी वही लापरवाही, अल्हड़पन और भोलापन था, जो आठ साल की बालिका के स्वभाव में मिलेगा।

३

सोना का विवाह तै हो गया। वर की आयु २२ या २३ साल की थी। वे सुन्दर, स्वस्थ और चरित्रवान् नवयुवक थे। एक प्रेस में नौकरी करते थे, ७५ रुपये मासिक वेतन पाते थे। घर में एक बूढ़ी मां को छोड़कर और कोई न था। बिहार के रहने वाले थे। कुछ ही दिनों से यू० पी० में आये थे। परदे के बड़े पक्षपाती और पुरानी रूढ़ियों के कायल थे। नाम था विश्व मोहन। जब तिवारीजी ने विश्वमोहन और उनके घर को देखा तो उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। विश्वमोहन बाबू पूरे साहब दीख पड़ते थे। उनके घर में खिड़की और दरवाजों पर चिकें पड़ी हुई थीं। जमीन पर एक बड़ी दरी पड़ी थी जिसके बीच में एक गोल मेज थी। मेज के आस-पास कई कुर्सियाँ पड़ी थीं। जब विश्वमोहन ने तिवारीजी से चाय पीने का आग्रह किया और तिवारीजी को उनके आग्रह से चाय पीनी ही पड़ी तो वहाँ का साज-सामान देखकर तिवारीजी चकित हो गये। हर्ष से उनकी आँखें चमक उठीं। सुन्दर-सुन्दर प्यालों में मेज पर चाय पीने का तिवारीजी के जीवन में पहला ही अवसर था। मेज पर चाय पीने के बाद तिवारीजी ने दो गिन्नी वरीक्षा में देकर शादी पक्की कर ली। रास्ते में नारायण बोला—"कहो तिवारीजी, है न लड़का हजारों में से एक ? है तुम्हारे कोई गाँव में ऐसा ? जब कपड़े पहन कर हैट लगाकर निकलता है तब कोई नहीं कह सकता कि साहब नहीं। सब लोग झुक के सलाम करते हैं। घर में देखा, कितना परदा है ? सब खिड़की दरवाजों पर चिकें पड़ी हैं। इनकी माँ बूढ़ी होगई है; पर क्या मजाल कि कोई परछाईं भी देख ले। दोनों समय चाय पीते हैं, कुर्सियों पर बैठते हैं।"

तिवारीजी ने हर्षोन्मत्त होकर कहा—"भाई नारायण, हम तुम्हारे इस उपकार के सदा आभारी रहेंगे। हमारे ढूँढे तो ऐसा घर-बार कभी न मिलता। हम देहात के रहने वाले शहर का हाल चाल क्या जानें? पर तुमने मेरी सोना को अपनी लड़की सरीखी समझ कर जो उसके के लिए इतनी दौड़धूप की है और ऐसा अच्छा जोड़ा मिला दिया है, इस उपकार का फल तुम्हें ईश्वर देगा।"

नारायण—"अच्छा तिवारीजी, अब जाकर विवाह की तैयारी करो। देखना इन्हें खाने पीने का कुछ कष्ट न होने पावे। शहर के आदमी हैं। सब तकलीफें सह लेंगे पर भूख नहीं सह सकेंगे। खाते भी अच्छा हैं, देहात की मिठाई इन्हें अच्छी न लगेंगी, कोई शहर का हलवाई ले जाकर मिठाई बनवा लेना, समझे।"

तिवारीजी खुशी खुशी घर लौटे। घर आकर जब उन्होंने नन्दो के सामने वर के रूप और गुण का बखान किया तो नन्दो फूली न समाई। वह जैसा घर-वर सोना के लिए चाहती थी ईश्वर ने उसकी साध पूरी कर दी। इस कृपा के लिए उसने परमात्मा को शतशः धन्यवाद दिया और नारायण को उसने कोटि कोटि मन से आशीर्वाद दिया। जिसने इतनी दौड़ धूप कर के मनचाहा घर और वर सोना के लिये खोज दिया था।

सोना ने जब सुना कि उसका विवाह हो रहा है तब वह दौड़कर आई। उसने मां से पूछा—"मां! विवाह कैसा होता है और क्यों होता है?"

माँ के सामने यह बड़ा जटिल प्रश्न था। वह समझ ही न सकी कि इसका क्या उत्तर दे; किन्तु चतुर जानकी ने तुरन्त बात बना ली, बोली—"सोना! विवाह होने पर अच्छे अच्छे गहने कपड़े मिलते हैं इसलिए विवाह होता है।"

सोना—"बुआ जी, फिर क्या होता है?"

जानकी—"फिर सास के घर जाना पड़ता है सो मैं तुझे अपने साथ ले चलूँगी।"

"सो तो मैं पहले ही से जानती थी, बुआजी, कि विवाह करने पर सास के घर जाना पड़ता है। पर मैं कहीं न जाऊँगी, अभी से कहे देती हूँ। विवाह करो चाहे न करो"—कहती हुई सोना खेलने चली गई। नन्दो का मातृ प्रेम आँखों में आंसू बनकर उमड़ आया, बोली—"अभी बचपन है, बड़ी होगी तब समझेगी।"

जानकी—"फिर तो सुसराल से एक दो दिन के लिये भी मायके आना कठिन हो जायगा। भौजी! देखो न मैं ही चार छः दिन के लिये आती हूँ तो रात दिन वहीं की फिकर लगी रहती है। जहाँ गृहस्थी का झंझट सिर पर पड़ा सब खेलना कूदना भूल जाता है। जब तक विवाह नहीं होता तभी तक का खेलना खाना समझो।"

नन्दो—"जानकी दीदी! तुम लोगों की कृपा से मेरी सोना सुखी रहे। जैसे उसका नाम सोना है वैसे ही उसके जीवन में सोना बरसता रहे।"

४

सोना का विवाह हो गया। रामधन तिवारी की लड़की का विवाह गांव भर में एक नई बात थी। इस विवाह में मंगलामुखी के स्थान पर आगरे से भजन मण्डली आई थी जो उपदेश के अच्छे अच्छे भजन गाकर सुनाया करती थी। गहने, कपड़े सब नये फैशन के थे। लहँगों का स्थान साड़ियों ने ले लिया था। जूते थे, रूमाल थे, पाउडर की डिब्बी, सुगन्धित तेल और न जाने क्या क्या था जिनकी नन्दो और जानकी ने भी कल्पना तक न की थी। गाँव की औरतों को नन्दो बड़ी खुशी खुशी सब चीजें दिखाया करती। देखने वाली सोना के भाग्य की सराहना करती हुई लौट जातीं। उनकी आँखों में आज सोना से अधिक

सौभाग्यवती कोई न थी। जिस दिन सोना को सुसराल के सब गहने-कपड़े पहनाकर नन्दो ने पुत्री का सौन्दर्य निहारा तो उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा। किसी की नजर न लग जाय इस डर से उसने छिपा-कर बालों के नीचे एक काजल का टीका लगा दिया। जिसने सोना को देखा वही क्षण भर तक उसे देखता रहा। सोना सचमुच में सोना रही थी।

विदा का समय आया। माँ बेटी खूब रोईं। जब सोना तिवारीजी की कमर से लिपट कर रोने लगी तो तिवारीजी का भी धैर्य जाता रहा, वे भी जोर से रो पड़े। सोना की विदाई हो गई। विदा के बाद तिवारीजी को पुत्री के बिछोह का दुःख भी था, साथ ही साथ आत्म-सन्तोष भी कि पुत्री अच्छे घर ब्याही गई है सुख से रहेगी।

सोना सुसराल पहुँची, रास्ते भर तो जैसे-तैसे; किन्तु घर पहुँचने पर जब वह एक कोठरी में बन्द कर दी गई और बाहर की साफ हवा उसे दुर्लभ हो गई तो उसे ससुराल का जीवन बड़ा ही कष्टमय मालूम हुआ! अब उसे गहने कपड़े न सुहाते थे। रह-रहकर कोठरी के बाहर निकलकर साफ हवा में आने के लिए उसका जी तड़पने लगा। स्वच्छन्द हवा में विचरने वाली बुलबुल की जो दशा पिंजड़े में बन्द होने के बाद होती है वही दशा सोना की थी। चार ही छः दिन में उसके गुलाबी गाल पीले पड़ गए। आँखें भारी रहने लगीं। एक दिन विश्वमोहन आफिस चले गये थे, सास सो रही थीं, सोना आंगन के बाहर दरवाजे के पास चली आई। चिक को ज़रा हटाकर बाहर देखा। यहाँ देहात की सुन्दरता तो न थी। फिर भी साफ हवा अवश्य थी। इतने दिनों के बाद क्षणभर के ही लिए क्यों न हो, बाहर की हवा लगते ही सोना का चित्त प्रफुल्लित हो गया; किन्तु उस समय एक बुढ़िया उधर से निकली? सोना को उसने चिक के पास देख लिया। आकर विश्वमोहन की माँ से उसने कहा—"बहू को जरा सम्हाल कर रखा करो। न साल, न छः महीने अभी से खड़ी होकर बाहर झाँकती है।

यह लच्छन कुलीन घर की बहू-बेटियों को शोभा नहीं देते। बिस्सू की अम्मां! तुम्हारी इतनी उमर हो गई आज तक किसी ने परछाईं तक नहीं देखी और तुम्हारी ही बहू के ये लच्छन! कलजुग इसी को कहते हैं।"

बढ़िया तो उपदेश देकर चली गई पर सोना को उस दिन बड़ी डांट पड़ी। उसकी समझ में न आता था कि चिक के पास जाकर उसने कौन-सा अपराध कर डाला? फिर भी बेचारी ने नतमस्तक सभी झिड़कियाँ सह लीं और दूसरा चारा ही क्या था? इसी बीच तिवारीजी जब सोना को लेने आये तो उसे ऐसा जान पड़ा जैसे किसी ने डूबते से उबार लिया हो। पिता को देखकर वह बड़ी खुश हुई। उसने मन ही मन प्रतिज्ञा की कि अब जाऊँगी तो फिर यहाँ कभी न आऊँगी।

५

लेकिन शहर वाले बहू को मायके में ज्यादा रहने ही कब देते हैं? सोना को मायके आये अभी पन्द्रह दिन भी न हुए थे कि विश्वमोहन सोना को लेने के लिए आ गए। वे जब आ रहे थे, सोना उन्हें रास्ते में ही बिही के पेड़ पर चढ़ी हुई मिली। उसके साथ और भी बहुत-से लड़के-लड़कियाँ थीं। सोना का सर खुला था। वह बिही तोड़-तोड़कर खा रही थी, और जूठी बिही खींच-खींचकर मारती भी जा रही थी। पेड़ पर बैठी-बैठी हँस रही थी। सोना को विश्वमोहन ने देखा; किन्तु सोना उन्हें न देख सकी। पत्नी की चाल-ढाल विश्वमोहन को न सुहाई। उनकी आँखों में खून उतर आया; पर वे चुपचाप अपने क्रोध को पी गये। किन्तु उसी समय उन्होंने मन ही मन प्रतिज्ञा की कि अब वे सोना को मायके कभी न भेजेंगे। वे जाकर चौपाल में मोढ़े पर बैठे ही थे कि अपने बाल-सखा और सहेलियों के साथ सोना आ पहुंची। विश्वमोहन को देखते ही उसने हाथ की बिही फेंक दी और सिर ढक-

कर अन्दर भाग गई। फिर ससुराल जाना पड़ेगा इस भावना मात्र से ही उसका हृदय व्याकुल हो उठा।

सोना फिर ससुराल आई। अब की बार आने के साथ ही घर का सारा भार सोना को सौंपकर सोना की सास ने घर-गृहस्थी से छुट्टी ले ली। कभी घर का काम करने का अभ्यास न होने के कारण सोना को घर के काम में बड़ी दिक्कत होती, इसके लिए उसे रोज़ सास की झिड़कियाँ सहनी पड़तीं। सोना ने तो खेलना खाना और तितली की तरह उड़ना ही सीखा था। गृहस्थी की गाड़ी में उसे भी कभी जुतना पड़ेगा, यह तो उसने कभी सोचा न था। किन्तु यह कठिनता महीने-पन्द्रह दिन की ही थी। अभ्यास हो जाने पर फिर सोना को काम करने में कुछ कठिनाई न पड़ती।

घर में रात दिन बन्द रहने की उसकी आदत न थी। बाहर जाने के लिए उसका जी सदा व्याकुल रहता। यदि कभी खिलौनेवालों की आवाज़ सुनती या "चना जोर गरम" की आवाज़ उसके कानों में पड़ती तब वह तड़प-सी जाती। अपना यह कैदखाने का जीवन उसे बड़ा कष्टकर मालूम पड़ता; किन्तु सोना बहुत दिनों तक अपने को न रोक सकी। वह सास और पति की आँख बचाकर गृह-कार्य के पश्चात् कभी खिड़की, कभी दरवाजे के पास, जब जैसा मौका मिलता, जाकर खड़ी हो जाती। बाहर का दृश्य, हरे-हरे पेड़ और पत्तियाँ देखकर उसे कुछ शान्ति मिलती। बाहर की ठण्डी हवा को स्पर्श करके उसमें जैसे कुछ जीवन आ जाता। वह जानती थी कि खिड़की दरवाजों के पास, वह कभी किसी बुरे उद्देश्य से नहीं जाती फिर भी पति नाराज़ होंगे, सास झिड़कियाँ लगावेगी, इसलिए वह सदा उनकी नज़र बचाकर ही यह काम करती।

मुहल्लेवालों को यह बात सहन न हुई। कल की आई हुई बहू, बड़े घर की बहू, सदा खिड़की दरवाज़ों से लगी रहे। अवश्य ही आचरण-भ्रष्ट है। धीरे-धीरे आस पास के लोगों में सोना के आचरण

की चर्चा होने लगी। पुराने विचार वाले, पर्दे के पक्षपातियों को सोना की हरएक हरकत में बुराई छोड़ भलाई नजर ही नहीं आती थी। मुहल्ले के बिगड़े दिल शोहदे, सोना के दरवाजे पर से दिन में कई बार चक्कर लगाते और आवाज़ कसते; किन्तु न तो सोना का इस तरफ ध्यान होता और न उसे इसकी कुछ परवाह थी। वह तो प्रकृति की पुजारिन थी। खिड़की दरवाज़ों के पास वह प्रकृति की शोभा देखती थी; लोगों की बातों की ओर तो उसका ध्यान भी न जाता था।

इसी बीच में, किसी काम से सोना की सास को कुछ दिन के लिए गांव जाना पड़ा। अब पति के आफिस जाने के बाद से उसे पूरी स्वतन्त्रता थी। उनके आफिस जाने के बाद वह स्वच्छन्द हिरनी की तरह फिरा करती थी। कोई रोक-टोक करनेवाला तो था ही नहीं, अब कभी-कभी वह चिक से बाहर भी चली जाया करती। आस-पास की कई औरतों से जान-पहिचान भी हो गई। वे सब सोना के घर आने-जाने लगीं। सोना भी कभी-कभी लुक-छिप के दोपहर के सन्नाटे में उनके घर हो आती। सोना के बारे में, उसके आचरण के विषय में, लोग क्या बकते हैं सोना न जानती थी? वह तो अपना हितैषी और मित्र समझती थी। वही लोग, जो सोना से घुल-मिलकर घण्टों बातचीत किया करते, बाहर जाकर न जाने क्या-क्या बकते?

धीरे-धीरे इसकी चर्चा विश्वमोहन के कानों तक पहुँची। इन सब बातों को रोकने के लिए उन्होंने अपनी माँ की उपस्थिति आवश्यक समझी। इसलिए मां को बुलवा भेजा। साथ ही सोना को भी समझा दिया कि वह बहुत संभल कर रहा करे। सास के आने पर सोना के ऊपर फिर से पहरा बैठ गया; किन्तु वह तो गाँव की लड़की थी, साफ़ हवा में विचर चुकी थी। उसके लिए सख्त परदे में बिल्कुल बंद होकर रहना बड़ा कठिन था। इसलिए उसका जीवन बड़ा दुःखी था। उससे घर के भीतर बैठा ही न जाता था। ज़रा मौका पाते ही बाहर साफ़ हवा में जाने के लिये उसका जी मचल उठता और वह अपने आपको

रोक न सकती। विश्वमोहन ने एकान्त में उसे कई बार समझाया कि सोना के इस आचरण से उनकी बहुत बदनामी हो रही है, इसलिये वह खिड़की दरवाज़ों के पास न जाया करे और बाहर न निकला करे। एक-दो दिन तक तो उनकी बातें याद रहतीं; किन्तु वह फिर भूल जाती और वही हाल फिर हो जाता। जब फिर खिड़की दरवाज़ों के पास जाती तब बाहर की साफ़ हवा में जाने के लिए, प्रकृति के सुन्दर दृश्यों को देखने के लिये उसकी आँखें मचल उठतीं।

एक दिन विश्वमोहन को किसी काम से शहर के बाहर जाना था। सोना ने पति का सामान ठीक कर उन्हें स्टेशन रवाना किया। सास खाना खा चुकने के बाद लेट गई। सोना ने अपने गृहस्थी के काम-धन्धे समाप्त करके कंघी-चोटी की, कपड़े बदले, पान बना के खाया, फिर एक पुस्तक लेकर पढ़ने के लिये खाट पर लेट गई। पुस्तक कई बार की पढ़ी हुई थी, दो चार पेज उलट पुलट कर देखा, जी न लगा। उसी समय ठेलेवाले ने आवाज़ दी, "दो पैसे वाला" "दो पैसे वाला" "सब चीज़ें दो-दो पैसेमें लो।" किताब फेंककर सोना दरवाजे की ओर दौड़ी। ठेलेवाला दूर निकल गया था। दूर तक नज़र दौड़ाई कहीं भी न दीख पड़ा, निराश होकर लौटने ही वाली थी कि पड़ौस ही में रहने वाले बनिये का लड़का फैजू दौड़ा हुआ आया, बोला—"भौजी! सूई तागा हो तो ज़रा मेरे कुर्ते में बटन टाँक दो, मैं कुश्ती देखने जाता हूँ।"

सोना ने पूछा—"कुश्ती देखने जाते हो कि लड़ने?"

फैजू ने मुस्करा कर कहा—"दोनों काम करने भौजी! लेकिन पहिले बटन तो टाँक दो, नहीं तो देरी हो जायेगी।"

सोना सूई तागा लाकर बटन टाँकने लगी। फैजू वहीं फर्श पर सोना से ज़रा दूर हटकर बैठ गया।

६

गाड़ी तीन घण्टे लेट थी। विश्वमोहन ने सोचा यहाँ बैठे-बैठे क्या करेंगे, चलें जब तक घर में ही बैठकर आराम करेंगे। सामान स्टेशन

पर ही छोड़कर, स्टेशन मास्टर की साइकिल लेकर विश्वमोहन घर पहुँचे। बैठक में फैजू को सोना के पास बैठा देखकर उनके बदन में आग-सी लग गई। वे क्षण भर वहीं खड़े रहे; परन्तु इस दृश्य को वे गवारा न कर सके। अपने गुस्से को चुपचाप पीकर, अन्दर न आये, माता के पास बैठ गये। सोना से पति की नाराजगी छिपी न रही। ज्यों-त्यों किसी प्रकार बटन टाँक कर, कुर्ता फैजू को देकर वह अन्दर आई। सोना ने स्वप्न में भी न सोचा था कि यह ज़रा-सी बात यहाँ तक बढ़ जायेगी। पति का चेहरा देखकर वह सहम-सी गई। उनकी त्यौरियां चढ़ी हुईं, चेहरा स्याह और आँखें कुछ गीली थीं। सोना अन्दर आई, विश्वमोहन ने उसकी तरफ आँख उठाकर भी न देखा। उसने डरते-डरते पति से पूछा—"कैसे लौट आये ?"

विश्वमोहन ने रुखाई से दो शब्द में उत्तर दिया—"गाड़ी लेट है।"

सोना ने फिर छेड़ा— "अब कब जाओगे ?"

विश्वमोहन ने एक तीव्र दृष्टि पत्नी पर डाली और कठोर स्वर में बोले—"गाड़ी तीन घण्टे बाद जायेगी तब चला जाऊँगा।"

सोना फिर नम्रता से बोली—"तो इस प्रकार बैठे कब तक रहोगे ? मैं खाट बिछाये देती हूँ आराम से लेट जाओ।"

"तुम्हें कष्ट करने की कोई आवश्यकता नहीं, मैं बहुत अच्छी तरह हूँ।" विश्वमोहन ने कड़े स्वर में रुखाई से कहा। सोना के बहुत आग्रह करने पर विश्वमोहन ने न कमरे में पैर रखा, न वे कुछ बोले और न खाट ही पर लेटे, कुर्सी पर बैठ गए। एक पुस्तक उठा कर उसके पन्ने उलटने लगे। पढ़ने के नाम से कदाचित् एक अक्षर भी न पढ़ सके हों; किन्तु इस प्रकार वे अपनी अन्तर्वेदना को चुपचाप लहू की घूँट की तरह पी रहे थे। सोना का आचरण उन्हें हज़ार-हज़ार बिच्छुओं के दंशन की तरह पीड़ा पहुँचा रहा था। पति की आंतरिक वेदना सोना से छिपी न थी, वह ज़रा सी खिसक कर उनके पास बैठ गई। धीरे से

उसने अपना सिर विश्वमोहन के पैरों पर धर दिया, बोली—

"इस बार मुझे माफ करो, अब तुम जो कुछ कहोगे, मैं वही करूँगी, मुझ से नाराज़ न होओ।"

विश्वमोहन के पैरों पर जैसे किसी ने जलती हुई आग धर दी हो, जल्दी से उन्होंने अपने पैर समेट लिये और तिरस्कार के स्वर से बोले—"यह बात क्या आज तुम पहली बार कह रही हो ? यह मौखिक प्रतिज्ञा है, हृदय की नहीं। मैं सब जानता हूँ। तुम्हारे कारण तो मैं शहर में सिर उठाने लायक नहीं रहा। जिधर जाओ उधर ही लोग तुम्हारी चर्चा करते हुये देख पड़ते हैं। मेरे तुम्हारे मुँह पर कोई कुछ नहीं कहता तो क्या हुआ बाद में तो कानाफूसी करते हैं ? तुम्हारे ऊपर तो जैसे उसका कुछ असर नहीं पड़ता। जो जी में आता है करती हो। भला वह शोहदा तुम्हारे पास बटन टँकवाने क्यों आया ? क्या तुम इन्कार न कर सकती थीं ? तुम यदि शह न दो तो कैसे कोई तुम्हारे पास आवे ?"

सोना ने भय-कातर दृष्टि से पति की ओर देखते हुए कहा—"जरा सा तो काम था। पड़ोसी-धर्म के नाते, मैंने सोचा कि कर ही देना चाहिये। नहीं तो इन्कार क्यों नहीं कर सकती थी ?"

"इसी प्रकार जरा-जरा सी बातों से बड़ी-बड़ी बातें भी हो जाया करती हैं। निभाया करो पड़ोसी धर्म; मेरी इज्जत का ख्याल मत करना"—कहते हुए विश्वमोहन बाहर चले गये। साइकिल उठाई और स्टेशन चल दिये।

आहत-अपमान से सोना तड़प उठी। वह कटे हुए वृक्ष की भाँति खाट पर गिर पड़ी और खूब रोई। रोने के बाद उसका जी कुछ हलका हुआ। उसे अपने गाँव का स्वच्छन्द जीवन याद आने लगा। देहाती जीवन की सुखद स्मृतियाँ एक-एक करके सुकवि की सुन्दर कल्पना की भाँति उसके दिमाग़ में आने लगीं। उसे याद आया, किस प्रकार जाड़े के दिनों में अलाव के पास न जाने कितनी रात तक बुड्ढे जवान,

युवतियाँ और बच्चे सब एक साथ बैठकर आग तापते हुए पहेलियाँ सुनाते और किस्से कहानियाँ कहा करते थे। किसी के साथ किसी प्रकार का बन्धन न था ? नदी पर गाँव भर की बहू-बेटियाँ कैसे स्नान करने को जाती थीं और फिर सब एक साथ गाती हुई लौटती थीं; कितना सुखमय जीवन था वह। चने के खेत में नर्म-नर्म चने की भाजी तोड़कर सब एक साथ ही किस प्रकार खाया करते थे और कभी-कभी छीना-झपटी भी हो जाया करती थी ? हँसी मजाक भी खूब होता था। किन्तु वहां किसी को कुछ शिकायत नहीं थी ? अपने पड़ोसी कुन्दन के लिये वह अपनी मां से लड़भिड़ कर भी मिठाई ले जाया करती थी। नदी पर नहाने के बाद कभी-कभी कुन्दन उसकी धोती भी धो दिया करता था। किन्तु वहाँ तो कभी इसकी चर्चा भी नहीं हुई। कोशिए से एक सुन्दर-सा बटुआ बनाकर सबके सामने ही तो उसने कुन्दन को दिया था, जो अब तक उसके पास रखा होगा, पर वहाँ तो इस पर किसी को भी बुरा न लगा था। वहाँ सब लोगों को सबसे बोलने, बात करने की स्वतन्त्रता थी। कुन्दन की भाभी नयी-नयी तो ब्याह के आई थी, पर हम लोगों के साथ ही रोज नदी नहाने जाया करती थी और साथ बैठकर झूला भी झूला करती थी, अलाव के पास भी बैठा करती थी। फिर मैंने कौनसा ऐसा पाप कर डाला, जिसके कारण इन्हें शहर में सर उठाने की जगह नहीं रही। यदि किसी का कुछ काम कर देना, बोलना या बातचीत करना ही पाप है, तो कदाचित् यह पाप जाने-अनजाने में मुझसे सदा ही होता रहेगा। मेरे कारण इन्हें पद-पद पर लांछित होना पड़े तो मेरे इस जीवन का मूल्य ही क्या है ? ऐसे जीवन से तो मर जाना अच्छा है। मैं घर के अन्दर परदे में नहीं बैठ सकती यही तो मेरा अपराध है न ; इसी के कारण तो लोग मेरे आचरण तक पर धब्बे लगाते हैं ? मैं लोगों से अच्छी तरह बोलती हूँ प्रेम का व्यवहार रखती हूँ यही तो मुझ में बुराई है न ? आज उन्हें मुझ पर क्रोध आया, उन्होंने तिरस्कार के साथ मुझे

झिड़क दिया। इसमें उनका कोई कसूर नहीं है। पत्थर के पाट पर भी रस्सी के रोज-रोज घिसने से निशान पड़ ही जाते हैं फिर वे तो देव-तुल्य पुरुष हैं। उनका हृदय तो कोमल है, इन अपवादों का अवसर कैसे न पड़ता ? रामचन्द्रजी सरीखे महापुरुष ने भी तो जरा-सी ही बात पर गर्भवती सीता को बनवास दे दिया था फिर ये तो साधारण मनुष्य ही हैं। इन्होंने तो जो कुछ कहा ठीक ही कहा; पर इसमें मेरा भी कौनसा दोष है ? किन्तु जब इन्हीं के हृदय में संदेह ने घर कर लिया तो मैं तो जीती हुई भी मरी से गई बीती हूँ। इसी प्रकार अनेक तरह के संकल्प विकल्प सोना के मस्तिष्क में आए और चले गए।

तीन दिन के बाद विश्वमोहन लौटे। जाने के पहिले उनमें और सोना में जो कुछ बातचीत हुई थी, वे प्राय: उसे भूलसे गये थे। सोना के लिए अच्छी सी साड़ी, एक जोड़ी पैरों के लिए सुन्दरसी स्लीपर और कुछ हेयर-क्लिप भी लिए हुए वे घर आये; किन्तु सामने चबूतरे पर उन्हें फैजू बैठा मिला। पास की हरी-हरी घास पर वह अपना तीतर चरा रहा था। विश्वमोहन उसे देखते ही तिलमिला उठे; सन्देह और भी गहरा हो गया। सारी बातें ज्यों की त्यों ताजी हो गईं। उनका हृदय बड़ा ही विचलित और व्यथित हुआ, न जाने कितनी प्रकार की शंकाएँ उन्हें व्याकुल करने लगीं। उनका चेहरा फिर गंभीर हो गया। घर आकर वे सोना से एक बात भी न कर सके। माँ से एक-दो बातें कर, बिना भोजन किये ही वह आफिस चले गये। सोना से यह उपेक्षा न सही गई। पिछले तीन दिनों से वह खिड़की-दरवाजे के पास भी न गई थी; और उसने यह निश्चय कर लिया था कि अब वह कभी भी खिड़की-दरवाजों के पास न जायगी। किन्तु विश्वमोहन की इस उपेक्षा ने उसके हृदय के घाव को और भी गहरा कर दिया। सोना अब इससे अधिक न सह सकती थी, अपनी जीवन-लीला समाप्त करने का उसे कोई साधन न मिला तब आंगन में लगे हुए धतूरे के पेड़ से उसने दो-तीन फल तोड़ लिए और पीसकर पी गई। कुछ ही क्षण

बाद सोना के पैर अकड़ने लगे, उसकी जबान ऐंठ गई और चेहरा काला पड़ गया। वह देखती थी; किन्तु बोल न सकती थी। इसी समय तिवारीजी आ पहुँचे, वे सोना को विदा कराने आये थे। सोना पिता को देखकर बहुत रोई, सारे घर में कुहराम मच गया और देखते ही देखते सोना के प्राणपखेरू उड़ गए। यह ऐसी नींद थी जिसने सोना को सदा के लिए शान्ति दे दी तथा अपवादों की विषैली वायु अब उसे छू भी न सकती थी।

शाम को छै बजे विश्वमोहन आफिस से घर लौटे। घर में आवाज सुनकर किसी अज्ञात आशंका से उनका हृदय विचलित हो उठा। घर में आकर देखा, तिवारीजी कन्या की लाश गोद में लिए डाढ़ें मार-मार के रो रहे हैं। तिवारीजी इस बीच कई बार कन्या को लेने आ चुके थे; किन्तु विश्वमोहन ने विदा न की थी। विश्वमोहन और तिवारी-जी में कोई विशेष बातचीत न हुई, अन्तिम संस्कार की तैयारी होने लगी।

अंतिम संस्कार के बाद जब विश्वमोहन लौटे तो मेज पर उन्हें सोना का पत्र मिला—

मेरे देवता ! मैं मर रही हूँ। किन्तु साथ ही विश्वास दिलाती हूँ कि मैं निर्दोष हूँ, मुझे ऐसा लगता है कि या तो यह दुनिया मेरे लायक नहीं है या मैं ही इस दुनिया के योग्य नही हूं। इस छल-कपट से परि-पूर्ण संसार में मुझे भेजकर शायद बिधाता ने भूल की थी। मुझे अपने मरने का अफसोस नहीं। कोई दुःख है तो केवल इस बात का कि मैं आपको कभी सुखी न कर सकी।

भगवती प्रसाद वाजपेयी

जन्म सम्वत् १९५६ वि०

सुमन जी कहते हैं कि आपकी कहानियों में जिन पात्रों तथा घटनाओं का चित्रण हमें मिलता है, उनमें हमें अपने समीपवर्ती समाज एवं परिस्थितियों की यथार्थता स्पष्ट परिलक्षित होती है। जीवन की यथार्थ अनुभूतियों से अणुप्राणित होकर ही उन्होंने अपनी कहानियों तथा उपन्यासों के पात्रों का सृजन किया है।

जीवन—आपका जन्म आश्विन शुक्ला सप्तमी सम्वत् १९५६ वि० मंगलपुर जिला कानपुर में हुआ। पिताजी अपढ़ कृषक थे और मामा जी संस्कृत भाषा के पंडित और कर्म-काण्ड के आचार्य थे। आपका शैशव इन्हीं की छत्रछाया में बीता। विधिवत् अध्ययन केवल मिडिल तक ही चला। तत्पश्चात् अँग्रेजी भाषा व साहित्य का ज्ञान अनियमित रूप से समय-समय पर ट्यूटरों द्वारा घर पर ही मिला। इसके अलावा जीवन की विविध धाराओं, स्थितियों और अनुभूतियों के द्वारा बहुत कुछ पाया। जीवन निर्वाह के लिए मंगलपुर के अपर प्राइमरी स्कूल का अध्यापक बनना पड़ा। इसके बाद कानपुर की होमरूल लीग की लायेब्रेरी तथा रीडिंग रूम में लाइब्रेरियन पद के कार्याधिकारी बने। यहीं पर १९१७ ई० में कविता लिखने की प्रेरणा मिली। तत्पश्चात् अनुभवों ने गद्यलेखन की ओर प्रेरित किया। लीग के टूटने पर स्वदेशी स्टोर की स्थापना पत्नी के आभूषणों को बेचकर की। चोरी ने वह सहारा भी तोड़ दिया। उदर के समाधान के लिए डिस्पेंसरी में कम्पाउन्डरी और प्रूफरीडरी की। इसके बाद परिस्थितियों ने साथ दिया 'संसार' के मुख्य सम्पादक बन गये। 'विक्रम' दैनिक और 'माधुरी' मासिक के सम्पादन विभाग में भी रहे। तदनन्तर चार वर्ष तक हिन्दी साहित्य सम्मेलन में सहायक मंत्री रहे। सत्रह वर्ष तक पुस्तक विक्रय का कार्य कर इधर सोलह वर्ष से स्वतंत्र रूप से लेखन कार्य में संलग्न हैं।

रचनाएँ—आपने लगभग चार सौ कहानियाँ, एक नाटक, दो कविता

संग्रह, पन्द्रह विविध विषयक अन्य छोटी-मोटी पुस्तकों के अतिरिक्त बीस के लगभग उपन्यास लिखे हैं। कथा संग्रहों में 'खाली बोतल', 'पुष्करणी' 'हिलोर', 'स्नेहबाती' और उपन्यासों में 'दो बहनें', 'यथार्थ से आगे' 'सूनी राह', 'पाषाण की लोच', 'गोमती के तट पर', 'गुप्तधन', 'चलते-चलते' 'पतवार', 'धरती की सांस', 'भूदान', 'विश्वास का बल' और 'दरार' और 'धुआँ' आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

भाषा-शैली—आपकी भाषा में सरलता, प्रवाह, मधुरता आदि अनेक गुण हैं। वह पात्रानुकूल है। वर्णन-शैली भी अत्यन्त प्रभावोंत्पादक है।

कहानी-साहित्य की विशेषता—आपकी कहानियों की कथा-वस्तु चाहे कितनी ही साधारण क्यों न हो, पर आप उसे कला से संवार कर असाधारण रूप प्रदान कर देते हैं ? कला का मेरु दण्ड मनोविज्ञान है। स्वाभाविकता आपकी कहानियों की प्रधान विशेषता है। पाठक की उत्सुकता जाग्रत बनाए रखने की आपमें अद्‌भुत क्षमता है। आपकी कहानियों का सार रहस्य और सौंदर्य प्रायः कहानी के अन्त में निहित रहता है। कहानी का अन्त आप बहुत ही कलात्मक ढंग से किया करते हैं। यहाँ पहुँच कर पाठक की समस्त जिज्ञासा में कौतूहल आदि शान्त हो जाती हैं। तभी आपकी कला का रहस्य भी समझ में आता है।

प्रस्तुत-कहानी—'मिठाई वाला' कहानी कला की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ कहानी है। इसमें मनोविज्ञान की पृष्ठ-भूमि पर चरित्र-चित्रण कला को मूर्तिमान करने की चेष्टा की है। इस पर पाश्चात्य व्यक्ति-वैचित्र्यवाद की हल्की सी छाप अंकित होने के कारण, यह अधिक प्रभावात्मक हो गयी है। इस कहानी का कथानक एक मिठाई वाले का चरित्र है। वह सम्पन्न व्यक्ति अपने मृत बच्चों की स्मृति का घाव अन्य बालकों को खिलौने, मुरली और मिठाई बेच कर भरता है। उसके वात्सल्य की भूख नन्हें-मुन्ने बच्चों से बोलने और प्यार करने से मिट जाती है। संक्षिप्त में यही कहानी का कथानक है।

भावात्मक चरित्र प्रधान

मिठाईवाला

****

भगवती प्रसाद वाजपेयी

बहुत ही मीठे स्वरों के साथ वह गलियों में घूमता हुआ कहता—"बच्चों को बहलाने वाला, खिलौने वाला, खिलौने वाला।" इस अधूरे वाक्य को वह ऐसे विचित्र, किन्तु मादक-मधुर ढंग से गाकर कहता कि सुनने वाले एक बार अस्थिर हो उठते। उसके स्नेहाभिषिक्त कंठ से फूटा हुआ उपयुक्त गान सुनकर निकट के मकानों में हल चल मच जाती। छोटे-छोटे बच्चों को अपनी गोद में लिए हुए युवतियाँ चिकों को उठा कर छज्जों पर से नीचे झाँकने लगतीं। गलियों और उनके अंतर्व्यापी छोटे-छोटे उद्यानों में खेलते और इठलाते हुए बच्चों का झुंड उसे घेर लेता, और तब वह खिलौने वाला वहीं कहीं बैठ कर खिलौने की पेटी खोल देता।

बच्चे खिलौने देखकर पुलकित हो उठते। वे पैसा लाकर खिलौनों का मोल भाव करने लगते। पूछते—"इछका दाम क्या है, औल इछका, और इछका?" खिलौने वाला बच्चों को देखता, और उनकी नन्हीं-नन्हीं उँगलियों और हथेलियों से पैसे ले लेता, और बच्चों की इच्छानुसार उन्हें खिलौने दे देता। खिलौने लेकर फिर बच्चे उछलने-कूदने लगते और तब फिर खिलौनेवाला उसी प्रकार गाकर कहता—"बच्चों को बहलाने वाला, खिलौनेवाला।" सागर की हिलोर की भाँति उसका यह मादक गान गली-घर के मकानों में, इस ओर से उस ओर तक, लहराता हुआ पहुँचता, और खिलौने वाला आगे बढ़ जाता।

राम विजय बहादुर के बच्चे भी एक दिन खिलौने लेकर घर आए।

वे दो बच्चे थे—चुन्नू और मुन्नू ! चुन्नू जब खिलौना ले आया तो बोला—"मेला घोला कैसा छुन्दल ऐ ?"

दोनों अपने हाथी-घोड़े लेकर घर-भर में उछलने लगे। इन बच्चों की माँ, रोहिणी कुछ देर तक खड़े-खड़े उनका खेल निरखती रही। अन्त में दोनों बच्चों को बुलाकर उसने पूछा—"अरे ओ चुन्नू-मून्नू ये खिलौने तुमने कितने में लिए हैं?"

मुन्नू बोला—"दो पैछे में। खिलौने वाला दे गया ऐ।"

रोहिणी सोचने लगी—इतने सस्ते कैसे दे गया है? कैसे दे गया है, यह तो वही जाने। लेकिन दे तो गया ही है, इसका तो निश्चय है।

एक जरा-सी बात ठहरी। रोहिणी अपने काम में लग गई। फिर कभी उसे इस पर विचार करने की आवश्यकता ही भला क्यों पड़ती ?

छः महीने बाद।

नगर-भर में दो ही चार दिनों में एक मुरली वाले के आने का समाचार फैल गया। लोग कहने लगे—"भाई वाह! मुरली बजाने में वह एक ही उस्ताद है। मुरली बजा कर; गाना सुनाकर वह मुरली बेचता भी है, सो भी दो-दो पैसे। भला, इसमें उसे क्या मिलता होगा ? मेहनत भी तो न आती होगी।"

एक व्यक्ति ने पूछ लिया—"कैसा है वह मुरलीवाला, मैंने तो उसे नहीं देखा?"

उत्तर मिला—"उम्र तो उसकी अभी अधिक न होगी, यही तीस बत्तीस का होगा। दुबला पतला गोरा युवक है; बीकानेरी रंगीन साफा बाँधता है।"

"वही तो नहीं; जो पहले खिलौने बेचा करता था?"

"क्या वह पहले खिलौने भी बेचता था?"

"हाँ, जो आकार-प्रकार तुमने बतलाया, उसी प्रकार का वह भी था।"

"तो वही होगा। पर भई है वह एक ही उस्ताद।"

प्रतिदिन इसी प्रकार उस मुरलीवाले की चर्चा होती। तुरन्त ही उसे खिलौनेवाले का स्मरण हो आया। उसने मन ही मन कहा—खिलौनेवाला भी इसी तरह गा-गाकर खिलौने बेचा करता था।

रोहिणी उठकर अपने पति विजय बाबू के पास गई—"जरा उस मुरली वाले को बुलाओ तो, चुन्नू-मुन्नू के लिये ले लूँ। क्या यह फिर इधर आए, न आए। वे भी, जान पड़ता है, पार्क में खेलने निकल गये हैं।"

विजय बाबू एक समाचार-पत्र पढ़ रहे थे। उसी तरह उसे लिए हुए वे दरवाजे पर आकर मुरली वाले से बोले—"क्यों भई, किस तरह देते हो मुरली?"

किसी की टोपी गली में गिर पड़ी। किसी का जूता पार्क में ही छूट गया, और किसी की सुथनी (पाजामा) ही ढीली होकर लटक आई। सब तरह दौड़ते-हांफते हुए बच्चों का झुंड आ पहुँचा। एक स्वर से सब बोल उठे—"अम बी लेंदे मुल्ली, और अम बी लेंदें मुल्ली।"

मुरली वाला हर्ष से-गद्-गद् हो उठा। बोला-"सब को देंगे भैया! लेकिन जरा रुको, जरा ठहरो, एक-एक को लेने दो। अभी इतनी जल्दी हम कहीं लौट थोड़े ही जाएँगे। बेचने तो आते हैं और हैं भी इस समय मेरे पास एक दो नहीं पूरी सत्तावन।......हां बाबू जी; क्या पूछा था आपने, कितने में दीं?......दीं तो वैसे तीन-तीन पैसे के हिसाब से है पर आपको दो-दो पैसे में ही दे दूँगा।"

विजय बाबू भीतर-बाहर दोनों रूपों में मुस्करा दिए। मन ही मन कहने लगे—कैसा ठग है! देता सबको इसी भाव से है, पर मुझ पर उलटा अहसान लाद रहा है। फिर बोले—"तुम लोगों को झूठ बोलने की आदत ही होती है। देते होगे सभी को दो-दो पैसे में, पर एहसान का बोझ मेरे ही ऊपर लाद रहे हो।

मुरली वाला एक दम अप्रतिभ हो उठा। बोला—"आपको क्या पता बाबू जी कि इनकी असली लागत क्या है? यह तो ग्राहकों का

दस्तूर होता है कि दूकानदार चाहे हानि ही उठा कर चीज बेचे, पर ग्राहक यही समझते हैं—दूकानदार मुझे लूट रहा है। आप भला काहे को विश्वास करेंगे। लेकिन सच पूछिये तो बाबू जी, असली दाम दो ही पैसा है। आप कहीं से भी दो-दो पैसे में ये मुरलियाँ नहीं पा सकते। मैंने तो पूरी एक हजार बनवाई थीं, तब मुझे इस भाव पड़ी हैं।"

विजय बाबू बोले—"अच्छा, अच्छा, मुझे ज्यादा वक्त नहीं, जल्दी से दो ठों निकाल दो।"

दो मुरलियाँ लेकर विजय बाबू फिर मकान के भीतर पहुँच गये।

मुरली वाला देर तक उन बच्चों के झुंड में मुरलियाँ बेचता रहा। उसके पास कई रंग की मुरलियाँ थीं। बच्चे जो रंग पसन्द करते, मुरली वाला उसी रंग की मुरली निकाल देता।

"यह बड़ी अच्छी मुरली है। तुम यही ले लो बाबू, राजा बाबू, तुम्हारे लायक तो बस यह है। हां, भैये, तुमको वही देंगे। ये लो।··· तुमको वैसी न चाहिए, ऐसी चाहिए, यह नारंगी रंग की, अच्छा, वही लो।·········पैसे नहीं है? अच्छा अम्मा से पैसे ले आओ। मैं अभी बैठा हूँ। तुम ले आए पैसे? अच्छा, ये लो, तुम्हारे लिए मैंने पहले ही से यह निकाल रखी थी।······तुमको पैसे नहीं मिले! तुमने अम्माँ से ठीक तरह माँगे न होंगे। धोती पकड़ कर पैरों में लिपट कर, अम्मा से पैसे मांगे जाते हैं बाबू! हाँ फिर जाओ। अब की बार मिल जाएंगे।······दुअन्नी है? तो क्या हुआ, ये लो पैसे वापस। ठीक हो गया न हिसाब?......मिल गये पैसे! देखो, मैंने कैसी तरकीब बताई! अच्छा, अब तो किसी को नहीं लेना है? सब ले चुके? तुम्हारी मां के पास पैसे नहीं? अच्छा तुम भी यह लो। अच्छा तो अब मैं चलता हूँ।"

इस तरह मुरली वाला फिर आगे बढ़ गया।

३

आज अपने मकान में बैठी हुई रोहिणी मुरली वाले की सारी बातें

सुनती रही। आज भी उसने अनुभव किया, बच्चों के साथ इतने प्यार से बात करने वाला फेरी वाला पहले कभी नहीं आया। फिर वह सौदा भी कैसा सस्ता बेचता है। भला आदमी जान पड़ता है। समय की बात है, जो बेचारा इस तरह मारा-मारा फिरता है। पेट जो न कराए, सो थोड़ा।

इसी समय मुरली वाले का क्षीण स्वर दूसरी निकट की गली से सुनाई पड़ा—"बच्चों को बहलाने वाला, मुरलिया वाला !"

रोहिणी इसे सुन कर मन ही मन कहने लगी—और स्वर कैसा मीठा है इसका।

बहुत दिनों तक रोहिणी को मुरली वाले का वह मीठा स्वर और उसकी बच्चों के प्रति वे स्नेहसिक्त बातें याद आती रहीं। महीने-के-महीने आए और चले गए। पर मुरली वाला न आया। धीरे-धीरे उसकी स्मृति भी क्षीण हो गयी।

४

आठ मास बाद—

सरदी के दिन थे। रोहिणी स्नान करके अपने मकान की छत पर चढ़कर आजानुबिलवित केश राशि सुखा रही थी। इसी समय नीचे की गली में सुनाई पड़ा—"बच्चों को बहलाने वाला, मिठाईवाला।"

मिठाई वाले का स्वर उसके लिए परिचित था, झट से रोहिणी नीचे उतर आई। उस समय उसके पति मकान में नहीं थे। हां, नीचे उनकी वृद्धा दादी थी। रोहिणी उनके निकट आ कर बोली—"दादी, चुन्नू-मुन्नू के लिए मिठाई लेनी है। जरा कमरे में चलकर ठहराओ तो। मैं इधर कैसे जाऊँ, कोई आता न हो। जरा हट कर मैं भी चिक की ओट में बैठी रहूँगी।"

दादी उठकर कमरे में आकर बोली—"ए मिठाई वाले, इधर आना।"

मिठाई वाला निकट आ गया। बोला—"कितनी मिठाई दूँ माँ ? ये नये तरह की मिठाइयाँ हैं—रंग-बिरंगी, कुछ-कुछ खट्टी कुछ-कुछ मीठी, जायकेदार बड़ी देर तक मुँह में टिकती हैं। जल्दी नहीं घुलतीं। बच्चे इन्हें बड़े चाव से चूसते हैं। इन गुणों के सिवा ये खांसी भी दूर करती हैं। कितनी दूँ ? चपटी, गोल पहलदार गोलियाँ हैं। पैसे की सोलह देता हूँ।"

दादी बोली—"सोलह तो बहुत कम होती हैं, भला पच्चीस तो देते।"

मिठाई वाला—"नहीं दादी, अधिक नहीं दे सकता। इतनी भी कैसे देता हूँ, यह अब मैं तुम्हें क्या............। खैर मैं अधिक न दे सकूंगा।"

रोहिणी दादी के पास ही थी। बोली—"दादी, फिर भी काफी सस्ता दे रहा है। चार पैसे की ले लो। ये पैसे रहे।"

मिठाई वाला मिठाइयाँ गिनने लगा।

"तो फिर चार पैसे की दे दो। अच्छा पच्चीस न सही बीस ही दो। अरे हाँ, माँ बूढ़ी हुई मोल-भाव अब भी मुझे ज्यादा करना आता भी नहीं।" कहते हुए दादी के पोपले मुँह की जरा-सी मुस्कराहट भी फूट निकली।

रोहिणी ने दादी से कहा—"दादी इससे पूछो, तुम इस शहर में और भी कभी आए थे या पहली बार आए हो। यहाँ के निवासी तो तुम हो नहीं।"

दादी ने इस कथन को दोहराने की चेष्टा की ही थी कि मिठाई वाले ने उत्तर दिया—"पहली बार नहीं और भी कई बार आ चुका हूँ।"

रोहिणी चिक की आड़ ही से बोली—"पहले यही मिठाई बेचते हुए आये थे, या और कोई चीज लेकर ?"

मिठाई वाला हर्ष, संशय और विस्मयादि भावों में डूबकर बोला—

"इससे पहले मुरली लेकर आया था और उससे भी पहले खिलौने लेकर।"

रोहिणी का अनुमान ठीक निकला। अब तो वह उससे और कुछ बातें पूछने के लिए अस्थिर ही उठी। वह बोली—"इन व्यवसायों में भला तुम्हें क्या मिलता होगा ?"

वह बोला—"मिलता भला क्या है ! यही, खाने भर को मिल जाता है। कभी नहीं भी मिलता है। पर हाँ, सन्तोष, धीरज और कभी-कभी असीम सुख जरूर मिलता है और यही मैं चाहता भी हूँ।"

"सो कैसे ! वह भी बताओ।"

"अब व्यर्थ उन बातों की क्यों चर्चा करूँ ? उन्हें आप जाने ही दें। उन बातों को सुनकर आपको दुःख ही होगा।"

"जब इतना बताया है, तब और भी बता दो। मैं बहुत उत्सुक हूँ। तुम्हारा हर्ज न होगा। मिठाई मैं और भी कुछ ले लूँगी।"

अतिशय गम्भीरता के साथ मिठाईवाले ने कहा—"मैं भी अपने नगर का एक प्रतिष्ठित आदमी था। मकान, व्यवसाय, गाड़ी-घोड़े, नौकर-चाकर, सभी कुछ था। स्त्री थी, छोटे-छोटे दो बच्चे भी थे। मेरा वह सोने का संसार था। बाहर सम्पत्ति का वैभव था, भीतर सांसारिक सुख था। स्त्री सुन्दरी थी, मेरा प्राण थी। बच्चे ऐसे सुन्दर थे, जैसे सोने के सजीव खिलौने ! उनकी अठखेलियों के मारे घर में कोलाहल मचा रहता था। समय की गति ! विधाता की लीला ! अब कोई नहीं है। दादी, प्राण निकाले नहीं निकले। इसलिए अपने उन बच्चों की खोज में निकला हूँ। वे सब अन्त में होंगे तो यहीं कहीं। आखिर, कहीं-न-कहीं जन्मे ही होंगे। उस तरह रहता, तो घुल-घुल कर मरता। इस तरह सुख-सन्तोष के साथ मरूँगा। इस तरह के जीवन में कभी-कभी अपने उन बच्चों की एक झलक सी मिल जाती है। ऐसा जान पड़ता है, जैसे वे इन्हीं में उछल-उछलकर हँस-खेल रहे हैं। पैसे की कमी थोड़े ही है, आपकी दया से पैसे तो काफी

हैं। जो नहीं है, इस तरह उसी को पा जाता हूँ।"

रोहिणी ने जब मिठाई वाले की ओर देखा—उसकी आंखें आँसुओं से तर हैं।

इसी समय चुन्नू-मुन्नू आ गए। रोहिणी से लिपटकर, उसका अंचल पकड़कर बोले—"अम्मा, मिठाई!"

"मुझ से लो।"—कहकर, तत्काल कागज की दो पुड़ियाँ, मिठाइयों से भरी, मिठाई वाले ने चुन्नू-मुन्नू को दे दीं।

रोहिणी ने भीतर से पैसे फेंक दिए।

मिठाई वाले ने पेटी उठाई, और कहा—"अब इस बार ये पैसे न लूँगा।"

दादी बोली—"अरे-अरे, न-न, अपने पैसे लिए जा भाई!"

तब तक आगे फिर सुनाई पड़ा उसी प्रकार मादक, मृदुल स्वर में—"बच्चों को बहलाने वाला, मिठाई वाला।"

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

जन्म-सन् १६१० ई० ।

आपकी लेखनी मध्यम वर्ग के पारिवारिक चित्र को अंकित करने और उनसे सम्बन्धित पात्रों की आन्तरिक पीड़ा को मार्मिक शब्दों में व्यक्त करने में जितनी सुन्दर उतरी है उतनी आधुनिक युग में किसी लेखक की नहीं ? अतः शीघ्र ही आपकी रचनाएँ अधिक लोकप्रिय हो गई और उनके अनेक भाषाओं में अनुवाद भी हुए ।

जीवन—आपका जन्म पंजाब के जालन्धर नगर में हुआ था । वहीं पर बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त कर उर्दू साहित्य की सेवा की । लाहौर में पत्र-कारिता के क्षेत्र में काम किया । उन्हीं दिनों हिन्दी में कहानियां और नाटक लिखने का चाव बढ़ा । उसमें सफलता मिली । आपकी सबसे पहली कहानी 'नारी' हिन्दी की पत्रिका माधुरी में छपी । इसके बाद अनेक पत्र पत्रिकाओं में स्थान मिलने लगा । सन् १६३६ ई० में आपकी पत्नी का 'यक्ष्मा' में देहान्त हो गया । परिणाम स्वरूप लाहौर छोड़कर अपने छोटे भाई के पास अबोहर चले गए । वहां से प्रीत नगर होते हुए आप १६४० में ऑल इन्डिया रेडियो दिल्ली में आ गए । सन् १६४६ में यहाँ से नौकरी छोड़कर फौजी अखबार के हिन्दी संस्करण के सम्पादक बने । मन नहीं लग सका । छः महीने के उपरांत ही वहां से फिल्मी दुनिया में चले गए । वहाँ भी अधिक दिन न रह सके । वहाँ से तपेदिक का रोगी बन कर पंचगनी जाना पड़ा । वहाँ पर लगभग पौने दो साल रहे । वहां से लौट कर इलाहाबाद को ही आवास स्थल चुना । आजकल आप 'नीलाभ प्रकाशन गृह' संस्था के संचालक हैं ।

रचनाएँ—आपकी लेखनी प्रतिभा सम्पन्न बहुमुखी है । नाटक उपन्यास, कहानी, एकांकी और कविताएँ आदि साहित्य के सभी अंगों पर कुछ न कुछ प्रकाश डाला है । नाटक और एकांकी साहित्य में 'कैदी

और उड़ान,' 'पर्दा उठाओ पर्दा गिराओ' 'चरवाहे' 'लक्ष्मी का स्वागत' आदि, कहानियों में 'सत्तर श्रेष्ठ कहानियाँ' 'प्रदीप,' 'पिंजरा' 'बरगद' की बेटी, 'पराग' आदि संग्रह और उपन्यास साहित्य में 'गर्म राख', 'गिरती दीवारें', बड़ी-बड़ी आँखे। 'पत्थर अल पत्थर, आदि बहुत लोकप्रिय हुए हैं।

भाषा-शैली—आपकी भाषा चलती, तीखी और मुहावरेदार एवं रोचक है। इसमें उर्दू, पंजाबी और अंग्रेजी के शब्द यत्र-तत्र दृष्टिगत होते हैं। आपकी शैली प्रेमचन्द्र जी की परम्परा से सम्बद्ध है। व्याख्यात्मक, प्रतीकात्मक शैली का आधिक्य है।

कहानी-साहित्य की विशेषता—आप की कहानियों में यह विशेषता है कि वह अपने पात्रों के साथ ही पाठकों को इस प्रकार सम रस कर देती है कि उन्हें अपनी सुध नहीं रहती वह अपनत्व भुला कर आपके द्वारा रचित संसार के चक्कर लगाने लगता है। यही कहानीकार का सबसे बड़ा गुण है।

प्रस्तुत-कहानी—'मां' में एक ऐसी नारी का चित्रण है जिसका पति निठल्ला और शराबी है। वह कंगाल होते हुए भी अपने बेटे की दूसरी शादी का ऋण लेकर इस आश्वासन पर विवाह करती है कि गौने के उपराँत आभूषण व दहेज की नकदी से ऋण चुकता कर देगी। पर वह दिन नहीं आता। लड़का जगत माँ को उसी दुविधा में छोड़ कर चला जाता है और वह बेचारी सम्मान की रक्षा करती है अफीम खाकर।

एक सामाजिक कहानी

माँ

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

ऐसे कठिन समय में माँ पर जो बीत रही थी, उसे दूसरा कौन जान सकता है? कितनी बार जगत की बात लगी, पर पण्डित जी की 'ख्याति' के कारण टूट गयी। एक तो सिरे ही से दूसरी शादी, फिर लड़के का पिता शराबी और जुआरी। कौन ऐसा कसाई बाप होगा जो अपनी लड़की को ऐसे 'शरीफ आदमी' के घर ब्याहना पसन्द करेगा? आम के पेड़ में आम लगते हैं और कड़ुवे नीम में निबौलियां। कौन कह सकता है, 'योग्य' पिता का पुत्र भी 'योग्य' न होगा? दुर्व्यसनों में फँसने के अवसर तो बहुत मिल जाते हैं। हाँ, बच निकलने के बहुत कम होते हैं। यही कारण था कि जब-जब नाई और पुरोहित के प्रयत्नों से जगत की सगाई हुई तो पण्डित जी की ख्याति के कारण टूट गयी और अब के जो सगाई हुई तो शादी का ही कोई डौल न था।

पण्डित जी को इस बात की चिन्ता हो, यह बात न थी। इस सम्बन्ध में उन्होंने कभी न सोचा था। उन्हें तो आठों पहर बोतल और लालपरी से काम था। कोई मरे चाहे जिये; लड़के की शादी हो या न हो; घर में सम्पन्नता हो अथवा विपन्नता; उनके लिए सब एक बराबर था। जब कभी तबियत होती, नशे में झूमकर अलाप उठते;

शामा, मेरे अवगुण चित न धरो।

और निश्चित हो जाते, जैसे उन्हें बिश्वास हो जाता कि सर्वशक्तिमान् ने उनके सब गुनाह माफ कर दिये हैं।

यह सब तो था, पर यदि गाड़ी के दोनों पहिये बिगड़ जायँ तो वह चले ही कैसे ? पिता अपने कर्त्तव्य को भूला हुआ था, माँ उसे यथा-शक्ति पूरा किये जा रही थी। यही कारण था कि किसी तरह सब काम चल रहा था। अन्दर से हालत चाहे कितनी ही बुरी हो गयी हो, पर बाहर से साख बनी हुई थी।

जगत अपने माँ-बाप का इकलौता लड़का था —नूरमहल के एक हाईस्कूल में साधारण टीचर। पण्डित जी ने नौकरी के दिनों में कुछ जमा न किया था, प्रावीडेन्ट फण्ड तो शराब की नजर हो गया और जो एक-दो गहने थे, वे धीरे-धीरे जगत की पत्नी की बीमारी में चौधराइन के यहाँ गिरवी रखे जाने लगे। उधर गहने खत्म हुए, इधर उसकी जीवन-लीला समाप्त हो गयी। अब इस विवाह के लिए क्या किया जाय, कहाँ से गहने लाये जायँ, इसी बात की चिन्ता माँ को खाये जा रही थी।

इस अन्धकार में जगत की माँ को केवल एक ओर से प्रकाश की किरण दिखायी देती थी। उसके मायके में ऐसी दरिद्रता न थी। उसके पिता धनी-मानी और सम्पन्न व्यक्ति थे। जगत के पहले विवाह पर उन्होंने हाथ का एक आभूषण और मूल्यवान वस्त्र दिये थे। कोई पाँच-छः सौ की चीज़ रही होगी। उसे आशा थी कि इस बार भी उसके पिता कुछ-न-कुछ अवश्य देंगे। पाँच-छः सौ न सही, तीन-चार सौ ही सही। मगर इन तीन-चार सौ में क्या बनेगा ? गहने-कपड़े, लाग-विहार, मिठाई-शीरीनी, शादी में क्या-क्या न चाहिए ? गुड्डे-गुड़िया के विवाह में भी सौ व्यवस्थाएँ करनी पड़ती हैं, फिर यह तो स्त्री-पुरुष का विवाह था। सोचती—यदि इस बार भी विवाह न हो सका तो क्या होगा ? सब आशाओं पर पानी फिर जायगा। उस समय उसे पण्डितजी के व्यवहार पर दुख होता था, किन्तु पुराने विचारों की हिन्दू नारी थी, शिकायत का एक शब्द भी ओठों पर लाना पाप समझती थी, कष्ट सहती थी, दुख झेलती थी, पर जबान न हिलाती थी।

रात का तीसरा पहर था, सारी दुनिया मीठी नींद में सो रही थी, किन्तु जगत की माँ को नींद कहाँ ? उसकी नींद तो विपदा में सौभाग्य-सी विलुप्त थी। पिंजरे के पट बन्द थे, पर नींद के पक्षी उड़ गये थे।

विवाह होने में केवल बीस दिन रह गये थे और गहनों का अभी तक कोई भी प्रबन्ध न हुआ था। रुपये होते तो चौधराइन ही से पहले छुड़ा लेती, किन्तु और रुपये कहाँ से आते ? कोई युक्ति सूझ न रही थी। इसी सोच में रात बीत गयी। अँधेरा कुछ-कुछ छट गया। मुहल्ले के कुएँ में किसी ने गागर डुबोयी। प्रातःकाल पानी भरने वालों का आगमन आरम्भ हो गया था। सामने के घर से चक्की चलने के साथ-साथ किसी के गाने का आर्द्र स्वर वायुमण्डल में गूँज उठा। शायद विधवा कंसो प्रातः उठकर अपने काम में लग गयी थी। दूर कहीं मुसलमानों के मुहल्ले में मुर्ग ने आजान दी। माँ उठी और फिर जैसा उसका नित्य का क्रम हो गया था, अन्दर कमरे में गयी, ट्रंक खोलकर उसने उसमें से छोटा-सा डिब्बा निकाला और एक-एक चीज बाहर निकालकर देखने लगी। था ही क्या ? चाँदी के लच्छे और ढोल था; सोने की दो अँगूठियाँ थीं; पुराने फैशन की एक माला और छः माशे का एक सौकनमोहरा* था। शादी दूसरी थी, इसलिए एक अँगूठी तुड़वाकर सौकनमोहरा बनवा लिया था। भारी गहने तो सब चौधराइन के यहाँ गिरवी रखे थे। एक दीर्घ-निश्वास छोड़ते हुए उसने इन सबको डिब्बे में बन्द किया, डिब्बे को ट्रंक में रखा और ताला लगा दिया। फिर वहीं सिर को घुटनों पर रखकर सोचने लगी। कई दिनों से वह प्रतिदिन ऐसा ही करती आ रहती थी—सुबह उठकर गहनों को निकालकर गिनती, फिर वहीं बैठकर सोचती, किन्तु कोई उपाय समझ में न आता। आज उसे अचानक एक बात सूझ गयी। साथ ही उसके शरीर में स्फूर्ति

---

*सौकनमोहरा—यह सोने का एक पत्र होता है, जिस पर पहली पत्नी का नाम खुदा होता है। दूसरी शादी के समय यह नयी पत्नी के गले में पहनाया जाता है।

की एक लहर दौड़ गयी। वह तत्काल उठी। घर में झाड़ू-बुहारी देकर पूजा करने बैठी। सच्चे दिल से उसने भगवान से प्रार्थना की कि इस बार उसे असफलता का मुँह देखना न पड़े। फिर वह चौधराइन के घर की ओर चल दी।

चौधराइन का घर समीप ही था। जगत की माँ तेजी से जा रही थी। उसने जल्दी-जल्दी दहलीज पार की, किन्तु निचले आँगन में जाकर रुक गयी। ऊपर जाय कि न जाय? उसकी दाहिनी आँख फड़कने लगी। मन में सन्देह-सा उत्पन्न हो उठा। उसके कान में जैसे किसी ने कहा—आज काम न बनेगा। उसने चाहा, मुड़ जाय। पर मुड़कर जाय कहाँ? विवश हो आगे बढ़ी। धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर पहुँची। मालूम हुआ, चौधराइन अभी सो रही है। वह दहलीज पर ही एक ओर होकर बैठ गयी।

कोई एक घण्टे के बाद जब चौधराइन की नींद टूटी तो एक हल्की सी मुस्कराहट के बाद उसने जगत की माँ से उसके आने का कारण पूछा।

जगत की माँ चुप-सी हो गयी। यहाँ कहने के लिए घर से जो कुछ सोचकर आयी थी वह सब भूल गया। कह सकी तो मुश्किल से इतना ही—"जगत के विवाह में केवल बीस दिन रह गये हैं।"

चौधराइन फिर मुस्करायी—"बधाई हो! मैं तो उधर आ ही नहीं सकी।" फिर लम्बी साँस खींचकर बोली, "यह कमर का निगोड़ा दर्द कुछ ऐसा चिमटा है कि कहीं जाने ही नहीं देता। मैं तो स्वयं बधाई देने के लिए जाना चाहती थी।"

"आपको ही बधाई है!" जगत की माँ ने धीमे स्वर से कहा।

चौधराइन सहानुभूति दिखाती हुई बोली, "भगवान करे, फिर घर बस जाय! बेचारा उदास रहता है। मैं तो जब देखती हूँ, जी मसोसकर रह जाती हूँ। इस बार कहाँ बात लगी है?"

जगत की माँ ने उत्साहित होकर कहा, "नकोदर में रिश्ता हुआ है,

पर विवाह हो सकेगा, इसका कोई ठिकाना नहीं। उनकी आदत तो आप जानती ही हैं—और पैसे के बिना कुछ होता नहीं।"

जब चौधराइन ने कुछ शंकित नेत्रों से उसकी ओर देखा।

जगत की माँ कहती गयी, मैं आपको तीन सौ रुपया दे दूँगी। आप मुझे कृपा कर मेरे सब गहने दे दें। इस बात का वचन देती हूँ कि गौने के बाद सब गहने आपके पास फिर रख जाऊँगी।"

चौधराइन ने बेरुखी से कहा—"मैं सोचकर उत्तर दे सकूँगी। शाम को रिखीराम आ जायगा, तब उससे सलाह करके तुम्हें बताऊँगी। आपकी ओर पिछले तीन महीने का सूद भी तो है।"

"वह भी मैं तीन सौ के साथ ही दे दूँगी।" जगत की माँ ने कहा। लेकिन चौधराइन ने वह नहीं सुना। उस समय तक वह उठकर अन्दर जा चुकी थी। जगत की माँ चुपचाप सीढ़ियाँ उतर आयी और फिर आकर धम्म से फर्श पर बैठ गयी। उसे ऐसा मालूम हुआ, जैसे मुसीबतों का अँधेरा पहले से कई गुना गहरा हो गया है। उसने दुपट्टे से मुँह छिपा लिया और रोने लगी। उस समय पण्डित जी ने बैठक से तान लगायी।

शामा, मेरे अवगुण चित न धरो।

o

शाम को चौधराइन का जवाब आ गया। वही जिसकी सम्भावना थी। माँ ने शान्ति से उसे सुना और फिर अपने काम में लग गयी। उसकी आँखें एक बार भर आयीं, किन्तु उसने उन्हें पोंछ डाला। यदि आँसू बहाने से ही विवाह हो जाता तो आज तक जितने आँसू उसने बहाये थे, उनसे मुहल्ले भर के लड़कों की शादियाँ हो जातीं।

जगत की माँ एक असाधारण प्रकृति की स्त्री थी। वह न होती तो घर कब का चौपट हो गया होता और पण्डित जी या तो यमुना के किनारे धूनी रमा लेते या जेल की रोटियाँ तोड़ते। कई बार अवसर

पड़ने पर जगत की माँ उनके आड़े आयी थी। कई बार उसने उनके लिए रुपये का प्रबन्ध किया था। साहस और हिम्मत की वह मूर्ति थी। उसने जगत को एक पत्र लिखवाया कि छुट्टी लेकर आ जाय और स्वयं अपने मैके को रवाना हो गयी।

होशियारपुर में उसका मैका था। उसके पिता के पास धन का अभाव न था। वे चाहते तो एक छोड़ बीस शादियों का आयोजन कर देते। किन्तु उन्होंने पुरोहिताई से रुपया कमाया था, पैसा-पैसा करके पेट काट-काटकर धन एकत्र किया था। वे कंजूस थे और उन्हें पैसे की जुदाई बहुत अखरती थी। फिर सब से बढ़कर यह बात थी कि उनकी पत्नी दूसरी थी। सौतेली माँ की उपस्थिति में जगत की माँ को कुछ अधिक मिलने की उम्मीद न थी, फिर भी वह सब ओर से निराश होकर वहीं जा रही थी। किनारा कितना भी चिकना क्यों न हो, उस पर सहारा देने की कोई वस्तु हो या न हो, किन्तु और कोई आश्रय न पाकर डूबता हुआ व्यक्ति उसे ही पकड़ने के लिए हाथ-पाँव मारता है। वहाँ पहुँची तब उसकी सौतेली माँ ने अड़चन डाल दी। बहुत कुछ रगड़-झगड़ के बाद जगत की माँ चार सौ रुपया पा सकी। वहाँ से चली तब भविष्य की चिन्ताओं ने उसे घेर लिया। जैसे क्षुधातुर व्यक्ति रोटी का एक टुकड़ा पाने पर भूख से और भी व्याकुल हो उठता है, उसी तरह जगत की माँ इन चार सौ रुपयों को पाकर और भी चिन्तित हो उठी थी। अब उसका मस्तिष्क किसी-न-किसी तरह इन्हीं से काम निबटाने की तरकीब सोच रहा था। चौधराइन के व्यवहार ने उसके हृदय में अलग आग सुलगा दी थी। उसके यहाँ वह अपना एक भी आभूषण न रखना चाहती थी।

o

घर पहुँचते ही उसने एक सौ रुपया तो मिठाई इत्यादि के लिए रख लिया और शेष तीन सौ लेकर बीबी अमरकौर के पास पहुँची ताकि

उससे कुछ और रुपया लेकर चौधराइन से गहने ले ले और उन्हें अमरकौर के पास रख दे। इस बात में तो अमरकौर को कोई आपत्ति न हो सकती थी। लेकिन जगत की माँ चाहती थी रुपये तो उससे ले ले, पर गहने गौने के बाद दे, और इस बात पर अमरकौर का राजी होना जरा मुश्किल था। कारोबार के मामले में वह भी कम सख्त न थी। पर जगत की माँ घर से निश्चय करके निकली थी कि जैसे भी होगा, उसे मना ही लेगी। अमरकौर के दिल में अभी दया का सर्वथा लोप न हुआ था, इसलिए जगत की माँ के बहुत अनुनय-विनय करने पर वह मान गयी। उसने इस शर्त पर रुपया दे दिया कि गौने के बाद उसे गहने मिल जायँ। अमरकौर से रुपया लेकर जगत की माँ ने चौधराइन से सब गहने ले लिये और खुशी-खुशी शादी की दूसरी तैयारियाँ करने लगी। संध्या को जब जगत नूरमहल से आया तो उसने देखा, माँ का चेहरा खिला हुआ है।

०

निश्चित तारीख को मुहल्ले की स्त्रियों के सुहावने गीतों में, बाजे-गाजे के साथ बारात रवाना हुई। जगत की माँ ने शेष सब प्रबन्ध कैसे किया, यह न पूछिए। अपने पुत्र का घर बसाने के लिए वह घर-घर फिरी। अपने स्वाभिमान को भी उसने कुछ दिनों के लिए भुला दिया और किसी से बीस, किसी से तीस लेकर काम चलता किया। उसे आशा थी कि दहेज में कुछ-न-कुछ जेवर अवश्य मिलेगा और सौ-डेढ़ सौ न सही, इक्यावन रुपये तो बिदा में अवश्य दिये जायँगे। इनसे छोटी-मोटी रकमें उतर जायँगी। अमरकौर से जिन गहनों के बदले रुपया लायी है, वे उसे पहुँचा देगी। इस तरह सुगमता से सब काम हो जायगा।

तीसरे दिन बारात आ गयी। खुशी-खुशी जगत की माँ बहू को लेने गयी। पण्डित जी के सम्बन्ध में पूछा तो मालूम हुआ कि शराबखाने में औंधे मुँह पड़े हुए हैं।

विवाह के गीतगाते-गाते मुहल्ले की स्त्रियाँ बहू को घर लायीं। सब रस्में भली-भाँति अदा की गयीं। दहेज का सामान नीचे बैठक में रख दिया गया। बहू का सुन्दर मुखड़ा देखकर सब के दिल खिल गये। कोई कहती—जगत पहले जन्म में मोतियों का दान करके आया है; कोई कहती—चाँद का टुकड़ा ब्याह लाया है। छोटी-छोटी लड़कियाँ बहू का मुँह देखने के लिए टूटी पड़ती थीं। घर में खूब चहल-पहल थी, किन्तु जगत की माँ इन सब से अलग एक कोने में एक व्यक्ति से धीरे-धीरे कुछ पूछ रही थी।

"तो क्या आपको कुछ भी मालूम नहीं ?"

"कुछ भी नहीं, जरा भी नहीं, मुझे किसी ने पता भी नहीं चलने दिया।"

"आप अगुआ थे।"

"वहाँ मुझे कौन पूछता था? अगुआ तो वहाँ मास्टर जी थे। मैं तो जैसे उनके हाथ की पुतली था।"

"तो क्या आपको बिदा की भेंट का भी पता नहीं ? मिली भी या नहीं मिली ?"

"मैं कहता हूँ, मुझे बिलकुल पता नहीं चाननराम वहाँ था ही कौन। सब कुछ तो मास्टर जी करते थे। मुझ तक तो किसी बात की गन्ध तक भी नहीं आयी।"

माँ निराशा से सिर हिलाकर फिर काम में लग गयी। जिस आशा के आधार पर आज तक सब कुछ करती आयी थी, वह आधार ही छिन गया। उल्लास की जगह फिर विषाद ने ले ली। अन्तर में दुख का पारावार छिपाये वह सब काम करने लगी। पण्डित जी की मद्यपता के कारण उसने चाननराम के हाथ में ही विवाह का सब काम सौंप दिया था। वे जगत के सगे चचा तो न थे, पर जगत की माँ को उन पर पूरा भरोसा था। पर वहाँ उनको किसी ने पूछा भी नहीं ? वहाँ

जगत के एक मित्र, जो मास्टर जी कहलाते थे, सब बातों के कर्ता-धर्ता थे। आपस में गुप-चुप सब बातें होतीं और चचा चाननराम के बिना पूछे ही सब कुछ तय हो जाता। मास्टर जी लड़की वालों से इस तरह घुल-मिल गये थे, जैसे उन्हीं में से एक हों। इधर लड़के वालों की ओर से भी सब कुछ वही करते। दहेज का दिखावा ही उन्होंने बन्द करा दिया। हाँ, इधर से सब गहने भिजवा दिये। पण्डित जी शादी के प्रबन्ध में चाहे कुछ भाग न ले सकते हों, पर उसकी खुशी में वे किसी से पीछे न रहना चाहते थे, इसलिए उन दिनों उन्हें अपने तन-बदन का भी होश न था। सुबह पीते, दोपहर पीते, शाम पीते। उधर से क्या मिला, बिदा में कितने रुपये रखे गये ? इन बातों का किसी को भी पता न लग सका और चचा चाननराम अगुआ होने का चाव दिल में लिये हुए ही वापस आ गये।

जगत की माँ प्रकट रूप में सब काम पूर्ववत् कर रही थी। परन्तु उसका मस्तिष्क और मन तो कहीं और ही थे, हाँ, हाथ-पाँव अवश्य चलते हुए नजर आते थे। यत्न से उसने आशा का जो दुर्ग बनाया था, वह उसे ढहता हुआ प्रतीत हो रहा था। नींव हिल गयी थी ; दीवारों में दरारें आ गयी थीं ; अब गिरा कि तब गिरा। चेतनाहीन-सी, संज्ञाहीन-सी वह सब काम कर रही थी। दो बार उसके हाथ से मिठाई की तश्तरी गिर पड़ी, छाछ पीने लगी तो दुपट्टे में ही गिरती गयी। वह जाग रही थी या सो रही थी, उसे कुछ भी मालूम न था।

संध्या को जब जगत ऊपर आया तब एकान्त में माँ ने सब कुछ पूछने का यत्न किया। किन्तु जगत ने साफ तौर पर कुछ भी उत्तर नहीं दिया। पूछा, "गहने कौन-कौन मिले ?" कहा, "उसके पास हैं, जाकर देख लो।" पूछा, बिदा में क्या रखा गया ?" कहा, "मास्टर जी जानें या चचा चाननराम।" और यह कहकर वह अन्दर कमरे में चला गया।

माँ वहीं खड़ी-की-खड़ी रह गयी, और फिर सिर को दोनों हाथों से थामकर वहीं बैठ गयी।

०

दूसरी सुबह बहू को अपने मैके जाना था। गौना यद्यपि साथ ही दे दिया गया था, पर प्रथा के अनुसार दुल्हन का एक बार अपने माता-पिता के घर जाना आवश्यक था। रात को माँ ने एक-दो बार नीचे बैठक में आकर दहेज का सामान देखने की कोशिश की, पर हर बार मास्टर जी यम के दूत की भाँति दरवाजे में बैठे दिखायी दिये। अपमान और तिरस्कार से वह जल उठी। सारी रात उसने छत पर घूम-घूमकर बिता दी और जब दिन चढ़ा तो उसमें हिलने तक की शक्ति न थी। सारी रात वह पण्डित जी की राह देखती रही थी, पर वे न आये थे। चचा चाननराम को भी उसने दो बार बुलवा भेजा था, पर वे तो विवाह से आने के बाद ऐसे भागे कि फिर सूरत ही न दिखायी। उस समय जगत की माँ अपने आपको सर्वथा असहाय और बेबस महसूस कर रही थी।

विद्युत्-वेग से सब तैयारियाँ हो गयीं। सब कुछ तो पहले से ही तय था। जगत की माँ को कुछ सुझाई न दे रहा था। उसका अंग-अंग शिथिल हो रहा था। फिर भी मशीन की भाँति वह सब काम किये जा रही थी। दूसरी स्त्रियों के साथ वह भी दुल्हन को ताँगे पर चढ़ाने गयी। उसने देखा, वह बड़ा-सा ट्रंक जिसमें दहेज का सब सामान, गहने-कपड़े रखे थे, ताँगे पर रखा हुआ है। उसे एक वस्त्र तक देखना नसीब न हुआ।

जब ताँगा चलने लगा तो जगत की माँ ने अपना सारा साहस बटोरकर कहा, "कल ही गौना ले आना, इस अवसर पर ससुराल में अधिक नहीं अटका करते।"

वेपरवाही से जगत ने उत्तर दिया, "मैं इधर न आ सकूँगा। मेरी

छुट्टी खत्म हो गयी है। मुझे वहाँ से सीधे नौकरी पर जाना है। वहीं से सीधा नूरमहल चला जाऊँगा।"

ताँगा चल पड़ा। मास्टर जी ने धीरे से कहा, "शुक्र है यह झंझट खत्म हुआ। भई! रोगी का खाया, शराबी का कमाया एक बराबर होता है। हम तो तुम्हारे लाभ की ही बात कहेंगे। एक-दो बच्चे हो गये तो फिर क्या करोगे? शराबी के घर में इन गहनों की क्या बिसात है?"

माँ खड़ी-की-खड़ी रह गयी, जैसे उसकी समस्त शक्तियाँ शिथिल हो गयी हों। उसकी आँखों के आगे जैसे अँधेरा छा गया। वह देर तक वहीं खड़ी रही। जब ताँगा दृष्टि से ओझल हो गया तब चुपचाप चली आयी। एक आह भी उसने नहीं भरी, एक निश्वास भी उसने नहीं छोड़ा, जैसे प्राणों से भी प्रिय पुत्र की कृतघ्नता ने उसकी वेदना का गला घोंट दिया हो। बैठक में एक हल्का-सा कौच का सेट रखा हुआ था। कोई बीस रुपये का होगा। बस, इतने परिश्रम के बाद उसे यही देखने को मिला। उस समय उसे महसूस हुआ, जैसे विपत्तियों के अथाह सागर में वह एकाकी गोते खाने के लिए छोड़ दी गयी हो। जगत वापस न आयगा। वह अमरकौर को कौन से गहने देगी; नेगियों का नेग कैसे देगी; मुहल्ले वालों को छोटी-छोटी रकमें कैसे भुगतायेगी; जब ये सब उससे तकाजा करेंगे तो वह क्या उत्तर देगी? जो कुछ आज तक नहीं हुआ वह अब होकर रहेगा। उसे कितना अपमानित होना पड़ेगा। उसने अमरकौर से कहा था—"हाथ की पाँचों अँगुलियां बराबर नहीं होतीं; संसार में दयानतदारी का खात्मा नहीं हो गया।" अब वह उसे कैसे मुँह दिखायगी? इस बेशरमी से तो मौत अच्छी। माँ की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। सहसा उसे एक खयाल आया। पण्डित जी की अलमारी में अफीम की एक डिबिया रखी रहती थी जब शराब के लिए पैसे न होते, वे अफीम से ही काम चला लेते थे। उसने बढ़कर डिबिया उठा ली। उसे खोला, खिल उठी, जैसे विष नहीं, जीवनामृत मिल गया

हो। एक बार ही सारी-की-सारी अफीम डिबिया से निकालकर उसने मुँह में रख ली और कौच में धँस गयी। जीवन के सब दुख सारी विपत्तियाँ, समस्त हारें एक-एक करके उसकी आँखों के सामने घूमने लगीं। एक विचित्र प्रकार की तन्द्रा उसकी आँखों पर छाने लगी। उस समय बाहर से गाने की आवाज़ आयी—वही चिर-परिचित, जानी पहचानी, सुरीली तान—

शामा, मेरे अवगुण चित न धरो।

और दूसरे क्षण बगल में पगड़ी दबाये झूमते-झामते पण्डित जी बैठक में दाखिल हुए।

विष्णु प्रभाकर

जन्म सन् १९१२ ई०

किसी पत्रकार का कहना है कि विष्णु प्रभाकर कहानीकार के साथ ही नाटककार होने के कारण उनके मनोवैज्ञानिक कथानक और चुटकीले कथोपकथन भी कहानियों को अधिक प्रभावोत्पादक बनाते हैं। कहानियों में आदर्श तथा यथार्थ का अनोखा सम्मिश्रण उन्हें अपनी पीढ़ी के अग्रणी कहानीकारों में ले आया है।

जीवन—आपका जन्म मुजफ्फर नगर जिले के मीरापुरा कस्बे में हुआ था। बचपन से पढ़ने लिखने का स्वभाव था। व्यथा और स्नेह को पास से देखा। आर्य-समाज का भौतिक संसार में गहरा सम्पर्क मिला और युवावस्था बीती पंजाब की सुन्दर नगरी लाहौर में। वहीं के एक पत्र 'अलंकार' में सन् १९३४ ई० में 'स्नेह' कहानी छपी। वास्तव में यहीं से आपका साहित्यिक जीवन आरम्भ हुआ। आरम्भ में आपकी रुचि लेख, गद्य-काव्य और कविताओं में रही पर शीघ्र ही उसमें परिवर्तन आ गया और कहानियाँ लिखनी शुरू कर दीं। वह 'हंस' और 'माधुरी' आदि पत्रिकाओं में छपती रहीं। सन् १९३९ ई० में नाटक और रेखा चित्रों की ओर भी लेखनी चली। उनमें सफलता भी मिली। सन् १९४४ ई० में १५ वर्ष की सरकारी नौकरी से त्याग पत्र देकर पूर्ण रूप से साहित्य क्षेत्र में उतर आये और कई वर्ष तक इसी के द्वारा उदर पूर्ति की गई। विभाजन के उपरान्त सन् १९४८ ई० में रेडियो का सम्पर्क मिला और शीघ्र ही रेडियो नाटक लेखक के रूप में प्रसिद्ध हो गए। फलस्वरूप सन् १९५६ में आपको आकाशवाणी, नई दिल्ली में ड्रामा प्रोड्यूसर नियुक्त किया गया; किन्तु डेढ़ वर्ष बाद त्यागपत्र

देकर आपने फिर से स्वतन्त्र लेखन कार्य अपना लिया है। आप विदेश यात्रा भी कर आये हैं।

रचनाएँ—आपने कहानियां और नाटकों के अतिरिक्त कई उपन्यास भी लिखे हैं। आपकी रचनाओं का प्रान्तीय और विदेशी भाषाओं में भी अनुवाद होता रहता है तथा कई रचनाएँ विभिन्न सरकारों और संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत हो चुकी हैं। 'निशिकान्त', 'तट के बन्धन', 'स्वप्नमयी', 'नवप्रभात', 'समाधि', 'डाक्टर', 'इन्सान', 'होरी', 'क्या वह दोषी था', 'रीढ़ की हड्डी', 'चन्द्रहास', 'प्रकाश और परछांई', 'दस बजे रात', 'आदि और अन्त', 'रहमान का बेटा' 'संघर्ष के बाद', 'धरती अब भी घूम रही है', 'जिन्दगी के थपेड़े' आदि रचनाएँ अधिक लोकप्रिय हो चुकी हैं।

भाषा-शैली—भाषा सरल और मुहावरेदार है। भिन्न-भिन्न कहानियों में भिन्न-भिन्न शैलियों को स्थान मिला है यानी शैली रोचक रही है। दोनों ही दृष्टि से कहानियाँ सुन्दर बन पड़ी हैं।

कहानी साहित्य की विशेषता—मानव मन की गहराइयों का विशिष्ट चित्रण, नया भारतीय जीवन, नयी सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों का कलात्मक निरूपण, मनोवैज्ञानिक कथानक ही आपके कहानी साहित्य की विशेषता है।

प्रस्तुत-कहानी—'स्नेह' एक भावात्मक कहानी है। इस का कथानक विचित्रता को लिए हुए है। उमा अपने पुत्र का त्याग कर एक अनाथ बालक पर स्नेह का स्रोत बहाने को तैयार हो जाती है। यही नारी के वात्सल्य की चरम सीमा है जिसका दिग्दर्शन इस कथानक में हुआ है।

स्नेह

विष्णु प्रभाकर

उमा स्नान करके पूजा की कोठरी की ओर जा रही थी। उसने देखा : शशि की कोठरी में से दो आँखें बड़ी उत्सुकता से उसकी ओर ताक रही हैं। उससे रहा न गया। वह वहां जाकर बोली, "क्या कहते हो, शशि ?"

शशि काँप उठा। बोला नहीं।

उमा ने फिर कहा, "बच्चे ! हम आ गये हैं। क्या कहते हो ?"

शशि फिर भी नहीं बोला। उसने केवल उमा की ओर देख भर लिया। उसकी आँखों में पानी उमड़ आया था।

उमा कातर हुई। उसने कहा, "तुम रोते हो ! क्यों बच्चे ?" इस बार शशि बोला, "चाची ! तुम चली जाओ, नहीं तो ताई आकर मुझे मारेगी।"

"क्यों मारेगी।,'

"यह तो मैं नहीं जानता"—शशि ने भोलेपन से कहा, "पर ताई मुझे किसी से बातें करते देख लेती हैं तो मारा करती हैं।"

"हमारे साथ बात करते देखकर वे नहीं मारेंगी। आओ तुम हमारे साथ चलो।"

"नहीं, चाची। हम हाथ जोड़ते हैं। तुम चली जाओ। ताई आती होगी।"

शशि की आँखें फिर भर आईं। उमा सहसा कुछ न कह सकी।

उसका हृदय शशि के लिए व्याकुल हो उठा। वह अभी इस नये घर में बहू बनकर आई है। वह न शशि को समझ पाती है, न अपनी विधवा जेठानी निरुपमा को। जिस दिन उसने सुसराल में पैर रखा था उसी दिन निरुपमा ने उसे समझा दिया था, "बहू-रानी ! इस अभागे बालक को मुँह न लगाना।" उमा ने सोचा था यह बालक अवश्य शैतान होगा। परन्तु इन चार दिनों में ही उसे मालूम हो गया, बालक शैतान नहीं है। उसका एक मात्र अपराध यही है कि वह बिना माँ-बाप का है।

यह भी क्या अपराध है--उमा वहीं खड़ी-खड़ी सोचती रही।

और उधर पूजाघर में उमा को न पाकर निरुपमा वहीं आ गई। उसने उमा को शशि की कोठरी के पास खड़े देखा। वह चिल्ला उठी, "जो जान बूझकर सांप के मुँह में अंगुली डाले उसे कौन बचा सकता है ? बहूरानी ! मैं अब भी कहती हूँ, तुम शशि को मुँह न लगाओ।"

उमा चौंककर बोली, "मैंने क्या किया जीजी ?"

"तुम शशि के कमरे में क्यों गई थीं",—निरुपमा ने शासन के स्वर में पूछा।

उमा काँप कांप आई। उसने इतना ही कहा, "जीजी ! तुम इस बालक से इतनी नाराज क्यों हो ?"

निरुपमा उसी तरह बोली, "नाराज क्यों हूँ, यह जानना चाहती हो ? अरे बहू ! इस राक्षस ने पैदा होते ही अपने माँ-बाप को खा डाला है। तनिक बड़ा होते ही अपने ताऊ को भी यह निगल गया, और तुम पूछती हो इसका अपराध क्या है ?"

और उसने झपटकर बालक को कमरे से बाहर निकाल कर खड़ा कर दिया। बोली, "मैं जानती हूँ, मैं इसका गला नहीं घोंट सकती, परन्तु बहूरानी ! अपने भरे घर को फिर से सूना करने की हिम्मत भी मुझ में नहीं है।"

उमा हतभागिन-सी निरुपमा को देखती ही रह गई। वह न बोल सकी, न जा सकी।

× × ×

और दिन पर दिन बीतते गए। नई बहू उमा अब पुरानी हुई, परन्तु शशि के प्रति निरुपमा की कठोरता समय के साथ-साथ बढ़ती गई।

एक दिन साहस करके उमा ने अपने पति से कहा, "आप जीजी को समझाते क्यों नहीं ?"

अमूल्य बाबू अचरज से बोले, "किसलिए उमा ?"

"कि वे शशि के प्रति इतनी कठोर न हों !"

"तुम नहीं जानतीं, उमा ! भाभी उसे बहुत प्यार करती हैं, परन्तु प्रकट करना नहीं चाहतीं, इसलिए वे इतनी कठोर हैं।"

उमा अचरज से बोली, "प्रेम में क्या कठोरता होती है ?"

"हां, होती है। जब संघर्ष होता है, तो प्रेम ताड़ना में बदल जाता है।"

"नही !" उमा ने कहा, "कठोरता ईर्ष्या में होती है। एक दिन जब यातना सहते-सहते शशि मर जायगा, तब जीजी क्या उस प्रेम को लेकर चाटेंगी ?"

कहते-कहते उमा की आंखें छलछला आईं। और उसी समय शशि की चीत्कार उसे सुन पड़ी। दोनों चौंक पड़े। उमा जल्दी से उस ओर चली गई। उसने देखा निरुपमा उसे मार डालने पर तुली है और बालक बिलबिला कर कह रहा है, "इस बार माफ कर दो ताई। अब नहीं करूँगा।"

उमा से यह न देखा गया। उसने निरुपमा के पैर पकड़ लिये। बोली, "अब छोड़ दो जीजी !"

निरुपमा ने रुककर तीव्र दृष्टि से उमा को देखा, मानो कहा, "तुम्हें बीच में बोलने का क्या अधिकार है ?"

उमा ने पूछा, "बात क्या थी जीजी !"

क्रोध से भरी निरुपमा बोली, "तुम्हारे लाड़ की बात थी बहू ! अब लड़का चोरी भी करेगा। मैं कहती हूँ मेरे घर में यह न होगा ! मैंने सवेरे पाँच रसगुल्ले गिने थे। अब चार हैं।"

इतना कहकर क्रोध से धम-धम करती हुई वे चली गईं। उमा ने देखा, उनकी आँखों में पानी था। उसके हृदय को ठेस लगी और तीव्र स्वर में उसने पूछा, "क्यों रे ! तूने रसगुल्ला चुराया था।"

शशि ने बिलखते हुए कहा, "चाची कल से भूखा था। तुमने परसों जो मिठाई दी थी उसके कारण ताई ने मुझे रोटी नहीं दी।"

वह जोर जोर से रोने लगा, "चाची ! बड़ी तकलीफ होती है। मुझे बचा लो, मैं फिर चोरी न करूँगा···।"

वह आगे न बोल सका ! संज्ञाहीन-सा होकर गिर पड़ा।

उमा ने यह सब देखा और चीखकर वह भी वहीं गिर पड़ी।

× × ×

और तीन दिन बाद :

उमा को बड़े जोर से बुखार चढ़ा हुआ था। अमूल्य को डर था कि कहीं उमा की बीमारी घातक न हो। वह बार-बार बेहोश हो जाती थी। वह गर्भवती थी। निरुपमा ने उसकी यह दशा देखकर कहा था, "मैंने इसे कई बार मना किया, अमूल्य। उस अभागे बालक की छाया भी कष्ट की छाया है।"

अमूल्य मुस्कराकर रह गये और थोड़ी देर बाद जब उमा ने आँखें खोलीं, तो उसका हाथ अपने हाथ में लेकर बोले, "उमा तुम्हें क्या हो गया ?"

उमा ने उन्हें देखा और बोली, "शशि कहाँ है ?"

"स्कूल गया है।"

"उसे बुला दो। मैं अब न बचूँगी।"

अमूल्य उसके ऊपर झुक आये और प्रेम भरे स्वर में बोले, "ऐसे मत बोलो उमा !"

उमा ने उसी तरह कहा, "आपको दुःख होता है, पर मैं क्या करूँ ? मेरे कारण उस बालक को कष्ट उठाने पड़ते हैं। उसे एक बार मेरे पास ला दो।"

इधर ही आती हुई निरुपमा ने उन वाक्यों को सुना। वह बोली, "जिसके कारण तुम इस दशा को पहुँच गई, उसकी देखने की साध अब भी बाकी है। तुम्हें उसकी छाया से भी बचना चाहिए, बहू !"

"तुमने यह क्या कहा, जीजी"—उमा ने हृदय के आवेग को रोकते हुए कहा।

"शशि को उसके मामा के यहाँ भेजे देती हूँ। इस अभागे बालक के कारण मैं अपनी चाँद-सी बहू को नहीं खो सकती।"—कहते-कहते निरुपमा की आँखें भर आईं।

उमा कोई उत्तर नहीं दे सकी। भावावेश से उसकी जिह्वा रुँधसी-गई। उसने कातर दृष्टि से अपने पति की ओर देखा, मानो उसने कहा, "ऐसे तो मैं और भी जल्दी मर जाऊँगी।"

और जब निरुपमा चली गई तो अमूल्य बोले, "मैं कहता हूँ उमा ! कल से हम दूसरे मकान में चलेंगे !"

"तब क्या होगा"—उमा ने अचरज से कहा !

"तुम भाभी के अत्याचार को नहीं देख सकोगी।"

"तुम कैसी बातें करते हो जी ? शशि को जब भी और जहाँ भी दुःख होगा तो क्या मेरी आत्मा तड़प न उठेगी।"

उसी समय अमूल्य ने खिड़की के परदे पर किसी की परछाँई देखी। उन्हें समझते देर न लगी। उन्होंने खिड़की खोल दी। वह शशि था। अमूल्य को देखकर वह शीघ्रता से लौट चला।

अमूल्य बोले, "शशि, इधर आओ।"

उमा चौंककर बोली, "शशि है !"

लेकिन शशि रुका नहीं। अमूल्य ने उमा से कहा, जिसे तुम स्नेह

करती हो, जिसे तुम सुखी देखना चाहती हो, उसके लिए तुम्हें यह मकान छोड़ना ही होगा।"

उमा बोली, "त्याग इसमें क्या है ? पर सोचती हूँ क्या हम कायर नहीं हैं ?"

"परन्तु शशि के दुःख का प्रधान कारण तुम हो, उमा ! तुम बीच में से हट जाओगी तो भाभी इतनी कठोर न होंगी !"

उमा ने सोचा अमूल्य ठीक कहते हैं। दूसरे के अधिकार की वस्तु को अपना बना कर कौन सुखी रहा है ? शशि जीजी से अलग नहीं हो सकता ! और न जाने क्यों उस अभागे बालक पर मेरी इतनी ममता है ! न जाने क्यों ?

उमा का हृदय करुणा से भरने लगा। उसने कहा, "यदि हमारे चले जाने से उसके कष्ट कम होते हैं, तो हमें चले जाना ही होगा।"

उसने कह तो दिया पर हृदय में वेदना उमड़ पड़ी और वह सिसक-सिसक कर रोने लगी ?

× × ×

उमा की गोदी में अब एक साल का बालक था। शशि के स्कूल के रास्ते में उमा का मकान पड़ता था। उस मकान की खिड़की के पास पहुँचकर शशि रोज चाची को नमस्ते करता और छोटे अशोक से हँस-हँस कर बोलता, उमा सोचती शशि अब प्रसन्न है। वह ठीक वक्त पर खिड़की पर आ खड़ी होती। कभी वह अन्दर भी आता। उमा पूछती, क्यों शशि ! कैसे हो ?" शशि कहता, "अच्छा हूँ, चाची ! ताई अब मारती नहीं हैं।"

उसकी आँखें भर आतीं। वह मन ही मन कहती—शशि सुख से रहे, यही मुझे प्रिय है। लेकिन वह सोचती निरुपमा ऐसी क्यों है ? पर इसका उत्तर उसने कभी नहीं पाया।

इसी बीच में एक दिन उमा ने देखा शशि नहीं आया। उसे दुख हुआ। सोचा शायद उसे बुखार चढ़ा होगा, पर कई दिन बीत गये,

शशि को उसने नहीं देखा। वह अब पुराने घर में नहीं जा सकती थी, क्योंकि निरुपमा उसके अलग होने से बहुत क्रुद्ध थी। उसका हृदय घबरा उठा—शशि सचमुच बहुत बीमार है। लेकिन वह क्या करे ? उसने अमूल्य से कहा, "तुम जरा उस घर जाकर देखो तो शशि कैसा है ?"

अमूल्य ने इतना ही कहा, "मैं अब वहाँ नहीं जा सकता ?"

उमा क्या करे ? मन मारकर उसने दो दिन और बिता दिये, पर तीसरे दिन उससे नहीं रहा गया। उसने निरुपमा की दासी को बुलाकर पूछा, "शशि अच्छा है, श्यामा ?

श्यामा की आँखें सजल हो उठीं। उसने कहा, "बहू, तुम्हारी जेठानी ने जबसे जाना है कि शशि तुम्हारे पास आता है, तो उन्होंने उसका स्कूल जाना बन्द कर दिया है। उसे खूब मारती है। बेचारा बालक शायद अधिक जी न सकेगा।"

उमा काँप उठी, "सच कहती हो, श्यामा !"

श्यामा बोली, "सदा से मैं उनके साथ हूँ। वे नहीं चाहतीं कोई और शशि से प्रेम करे।"

"अच्छा चलो श्यामा ! मैं तुम्हारे साथ चलकर जीजी से पूछूँगी कि प्रेम पर भी क्या किसी का अधिकार होता है ?"

श्यामा बोली नहीं। उमा ने अशोक को गोदी में उठाया और पुराने मकान में पहुँची। चौक में शशि चटाई पर लेटा था। वह उसे पहचान न सकी। उसका मुख पीला पड़ गया था। बदन की हड्डी चमक आई थी। वह रोते-रोते विह्वल हो गई।

निरुपमा रसोई-घर में थी। रोना सुनकर बाहर आई। उमा को देखकर उसका क्रोध उमड़ आया। चीखकर बोली, "तुम यहाँ क्यों आई ?"

उमा ने अपनी जेठानी की ओर तीव्रता से देखा। बोली, "तुम्हारे अन्तर में जो आग जली है, उसी की भूख मिटाने आई हूँ, राक्षसी !"

और उसने अशोक को उठकर उसके चरणों पर डाल दिया। आर्द्र-स्वर में बोली, "जीजी! इसे खाकर अपनी आग शान्त कर लो और मेरे शशि को मुझे दे दो!"

निरुपमा उस क्षण स्तम्भित-चकित बुत सी बनकर रह गई! पर उमा ने उसकी ओर देखा भी नहीं। उसने शशि को गोदी में उठा लिया और चल पड़ी।

होमवती

सन् १९०६ से १९५१ ई० ।

स्वर्गीया होमवती जी स्नेहशीलता का प्रतीक थीं । डा० नगेन्द्र के शब्दों में उन्होंने राग-विराग का सम्बल और उससे निर्मित इन्हीं जीवन तत्वों को लेकर साहित्य में प्रवेश किया था । उच्च मध्यम वर्ग की गार्ह-स्थिक गरिमा और संस्कार. भाग्य की व्यंजना और उससे अद्भुत जीवन व्यापी पीड़ा, अतिशय द्रवण शीलता तथा ममत्व, जीवन के तीव्र अनु-भव और उनसे प्राप्त स्थिर विवेक तथा व्यक्ति और स्थिति को परखने वाली आत्म विश्वासमयी दृष्टि थी उनकी ।

जीवन—आपका जन्म सन् १९०६ ई० में एक प्रतिष्ठित घराने में हुआ था । विवाह के बाद जीवन का विश्राम स्थल बना मेरठ । वहीं पर कचहरी से पूर्वाभिमुख नेहरू रोड के छोर पर स्थित और इमली तथा यूकलिप्टस के तरु-पल्लवों से आच्छादित पर्णकुटी बना साहित्यिक स्थल । 'सरदोत्सव', 'सरस्वती पूजन', साहित्य परिषद् के वार्षिकोत्सव इसी के आंगन में मनते रहे । सभी वर्ग के लोग इनमें भाग लेते थे । आतिथ्य सत्कार की प्रवृत्ति सदैव रही । हरेक छोटे बड़े के लिए पर्ण कुटीर के द्वार खुले रहे । स्नेह का अमृत सब पर बरसता रहा ।

रचनाएँ—अधिक शिक्षित न होने पर भी आपकी लेखनी ने ऐसे भाव चित्रित किए, जिसे साहित्यिक वर्ग देखता रह गया । शैशव की रुचि कविता, निबन्ध और कहानियों के रूप में फैली । हिन्दी जगत के महारथियों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की । और फिर विधाता के विक-राल हाथों द्वारा हृदय की पीड़ा साहित्य जगत में साकार हो गई । 'उद्गार' और 'अर्घ' (कविता संग्रह) 'निसर्ग', 'धरोहर', स्वप्न भंग', 'अपना घर' आदि कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं । निःस्पन्द और

अन्य कविताएँ, कुछ कहानियाँ और दो अधूरे उपन्यास अप्रकाशित ही रह गए हैं।

भाषा शैली—होमवती जी की भाषा सरल और हृदय को प्रभावित करने वाली है। कठिन शब्दों द्वारा उसे आतंकित न करना ही आपकी भाषा की विशेषता है। शैली वातावरण प्रधान है। इससे रचनाओं में अधिक सरसता आ गई है।

कहानी-साहित्य की विशेषता—घरेलू वातावरण, गहरी आत्मीयता, आर्द्र करुणा, नारी के स्वाभिमान से सहज सहानुभूति और अन्याय सहज मानवीय आक्रोश···इन्हीं की झलक आपकी कहानियों में मिलती थी। सच पूछो तो यही आपके कहानी साहित्य की विशेषता है।

प्रस्तुत-कहानी—'राब की मटकी' में निर्धनता की करुण दशा का क्रन्दन है। एक भारतीय कृषक डूँगर अपनी सन्तान की चार छः आने की वस्तु की माँग भी पूरी नहीं कर पाता। अन्त में एक राब की मटकी बेचकर इस समस्या को सुलझाना चाहता है; किन्तु उसके भी इच्छित दाम न मिलने के कारण उसकी इच्छा अपूर्ण ही रह जाती है। अनायास ही उस मटकी के फूट जाने के कारण उसकी आशायें भी क्षार बन जाती हैं। यही इस कहानी का दुखान्त कथानक है।

एक करुणात्मक दुखान्त कहानी

राब की मटकी

++

होमवती

रज्जो ने अपनी मां के गले में दोनों बाहें डालकर कहा, "सब तो नये-नये कपड़े पहन कर मेले जा रहे हैं अम्मां ! और मैं जाऊँ यह ओढ़नी ओढ़ कर !" और फिर कई जगह से फटी तथा तार-तार हुई ओढ़नी उसने माँ के सामने करदी। गोबिन्दी ने उसे छाती से लगाकर कहा, "सबकी क्या कुछ हिरस थोड़े ही है बेटी, खेती चौपट हो गई और कोई रोज़गार नहीं फिर उनसे किस मुँह से कहा जाय ? तेरे बापू के जी को दुःख होगा और छड़ियों का मेला कोई वैसा बड़ा मेला भी नहीं। दशहरे पर जैसे भी बन पड़ेगा तुझे गबरून की नयी ओढ़नी बना दूँगी।"

"ऊं.....ऊँ हम तो नहीं, अम्मां हम तो आज ही नयी लेंगे।" बालिका मचल गई और रोते-रोते सो गयी।

डूँगर ने रात को खाट पर पड़ कर स्त्री से कहा, "बच्चे का मन माँ बाप तन-पेट काट कर भी रखते हैं, पर हम अभागे तन पेटकी कमी को भी पूरा नहीं कर पाते, मन कहां से रखें ? न हो वह राब की मटकी रखी है न ? कल बाजार जा कर उसे ही बेच डालो। चार छः आने जो कुछ उठें उनसे डेढ़ दो गज का एक टुकड़ा लेकर इसके सिर पर डाल देना। भगवान ने न जाने क्या दया की जो अब आकर इस का मुँह दिखाया है, तो भी इस तरह भटकते हैं ?" कहते-कहते डूँगर का मन भारी हो उठा। वह छत में लटकती हुई बल्लियों को देखने

लगा । गोविन्दी के कलेजे से एक ठंडी साँस निकल पड़ी ।

अड़ोस-पड़ौस के सभी बच्चे छड़ियाँ देखने चले गए, किन्तु रज्जो नहीं गयी । इसका दु:ख रज्जो को चाहे उतना न भी हुआ जितना उसके मां बाप को । गोविन्दी ने चने की रोटी थोड़ा सा गुड़ मिला कर बच्ची के सामने रखदी । वह उसे खाने में इतनी खुश और मस्त हो उठी कि मेला-तमाशा सब कुछ भूल गयी ।

"देख रज्जो, हम चर्खी लाये और वह देख सन्तू लाया है डुगडुगी । तू दिखा तो भला, मेले में से क्या लायी"—कहता हुआ जीवन कूद-कूद कर अपनी चर्खी घुमाने लगा । रज्जो ने उसकी ओर होंठ बिचका कर कहा, "ऊँ...लाया होगा । हमारे यहाँ इतना सारा गुड़ जो धरा है । रात हमने गुड़ से रोटी खायी, तुमने भी खायी ?"

"ईं...लिए फिरती है । गुड़ अरे, हमारे घर में मटके के मटके भरी राब धरी है । तेरे घर में है ? बता ? हम तो रोज छाछ में राब डाल कर पीते हैं और तू...?''

"हम भी" ?

"ईं···हम भी," कह कर ढीट बालक उसे बिरांने लगा, "पीती है जी ये छाछ । कभी-कभी हमारे घर से ही तेरी मां ले जाती है ।" अब रज्जो से सहन न हो सका । रोती हुई गोबिन्दी के पास जाकर बोली, "देखो अम्माँ जीवन नहीं मानता, कह रहा था कि हमारे घर से छाछ माँग कर पीती है ।"

युवती ने उसके बालों में उंगलियाँ फेरते हुए कहा, "बेटी मैं सब सुन रही थी । तुम उनके साथ मत खेला करो । गँवई-गाँव के लोग भी एक दूसरे को देख-देख कर जले जाते हैं ।"

"नहीं, बच्चों की बातों का ख्याल न करो । भगबान ने चाहा तो अब की फसल अच्छी होगी । फिर हाथ खुल जायगा । कोई ऐसी ही तंगी थोड़ी ही रहेगी ?" कह कर डूँगर ने घरवाली को समझाने का यत्न किया ।

"अच्छा, अम्मा री, हमारे घर में राब है कि नहीं ? सबके घरों में तो मटकों राब धरी है।"

पति-पत्नि ने एक दूसरे की ओर भेद भरी दृष्टि से देखा। फिर डूँगर ने रज्जो को अपनी ओर घसीट कर कहा, "देख वह कोने में राब की मटकी धरी है।"

"देखें"—कह कर उसने मटकी का मुँह उघाड़ कर देखा और फिर उसमें एक उंगीली गड़ा कर चाट ली। मानो इतने ही से रज्जो की आत्मा को शान्ति मिल जायगी और वास्तव में यह राब ही है, इसका विश्वास भी हो जायगा।

हाट के दिन गोबिन्दी राब की मटकी सिर पर धर और कन्या की उंगली पकड़ कर बाजार करने घर से चली। रज्जो ने पूछा, "मटकी क्यों ले जा रही है अम्माँ ?"

"इसे बेचकर तेरे लिए नयी ओड़नी लाऊँगी, न ?

"ऊँ हूँ, नहीं यह नहीं अम्मां, अच्छी अम्मां। इसे हम खायेंगे जो। फिर जीवन कहेगा कि हमारे तो राब के मटके धरे हैं ?"

"पेट का खाया कौन देखता है बिटिया ? जब तू नयी ओढ़नी ओढ़ेगी न, तब सब पूँछेंगे—रज्जो कहाँ से पायी ?" कहकर युवती ने बालिका को फुसलाकर अपनी आँखें मसल डालीं।

सारा बाजार छान डालने पर भी किसी ने दो आने और किसी ने तीन आने से अधिक दाम उस छोटी-सी मटकी का न लगाया। किसी ने कहा, "राब तो आज कल सभी के घर में पड़ी है।" कोई बोला,

"क्यों बेचती हो, है ही कितनी सी, घर बाल-बच्चे ही खा डालेंगे।" अपने पास-पड़ौस की स्त्रियों के सामने गोविन्दी लाज से गड़ी जाने लगी। उसने निराश होकर मटकी सिर पर रख ली सोचा, "कल वह शहर में जाकर बेच आयेंगे। वहां दाम भी चाहे अच्छे उठ जायें।"

दोनों माँ-बेटी जैसी गयी थीं वैसी ही लौट आयीं। डूँगर ने चिलम

पर आग धरते हुए पूछा "देकर नहीं आयीं ?"

"लेता ही कौन ? दो अढ़ाई आने में क्या दो गज गबरून थोड़े ही मिल जायगी। चाहे सस्ती से सस्ती लो; पर दो आने गजसे कम में कभी नहीं मिल सकती।" उसकी आँखें भर आयीं। बालिका ने पिता की पीठ पर झूलते हुए कहा, "बापू यह ओढ़नी तो अभी अच्छी है, फिर रामलीला पर मंगा देना। हम तो राब खायेंगे, जीवन कहता था ···।

"चुप चुड़ैल, बड़ी जबान चलने लगी है"—माँ ने उसे डाँट दिया। डूँगर को समझने को कुछ बाकी न रहा। उसने स्त्री को शान्त करने की चेष्टा करते हुए कहा, "उसे डाँटो नहीं। ठहरो कल मैं शहर जाऊँगा ...। और जमींदार बाबू के यहाँ भी। वह औरों की नाईं नहीं हैं, थोड़ी बहुत दया माया रखते ही हैं। और मान लो कहीं नौकरी नहीं भी लगी तो फिर जैसे बनेगा थोड़ा सन लेकर घर लौटूँगा, रस्सी बट कर बेचने से दो चार आने इकट्ठे हो ही जायेंगे।" कह कर वह राब की मटकी उठा कर घर में धर आया। स्त्री ने चूल्हे में कंडा लगाते हुए कहा, "सन्तान भी तभी अच्छी लगती है जब चार पैसे हों" पर डूँगर ने जैसे कुछ सुना ही नहीं, वह लड़की का हाथ पकड़ कर हुक्का थामे हुये बाहर नीम की छाया में जा बैठा।

आधी रात के समय गरजती हुई ऐसी घटा उठी कि मानो प्रलय ही हो जायगी। छप्पर चूने लगा। डूँगर ने दो खाटें जोड़ कर बाँध दीं और ऊपर के फटे पुराने गूदड़ डालकर रज्जो को सुला दिया। पर यह क्या ? ज़मीन से मानो सोते फूट पड़े न देखते ही देखते सारे घर में पानी भर गया, और फिर ओलों की मार ने तो छप्पर का तिनका-तिनका बेध डाला। वह दोनों रामराम भजने लगे। रज्जो मारे डर के चीखने लगी। दिया बुझ गया हाथ को हाथ नहीं सूझता था। अब करें तो क्या करें ? जैसे तैसे रात कटी। दिन निकलने पर जब वर्षा का वेग कुछ कम हुआ तो पति पत्नी ने एक दूसरे की ओर देखकर कहा, "इससे तो अच्छा होता कि दीवारें भी गिर पड़तीं, और हम तीनों यहीं

दब कर रह जाते। घर गृहस्थी सभी तो उजड़ गयी भगवान अभागों को मौत भी नहीं देता।" रज्जो खाट पर बैठी-बैठी सब देख रही थी जैसे घर में गंगा माई ही प्रगट हो गयीं—चारों ओर जल ही जल दीख रहा था। छप्पर का फूँस छितरा पड़ा था। घर गृहस्थी की चीजें कच्छ-मच्छ की भाँति पानी पर तैर रही थीं। इसी बीच रज्जो चीख उठी, "हाय अम्मा ! राब की मटकी...।" सचमुच मटकी फूटकर खंड-खंड हो गयी थी, राब का निशान भी बाकी न बचा था। वे तीनों आँखें फाड़कर उसकी ओर देखने लगे।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

जन्म सं० १६५३ वि०

आपने स्वामी रामकृष्ण परम हंस तथा उनके शिष्य श्री विवेकानन्दजी के दार्शनिक विचारों का दृढ़ता से मन्थन किया है, जिसके कारण आपकी रचनाओं में आध्यात्मिकता एवं दार्शनिकता कूट कूट कर भरी हुई है।

जीवन—आपका जन्म महिप दल राज्य में पं० राम सहाय त्रिपाठी के यहाँ हुआ था। आपके पिता इसी राज्य में कर्मचारी थे। वे अपने पूर्वजों की जन्म भूमि उन्नाव (उत्तर प्रदेश) को छोड़कर आजीविका के लिए बंगाल में आ बसे थे। बंगाल के एक स्कूल में निराला जी ने शिक्षा प्राप्त की। शैशव काल में ही आपकी रुचि बंगला साहित्य की ओर बढ़ती गयी। संस्कृत और अंग्रेजी का ज्ञान घर पर ही मिला। आप दर्शन शास्त्र के विद्वान् हैं। इसलिये आपकी कृतियों में दार्शनिकता की गहरी छाप है। आपने 'समन्वय' और 'मतवाला' नामक पत्रों के सम्पादक विभाग में भी कार्य किया। आजकल आप इलाहाबाद में रह रहे हैं।

रचनाएँ—आपकी प्रतिभा बहुमुखी है। आपने काव्य के रूप में 'बेला', 'अनामिका', 'अपार', 'परिमल', 'नये पत्ते' आदि हिन्दी साहित्य को भेंट किया। उपन्यास क्षेत्र में 'अप्सरा', 'अलका', 'निरुपमा' 'प्रभावती', उच्छृंखला', 'चमेली,' आदि और निबन्ध रूप में 'निबन्ध प्रतिमा,' 'प्रबन्ध परिचय', आदि दिए। जीवन चरित्र और रेखा चित्रों में 'राणाप्रताप', 'भीम', 'ध्रुव', 'कुल्लीभाट', 'बिल्लेसुर बकरिहा' आदि प्रशंसनीय हैं। कहानी संग्रह के रूप में 'बीबी', 'लिल्ली', 'सखी', 'सुकुल की बीबी' और 'चतुरी चमार' विशेष उल्लेखनीय हैं।

भाषा-शैली—आपकी भाषा सरस और उर्दू मिश्रित है। इस कहानी 'चतुरी चमार' की वर्णन शैली प्रथम पुरुष में होने के कारण आत्म परख है। इसके अतिरिक्त काव्य में अतुकान्त शैली का सफलता पूर्वक प्रयोगकर नई पद्धति का निर्माण किया है। यही इनका निराला-पन है।

कहानी-साहित्य की विशेषता—आपकी कहानियां मार्मिकता और संवेदना के सहारे हृदय के भीतर छिपी भावनाओं, कमजोरियों और कुतूहल को जगाकर, प्राणियों में रस और राग उत्पन्न कर, विभिन्न परिस्थितियों में मानव जीवन का अध्ययन और विश्लेषण करती हुई पाठक का मनोरंजन करती हैं। यही इनके कहानी साहित्य की विशेषता है।

प्रस्तुत-कहानी—'चतुरी चमार' एक संवेदनशील कहानी है। इसमें चतुरी चमार के चरित्र की झाँकी के साथ-साथ निराला जी के जीवन की झलक भी मिलती है। जब वे ब्राह्मण होकर चतुरी चमार तथा अन्य हरिजनों के साथ खाते पीते हैं तो समाज के द्वारा कैसे कैसे कटाक्ष उन पर होते हैं यही इसमें दर्शाया गया है।

चरित्र प्रधान

चतुरी चमार
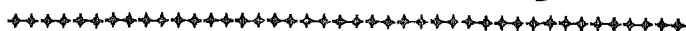
सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

१

चतुरी चमार डाकखाना चमियानी, मौजा गढ़ाकोला, जिला उन्नाव का एक कदीमी वाशिंदा है। मेरे ही नहीं, मेरे पिता जी के, बल्कि उनके भी पूर्वजों के मकान के पिछवाड़े, कुछ फासले पर, जहाँ से होकर कई और मकानों के नीचे और ऊपर वाले पनालों का, बरसात और दिन-रात का शुद्धाशुद्ध जल बहता है। ढाल से कुछ ऊँचे एक बगल चतुरी चमार का पुश्तैनी मकान है। मेरी इच्छा होती है, चतुरी के लिए 'गौरवे बहुबचनन्' लिखूँ; क्योंकि साधारण लोगों के जीवन-चरित्र या ऐसे ही कुछ लिखने के लिए सुप्रसिद्ध सम्पादक पं० बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा दिया हुआ आचार्य द्विवेदी जी का प्रोत्साहन पढ़ कर मेरी श्रद्धा बहुत बढ़ गई है, पर एक अड़चन है, गाँव के रिश्ते में चतुरी मेरा भतीजा लगता है। दूसरों के लिए वह श्रद्धेय अवश्य है; क्योंकि वह अपने उपानह-साहित्य में आज-कल के अधिकांश साहित्यिकों की तरह अपरिवर्तनवादी है। वैसे ही देहात में दूर-दूर तक उसके मजबूत जूतों की तारीफ है। पासी हफ्ते में तीन दिन हिरन, चौगड़े और बनैले सुअर खदेड़ कर फाँसते हैं किसान अरहर की ठूँठियों पर डोर भगाते हुए दौड़ते हैं—कटीली झाड़ियों को दबाकर चले जाते हैं, छोकड़े बेल, बबूल, करील और बेर कांटों से भरे रूँधवाए बागों से सरपट भागते हैं, लोग जेंगरे पर मड़नी

करते हैं, द्वारिका नाई न्योता बाँटता हुआ दो साल में दो हजार कोस से ज्यादा चलता है, चतुरी के जूते परिवर्तनवाद के चुस्त रूपक-जैसे टस से मस नहीं होते; यह जरूर है कि चतुरी के जूते जिला बाँदा के जूतों से वजन में हल्के बैठते हैं; सम्भव है, चित्रकूट के इर्द-गिर्द होने के कारण वहाँ के चर्मकार भाइयों पर राम जी की तपस्या का प्रभाव पड़ा हो, इसलिए उनका साहित्य ज्यादा ठोस हुआ, चतुरी वगैरह लखनऊ के नजदीक होने के कारण नवाबों के साये में आये हों। उन दिनों मैं गाँव में रहता था। घर बगल में होने के कारण, घर बैठे ही मालूम कर लिया कि चतुरी चतुर्वेदी आदिकों से सन्त-साहित्य का कहीं अधिक मर्मज्ञ है, केवल चिट्ठी लिखने का ज्ञान न होने के कारण एक क्रिया होकर भी भिन्न फल है। वे पत्र पुस्तकों के सम्पादक हैं, यह जूतों का। एक रोज़ मैंने चतुरी आदि के लिए चरस मंगवा कर अपने दरबाजे पर बैठक लगवाई। चतुरी उम्र में मेरे चाचा जी से कुछ ही छोटा होगा, कई घरों के लड़के-बच्चे समेत 'चरस-रसिक रघुपति-पद-नेहू लोध' आदि के सहयोग से मजीरेदार दुफलियाँ लेकर वह रात आठ बजे आकर डट गया। कबीरदास, सूरदास, तुलसीदास, पलटूदास आदि ज्ञान-अज्ञान अनेकानेक सन्तों के भजन होने लगे। पहले मैं निर्गुण शब्द का अर्थ लिया करता था, लोगों को, 'निर्गुण पद है' कहकर संगीत की प्रशंसा करते हुए सुन कर हँसता था, अब गम्भीर हो जाया करता हूँ—जैसे उम्र की बाढ़ के साथ अक्ल बढ़ती है।

मैं मचिया पर बैठकर भजन सुनने लगा। चतुरी आचार्य-कण्ठ से लोगों को भूले पदों की याद दिला दिया करता। मुझे मालूम हुआ चतुरी कबीर-पदावली का विशेषज्ञ है। मुझे उसने कहा— "काका, ये निर्गुण-पद बड़े-बड़े विद्वान नहीं समझते।" फिर शायद मुझे भी उन्हीं विद्वानों की कोटि में शुमार कर बोला—"इस पद का मतलब··· मैंने उतरे गले से बात काट कर उभड़ते हुए कहा—"चतुरी आज

गा लो, कल सुबह आकर मतलब समझना। मतलब से गाने की तलब चली जायगी।" चतुरी खखार कर गम्भीर हो गया। फिर उसी तरह डिक्टेट करता रहा। बीच-बीच में ओजस्विता लाने के लिए चरस की पुट चलती रही। गाने में मुझे बड़ा आनन्द आया। ताल पर तालियाँ देकर मैंने भी सहयोग दिया। वे लोग ऊंचे दर्जे के उन गीतों का मतलब समझते थे, उनकी नीचता पर एक आश्चर्य मेरे साथ रहा। बहुत-से गाने अलंकारिक थे। वे उनका भी मतलब समझते थे। एक बजे रात तक मैं बैठा रहा। मुझे मालूम न था कि 'भगत' कराने के अर्थ रात-भर गँवाने के हैं। तब तक आधी चरस भी खतम न हुई थी। नींद ने जोर मारा। मैंने चतुरी से चलने की आज्ञा माँगी। चरस की ओर देखते हुए उसने कहा—"काका, फिर कैसे काम बनेगा?" मैंने कहा—"चतुरी, तुम्हारी काकी तो भगवान के यहाँ चली गई, जानते ही हो—भोजन अपने हाथ पकाना पड़ता है, कोई मदद के लिए है नहीं, जरा आराम न करेंगे, तो कल उठ न पायेंगे।" चतुरी नाराज होकर, बोला—"तुम ब्याह करते ही नहीं, नहीं तो तेरह काकी आ जाएँ, हाँ वैसी तो···।" मैंने कहा—"चतुरी भगवान् की इच्छा।" दुःखी हृदय से सहानुभूति दिखलाते हुए चतुरी ने कहा—"काकी बहुत पढ़ी लिखी थीं। मैंने कई चिट्ठियाँ उनसे लिखवाई हैं।" फिर चलती हुई चिलम में दम लगाकर धुँआ पीकर, सर नीचे की ओर जोर से दबा कर, नाक से धुँआ निकालकर बैठे गले से बोला—"काकी रोटी भी करती थीं, बर्तन भी मलती थीं और रोज रामायण भी पढ़ती थीं, बड़ा अच्छा गाती थीं काका, तुम वैसा नहीं गाते, बुढ़ऊ बाबा (मेरे चाचा) दरवाजे पर बैठते थे—भीतर काकी रामायण पढ़ती थीं, ग़ज़लें और न जाने क्या-क्या-टिल्लाना गाती थीं—"क्यों काका?" मैंने कहा—"हूँ; तुम लोग चतुरी गाओ, मैं दरवाजा बन्द करके सुनता हूँ।"

२

जगने तक भगत होती रही। फिर कब बन्द हुई, मालूम नहीं? जब आँख खुली, तब काफी दिन चढ़ आया था। मुँह धोकर दरवाजा खोला, चतुरी बैठा एक टक दरवाजे की ओर देख रहा था। कबीर पदावली का अर्थ उससे किसी ने नहीं सुना। मैंने सुबह सुनने के लिए कहा था, वह आया हुआ है। मैंने कहा—"क्यों चतुरी, रात सोये नहीं! चतुरी सहज—गम्भीर मुद्रा से बोला—"सोकर जगे तो बड़ी देर हुई, बुलाने की वजह से आया हुआ हूँ। जिनमें शक्ति होती है, अवैतनिक शिक्षक वही हो सकते हैं।" मैंने कहा—"मैं तैयार हूँ, पहले तुम कबीर साहब की कोई उल्टवासी सीधी करो।" "कौन सुनाऊँ?" चतुरी ने कहा—"एक से एक बढ़कर है। मैं कबीर पंथी हूँ न काका, जहाँ गिरह लगती है, साहब आप खोल देते हैं।" मैंने कहा—"तुम पहुँचे हुए हो, यह मुझे कल ही मालूम हो गया था।" चतुरी आँख मूँद कर शायद साहब का ध्यान करने लगा, फिर सस्वर एक पद गुनगुना कर गाने लगा, फिर एक-एक कड़ी गाकर अर्थ समझाने लगा। उसके अर्थ में अनर्थ पैदा करना आनन्द खोना था। जब वह भाष्य से हिन्दी वालों पर 'कल्याण' के निरामिष लेखों का प्रभाव पड़ सकता है, मैंने कहा — "चतुरी, तुम पढ़े-लिखे होते, तो पाँच सौ की जगह पाते।" खुश होकर चतुरी बोला—"काका, कहो तो अर्जुनवा (चतुरी का एक सत्रह साल का लड़का) को पढ़ने के लिए भेज दिया करूँ, तुम्हारे पास पढ़ जायेगा, तुम्हारी विद्या लेगा, मैं भी अपनी दे दूँगा, तो कहो भगवान् की इच्छा हो जाय तो कुछ हो जाय।" मैंने कहा—"भेज दिया करो। दिया घर से लेकर आया करे। हमारे पास एक ही लालटेन है। बहुत नजदीक घिसेगा, तो गाँव वाले चौकेंगे। आगे देखा जायेगा। लेकिन गुरु-दक्षिणा हम रोज लेंगे। घबराओ मत। सिर्फ बाजार से हमारे लिए गोश्त ले आना होगा और महीने में दो दिन चक्की से आटा पिसवा लाना होगा।

इसकी मेहनत हम देंगे। बाजार तुम जाते ही हो।" चतुरी को इस सहयोग से बड़ी खुशी हुई। एक प्रसंग पर आने के विचार से मैंने कहा—"चतुरी, तुम्हारे जूते की बड़ी तारीफ है।" खुश होकर चतुरी बोला—"हाँ, काका, दो साल चलता है।" उसमें एक दर्द भी दवा था। दुःखी होकर कहा—"काका, जमींदार के सिपाही को एक जोड़ा हर साल देना पड़ता है। एक जोड़ा भगतवा देता है, एक जोड़ा पंचमा। जब मेरा ही जोड़ा मजे में दो साल चलता है, तब ज्यादा लेकर कोई चमड़े की बरबादी क्यों करें?" कह कर डबडबाई आँखों से देखता हुआ जुड़े हाथों सेवई-सी बटने लगा।

मुझे सहानुभूति के साथ हँसी आ गई। मगर हँसी को होठों से बाहर न आने दिया। सँभल कर स्नेह से कहा—"चतुरी, इस का वाजिब-उल-अर्ज में पता लगाना होगा। अगर तुम्हारा जूता देना दर्ज होगा, तो इसी तरह पुश्त-दर-पुश्त तुम्हें जूते देते रहने पड़ेंगे।"

चतुरी सोच कर मुस्कराया। बोला—"अब्दुलअर्ज में दर्ज होगा, क्यों काका?" मैंने कहा—"हूँ, देख लो, सिर्फ एक रुपया हक़ लगेगा।"

वक्त बहुत हो गया था। मुझे काम था, चतुरी को मैंने बिदा किया। वह गम्भीर होकर सर हिलाता हुआ चला। मैं उसके मनोविकार पढ़ने लगा—"वह एक ऐसे जाल में फँसा है, जिसे वह काटना चाहता है, भीतर से उसका पूरा जोर उमड़ रहा है, पर एक कमजोरी है, जिसमें बार-बार उलझ कर रह जाता है।"

३

अर्जुन का आना जाना हो गया। उन दिनों बाहर मुझे कोई काम न था, देहात में रहना पड़ा। गोश्त आने लगा। समय-समय पर लोध, पासी, धोबी और चमारों का ब्रह्मभोज भी चलता रहा। घृत पक्व

मसालेदार माँस की खुशबू से जिसकी भी लार टपकी, आप निमन्त्रित होने को पूछा। इस तरह मेरा मकान साधारण जनों का अड्डा बल्कि House of Commons हो गया। अर्जुन की पढ़ाई उत्तरोत्तर बढ़ चली। पहले-पहल जब 'दादा, मामा, काका, दीदी, नानी' उसने सीखा, तो हर्ष में उसके माँ-बाप सम्राट् पद पाये हुए को छाप कर छलके। सब लोग आपस में कहने लगे, अब अर्जुनवा 'दादा-दीदी' पढ़ गया। अर्जुन अपने आप चतुरी को दादा और माँ को दीदी कहता था। दूसरे दिन उसके बड़े भाई ने मुझ से शिकायत की कहा—"बाबा, अर्जुनवा और तो सब लिख-पढ़ लेता है, पर भैया नहीं लिखता।" मैंने समझाया कि किताब में "दादा-दीदी" से भैया की इज्जत बहुत ज्यादा है; "भैया" तक पहुँचने में उसे दो महीने की देर होगी।

धीरे-धीरे आम पकने के दिन आये। अर्जुन अब दूसरी किताब समाप्त कर अपने खानदान में विशेष प्रतिष्ठित हो चला। कुछ नाजुक मिजाज भी हो गया। मोटा काम न होता था। आम खिलाने के विचार से मैं अपने चिरंजीव को लिवा लाने के लिए सुसराल गया। तब उस की उम्र ९-१० साल की होगी। सोम या चहरूम में पढ़ता था। मेरे यहाँ उसके मनोरंजन की चीज़ न थी। कोई स्त्री भी न थी, जिसके प्यार से वह बहला रहता। पर दो-चार दिन के बाद मैंने देखा, वह ऊबा नहीं, अर्जुन से उसकी दोस्ती हो गई। वह अर्जुन का काका लगता था, जैसे मैं अर्जुन के बाप का। यद्यपि अर्जुन उम्र उसमें उस से पौने-दो-पट था, फिर भी पद और पढ़ाई में मेरे चिरंजीव बड़े थे, फिर यह ब्राह्मण के लड़के भी थे। अर्जुन को नई और इतनी बड़ी उम्र में उतने छोटे से काका को श्रद्धा देते हुए प्रकृति के विरुद्ध दबना पड़ता था। इस का असर अर्जुन के स्वास्थ्य पर तीन ही चार दिन में प्रत्यक्ष हो चला। तब मुझे कुछ मालूम न था, अर्जुन शिकायत करता

न था। मैं देखता था, जब मैं डाकखाना या बाहर गाँव से लौटता हूँ मेरे चिरंजीव अर्जुन के यहां होते हैं, या घर ही पर उसे घेर कर पढ़ाते रहते हैं। चमारों के टोले में गोस्वामी जी के इस कथन को—'मनहु मत्त गजपन निरखि सिंह कसोरहिं चोप'—वह कई बार सार्थक करते देख पड़े, मैं ब्राह्मण-संस्कारों की सब बातों को समझ गया। पर उसे उपदेश क्या देते ? चमार दबेंगे, ब्राह्मण दबाएँगे। दवा है, दोनों की जड़ें मार दी जायँ, पर यह सहज-साध्य नहीं। सोच कर चुप हो गया।

मैं अर्जुन को पढ़ाता था तो स्नेह देकर, उसे अपनी ही तरह का एक आदमी समझकर, उसके उच्चारण की त्रुटियों को पार करता हुआ उसकी कमज़ोरियों की दरारें भविष्य में भर जायँगी, ऐसा विचार रखता था। इसलिए कहाँ-कहाँ उसमें प्रमाद है, यह मुझे याद भी न था। पर मेरे चिरंजीव ने चार ही दिन में अर्जुन की सारी कमजोरियों का पता लगा लिया, और समय-असमय उसे घर बुला कर मेरी ग़ैर-हाजिरी में उन्हीं कमजोरियों के रास्ते उसकी जीभ को दौड़ाते हुए अपना मनोरंजन करने लगे। मुझे बाद में मालूम हुआ।

सोमवार मियाँगंज के बाजार का दिन था। गोश्त के पैसे चतुरी को दे दिये थे। डाकखाना तब मगरापर था। वहाँ बाजार नजदीक है। मैं डाकखाने से प्रबन्ध भेजने के लिए टिकट लेकर टहलता हुआ बाजार गया। चतुरी जूते की दूकान लिए बैठा था। मैंने कहा—"कालिका (धोबी) भैया आये हुए हैं, चतुरी हमारा गोश्त उनके हाथ भेज देना। तुम बाजार उठने पर जाओगे, देर होगी।" चतुरी ने कहा—"काका एक बात है, अर्जुनवा तुमसे कहते डरता है, मैं घर आकर कहूँगा, बुरा न मानना लड़कों की बातों का।" "अच्छा", कहकर मैंने बहुत-कुछ सोच लिया। बकर-कसाई के सलाम का उत्तर देकर बादाम और ठण्डाई लेने के लिए बनियों की तरफ गया। बाजार में मुझे पहचानने वाले न पहचानने वालों को मेरी विशेषता से परिचित करा रहे थे—चारों ओर से

आंखें उठी हुई थीं—ताज्जुब यह था कि अगर ऐसा आदमी है, तो माँस खाना-जैसा घृणित पाप क्यों करता है ? मुझे क्षण-मात्र में यह सब समझ लेने का काफी अभ्यास हो गया था। गुरुमुख ब्राह्मण आदि मेरे घड़े का पानी छोड़ चुके थे। गाँव तथा पड़ोस के लड़के अपने-अपने पिता-पितामहों को समझा चुके थे कि 'बाबा (मैं) कहते हैं, मैं पानी पाँडे थोड़े ही हूँ, जो ऐरे-गैरे नत्थू खैरे सबको पानी पिलाता फिरूँ।' इससे लोग और नाराज हो गए थे। साहित्य की तरह समाज में भी दूर-दूर तक मेरी तारीफ फैल चुकी थी—विशेष रूप से जब एक दिन विलायत की टोरी-पार्टी की तारीफ करने वाले एक देहाती स्वामी जी को मैंने कबाब खाकर काबुल में प्रचार करने वाले, रामचन्द्रजी के वक्त के, एक ऋषि की कथा सुनाई, और मुझ से सुनकर वहीं गाँव के ब्राह्मणों के सामने बीड़ी पीने के लिए प्रचार करके भी वह मुझे नहीं दिखा सके—उन दिनों भाग्यवश मिले हुए अपने आवारागर्द नौकर से बीड़ी लेकर, सबके सामने दियासलाई लगाकर मैंने समझा दिया कि तुम्हारे इस जूठे धुएँ से बढ़कर मेरे पास दूसरा महत्व नहीं।

मैं इन आश्चर्य की आँखों के भीतर बादाम और ठण्डाई लेकर जरा रीढ़ सीधी करने को हुआ कि एक बुड्ढे पंडित जी एक देहाती भाई के साथ मेरी ओर बढ़ते नजर आये। मैंने सोचा, शायद कुछ उपदेश होगा। पंडित जी सारी शिकायत पीकर, मधु-मुख हो अपने प्रदर्शक से बोले—"आप ही हैं ?" उसने कहा—"हाँ, यही हैं।" पंडित जी देखकर गद्गद् हो गए। ठोढ़ी उठा कर बोले—"ओ हो हो ! आप धन्य हैं।" मैंने मन में कहा—"नहीं, मैं वन्य हूँ। मजाक करता है खूसट।" पर गौर से उनका पग और खौर देखकर कहा—"प्रणाम करता हूँ पंडित जी।" पंडित जी मारे प्रेम के संज्ञा खो बैठे, मेरा प्रणाम मामूली प्रणाम नहीं—बड़े भाग्य से मिलता है। मैं खड़ा पंडित जी को देखता रहा। पंडित जी ने अपने देहाती साथी से पूछा—"आप बे-मे सब पास हैं ?" उनका साथी अत्यन्त गम्भीर होकर बोला—"हाँ ! जिला में दूसरा नहीं

है ।" होंठ काटकर मैंने कहा—"पंडित जी, रास्ते में दो नाले और एक नदी पड़ती है । भेड़िए लागन हैं ।" डंडा नहीं लाया । आज्ञा हो, तो चलूँ—शाम हो रही है ।" पंडित जी स्नेह से देखने लगे । जो शिकायत उन्होंने सुनी थी, आँखों में उस पर सन्देह था; दृष्टि कह रही थी—"यह वैसा नहीं—जरूर गोश्त न खाता होगा, बीड़ी न पी होगी, लोग पाजी हैं ।" प्रणाम करके, आशीर्वाद लेकर मैंने घर का रास्ता पकड़ा ।

दरवाजे पर आकर रुक गया । भीतर बातचीत चल रही थी । प्रकाश कुछ-कुछ था, सूर्य डूब रहे थे । मेरे पुत्र की आवाज़ आई—"बोल रे, बोल ।" इस वीर-रस का अर्थ मैं समझ गया । अर्जुन बोलता हुआ हार चुका था, पर चिरंजीव को रस मिलने के कारण बुलाते हुए हार न हुई थी । चूँकि बार-बार बोलना पड़ता था, इसलिए अर्जुन बोलने से ऊब कर चुप था । डाँट कर पूछा गया, तो सिर्फ कहा—"क्या ?"

"वही—गुण, बोल ।"

अर्जुन ने कहा—"गुण ।"

बच्चे के अट्टहास से घर गूँज उठा । भरपेट हँसकर, स्थिर हो फिर उसने आज्ञा की—"बोल—गणेश ।"

रोनी आवाज़ में अर्जुन ने कहा—"गड़ेस ।" खिलखिलाकर, हँसकर, चिरंजीव ने डाँट कर कहा—"गड़ेस-गड़ास करता है—साफ नहीं कह पाता—क्यों रे, रोज दातौन करता है ?"

अर्जुन अप्रतिभ होकर, दबी आवाज़ में एक छोटी-सी 'हूँ' करके, सर झुका कर रह गया । मैं दरवाजा धीरे से धकेल कर भीतर खम्भे की आड़ से देख रहा था । मेरे चिरंजीव उसे उसी तरह देख रहे थे, जैसे गोरे कालों को देखते हैं । जरा देर चुप रहकर फिर आज्ञा की—"बोल वर्ण ।"

अर्जुन की जान की आ पड़ी । मुझे हँसी भी आई, गुस्सा भी लगा । निश्चय हुआ, अब अर्जुन से विद्या का धनुष नहीं उठने का । अर्जुन

वर्ण के उच्चारण में बिवर्ण हो रहा था। तरह-तरह से मुँह बना रहा था। पर खुल कर कुछ कहता न था। उसके मुँह बनाने का आनन्द लेकर चिरंजीव ने फिर डाँटा—"बोलता है, या लगाऊँ झापड़। नहा लूँगा गर्मी तो है।"

मैंने सोचा, अब प्रकट होना चाहिए। मुझे देखकर अर्जुन खड़ा हो गया, आँखें मल-मल कर रोने लगा। मैंने पुत्र रत्न से कहा—"कान पकड़ कर उठो-बैठो दस दफे।" उसने नजर बदल कर कहा—"मेरा कसूर कुछ नहीं, और मैं यों ही कान पकड़ कर उठूं-बैठूं!" मैंने कहा—"तुम इससे गुस्ताखी कर रहे थे।" उसने कहा—"तो आपने भी की होगी। इससे 'गुण' कहला दीजिए, आपने पढ़ाया तो है, इसकी किताब में लिखा है।" मैंने कहा—"तुम हँसते क्यों थे?" उसने कहा—"क्या मैं जान बूझ कर हँसता था?" मैंने कहा—"अब आज से तुम इससे बोल न सकोगे।" लड़के ने जवाब दिया—"मुझे मामा के यहाँ छोड़ आइए, यहाँ डाल के आम खट्टे होते हैं—चोपी होती है—मुँह फदक जाता है, वहाँ पाल के आम आते हैं।"

चिरंजीव को नाई के साथ भेजकर मैंने अर्जुन और चतुरी को सांत्वना दी।

४

कुछ महीने और मुझे गाँव में रहना पड़ा। अर्जुन कुछ पढ़ गया। शहरों की हवा मैंने बहुत दिनों से न खाई थी—कलकत्ता, बनारस, प्रयाग आदि का सफर करते हुए लखनऊ में डेरा डाला—स्वीकृत किताबें छपवाने के विचार से। कुछ काम लखनऊ में और मिल गया। अमीनाबाद होटल में एक कमरा लेकर निश्चिन्त चित्त से साहित्य-साधना करने लगा।

इन्हीं दिनों देश में आन्दोलन जोरों का चला—यही, जो चतुरी आदिक के कारण फिस्स हो गया है। होटल में रह कर, देहात से आने

वाले शहरी युवक मित्रों से सुना करता था, गढ़ा केला में भी आन्दोलन जोरों पर है—छः सात सौ तक का जोत किसान लोग इस्तीफा देकर छोड़ चुके हैं—वह ज़मीन अभी तक नहीं उठी—किसान रोज इकट्ठे होकर झंडा-गीत गाया करते हैं। साल-भर बाद, जब आन्दोलन में प्रतिक्रिया हुई, ज़मींदारों ने दावा करना और रिआया को बिना किसी रियायत के दबाना शुरू किया, तब गांव के नेता मेरे पास मदद के लिये आये बोले—"गाँव में चल कर लिखो। तुम रहोगे, तो मार न पड़ेगी, लोगों को हिम्मत रहेगी, अब सख्ती हो रही है।" मैंने कहा—"मैं कुछ पुलिस तो हूँ नहीं, जो तुम्हारी रक्षा करूँगा, फिर मार खाकर चुपचाप रहने वाला धैर्य मुझ में बहुत थोड़ा है, कहीं ऐसा न हो कि शक्ति का दुरुपयोग हो।" गाँव के नेता ने कहा—"तुम्हें कुछ करना तो है नहीं, बस बैठा रहना है।" मैं गया।

मेरे गांव की काँग्रेस ऐसी थी कि जिले के साथ उसका कोई तअल्लुक न था—किसी खाते में वहाँ के लोगों के नाम दर्ज न थे। पर काम में पुरवा डिवीजन में उससे आगे दूसरा गाँव न था। मेरे जाने के बाद पता नहीं, कितनी दरख्वास्तें साहब ने इधर-उधर लिखीं।

कच्चे रंगों से रँगा तिरंगा झंडा महावीर स्वामी के सामने एक बड़े बांस में गड़ा, बारिश से धुलकर धवल हो रहा था। इन दिनों मुकदमे-बाजी और तहकीकात जोरों से चल रही थी। कुछ किसानों पर, एक साल के हरी-भूसे को तीन साल की बाकी बनाकर, ज़मींदार आनरेरी दावे दायर किए थे, जो अपनी क्षुद्रता के कारण ज़मींदार साहब ने मजिस्ट्रेट के पास आकर किसानों की दृष्टि में और भयानक हो रहे थे, एक दिन, दरख्वास्त के फलस्वरूप शायद, दारोगा जी तहकीकात करने आये। मैं मगरायर डाक देखने जा रहा था। बाहर निकला तो लोगों ने कहा—"दारोगा जी आये हैं, अभी रहो।" आगे दारोगा जी भी मिल गए। ज़मींदार साहब ने मेरी तरफ दिखाकर अँगरेजी में धीरे से कुछ कहा। तब मैं कुछ दूर था, सुना नहीं। गाँव वाले समझे नहीं, दारोगा

जी झंडे की तरफ़ जा रहे थे। ज़मींदार शायद उखड़वा देने के इरादे से लिये जा रहे थे। महावीर जी के अहाते में झंडा देखकर दारोगा कुछ सोचने लगे, बोले—"यह तो मन्दिर का झंडा है।" अच्छी तरह देखा, उसमें कोई रंग न देख पड़ा। ज़मींदार साहब को ग़ौर से देखते हुए लौटकर डेरे की तरफ चले। ज़मींदार साहब ने बहुत समझाया कि यह बारिश से धुलकर सफेद हो गया है, लेकिन है यह कांग्रेस का झंडा। पर दारोगा जी बुद्धिमान थे।

महावीर जी के अहाते में सफेद झंडे को उखड़वा कर वीरता प्रदर्शित करने की आज्ञा न दी। गाँव काँग्रेस है, इसका पता न सब-डिवीजन में लगा, न ज़िले में; थानेदार साहब करें क्या?

उन दिनों मुझे उन्निद्र रोग था। इसलिए सर के बाल साफ थे। मैंने सोचा—"वेश का अभाव है, तो भाषा को प्रभावशाली करना चाहिए; नहीं तो थानेदार साहब पर अच्छी छाप न पड़ेगी। वहां तो महावीर स्वामी की कृपा रही, यहाँ अपनी ही सरस्वती का सहारा है।" मैं ठेठ देहाती हो रहा था; थानेदार साहब ने मुझ से पूछा—"आप कांग्रेस में हैं?" मैंने सोचा इस राष्ट्र-भाषा से राज-भाषा का महत्व बढ़कर होगा।" कहा—"मैं तो विश्व-सभा का सदस्य हूँ।" इस सभा का नाम भी थानेदार ने न सुना था। पूछा—"यह कौन-सी सभा है?" उनके जिज्ञासा-भाव पर गम्भीर होकर नोबल पुरस्कार पाये हुये कुछ लोगों के नाम गिनाकर मैंने कहा—"ये उसी सभा के सदस्य हैं।" थानेदार साहब क्या समझें; वह क्या जानें, मुझ से पूछा, "इस गाँव में काँग्रेस है? मैंने सोचा—युधिष्ठिर की तरह सत्य की रक्षा करूँ तो असत्य भाषण का पाप न लगेगा।" कहा—"इस गाँव के लोग तो कांग्रेस का मतलब भी नहीं जानते।" इतना कहकर मैंने सोचा—"अब ज्यादा बातचीत ठीक न होगी।" उठकर खड़ा हो गया, और थानेदार साहब से कहा—"अच्छा मैं चलता हूँ। जरा डाकखाने में काम है। चिट्ठीरसा हफ्ते में दो ही दिन गश्त पर आता है। मेरी जरूरी

चिट्टियाँ होती हैं और रजिस्ट्री, अख़बार, मासिक पत्रिकाएँ आती हैं, फिर उस गाँव में हम लोगों की लाइब्रेरी भी है, जाना पड़ता है।" थानेदार साहब ने पूछा—"कांग्रेस की चिट्ठियाँ आती हैं ?" "नहीं, मेरी अपनी।" मैं चला आया। थानेदार साहब ज़मींदार साहब से शायद नाराज़ होकर गये।

इससे बचाव हुआ, पर मुकदमा चलता रहा; ज़मींदार आनरेरी मजिस्ट्रेट ने, जिनके एक रिश्तेदार ज़मींदार की तरफ से वकील थे, किसानों पर जमींदार की डिगरी दे दी। बाद को चतुरी वगैरह की बारी आई। दावे दायर हो गये, अब तक जो सम्मिलित धन मुकद्दमों में लग रहा था, सब खर्च हो गया। पहले की डिगरी में कुछ लोगों के बैल वगैरह नीलाम कर लिये गये। लोग घबरा गये। चतुरी को मदद की आशा न रही। गाँववालों ने चतुरी आदि के लिए दोबारा चन्दा न लगाया।

चतुरी सूखकर मेरे सामने आकर खड़ा हुआ। मैंने कहा—"चतुरी मैं शक्ति-भर तुम्हारी मदद करूँगा।"

"तुम कहाँ तक मदद करोगे काका ?" चतुरी जैसे कुएँ में डूबता हुआ उभड़ा।

"तो तुम्हारा क्या इरादा है ?" उसे देखते हुए मैंने पूछा।

"मुकदमा लड़ूँगा। पर गाँव वाले डर गये हैं, गवाही न देंगे।" दिल से बैठा हुआ चतुरी बोला।

उस परिस्थिति पर मुझे भी निराशा हुई। उसी स्वर से मैंने पूछा—"फिर, चतुरी ?"

चतुरी बोला—"फिर छेदनी–पिरकिया आदि मालिक ही ले लें।"

५

मैंने गाँव में कुछ पक्के गवाह ठीक कर दिये। सत्तू बाँधकर, रेल छोड़कर, पैदल दस कोस उन्नाव चलकर, दूसरी पेशी के बाद पैदल ही लौटकर हँसता हुआ चतुरी बोला—"काका, जूता और पुरवाली बात अब्दुल्-अर्ज़ में दर्ज नहीं है।"

आलोचना

कहानी के तत्व

कहानी का जन्म सब से पूर्व पाश्चात्य देशों में हुआ था। अतः उसके रूप एवं विधान के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों ने ही पूर्ण रूप से विचार किया हैं। इस की पुष्टि कैन्डी की वर्तमान कहानी सम्बन्धी अस्सी पृष्ठों की पुस्तिका, हडसन की 'हिस्ट्री आफ़ इंग्लिश लिटरेचर'. से हो जाती है। हिन्दी में डा० श्यामसुन्दर दास ने अपनी 'साहित्या-लोचन' नामक पुस्तक में इन्हीं योरोपीय विद्वानों के आधार पर कहानी-विधान और निम्नलिखित तत्वों का निर्देशन किया है।

१. **कथावस्तु (कथानक)**—कहानी में बहुधा जीवन के किसी एक ही भाग का चित्र अंकित किया जाता है। अतः कथाकार को कथावस्तु चुनते समय पूर्णतया सचेत रहना चाहिये। उसे चाहिये कि वह रोचक एवं भावात्मक प्रसंगों को लेकर ही अपनी कहानी या कथा की सृष्टि करे। उसे हर प्रसंग का वर्णन करते समय चातुर्य से काम लेना चाहिये। जिस प्रसंग के द्वारा वह कहानी लिखना चाहता है, उस से सम्बन्धित उन्हीं बातों को कहानी में अंकित या चित्रित करना चाहिये जो कहानी की प्रभावन्विति में सहायक सिद्ध हों और व्यर्थ के विस्तार भार से उसे बोझिल न कर दें। इसको निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है। (१) शीर्षक (२) कहानी का शरीर-प्रस्तावना मुख्यांश, चरम बिन्दु और पृष्ठ भाग।

२. **चरित्र-चित्रण**—आधुनिक कहानियों में इसका बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। प्राचीन गाथाओं में कथानक के वैचित्र्य को विशेष महत्व दिया जाता था, चरित्र चित्रण को कम। आधुनिक कहानियों में इसके

बिल्कुल ही विपरीत है। इनमें चरित्र-चित्रण की प्रधानता और कथा-नक के वैचित्र्य की न्यूनता है। वास्तव में देखा जाये तो चरित्र-चित्रण एक कला है। सफल कहानीकार कभी भी इससे उदासीन नहीं रहता। इसकी कई शैलियाँ देखी जाती हैं। इनमें विश्लेषणात्मक और नाटकीय शैलियां अधिक प्रचलित हैं। सफल कहानीकार बहुधा नाटकीय शैली का ही अवलम्बन लेता है। इसमें बहुधा पात्रों का चरित्र-चित्रण उनके क्रिया-कलापों के द्वारा ही व्यक्त किया जाता है। यह भी दो प्रकार की होती है। एक एकतात्मक और दूसरी घटना प्रधान। कुछ कहानियों में दोनों ही का समन्वय सुन्दर रूप से दृष्टिगत होता है। गुलेरीजी की 'उसने कहा था' कहानी इसका नमूना मात्र है। संकेतात्मक शैली में किये गये चित्रण की सब से बड़ी विशेषता यह है कि वह पाठकों के हृदय को शीघ्र ही प्रभावित कर लेता है। कथाकार अपने कला-कौशल से पाठकों की संवेदना एवं सहानुभूति को अधिक से अधिक उत्तेजित करता है। 'उसने कहा था' कहानी में लहनासिंह के चरित्र-चित्रण में ऐसी ही विशेषता के दर्शन होते हैं।

वैसे तो वर्णनात्मक और विश्लेषणात्मक शैली भी बुरी नहीं है। इतना अवश्य है कि इनमें चरित्र-चित्रण करते समय कथाकार को अधिक सजग रहना पड़ता हैं। कहानी में समास शैली अधिक उपयुक्त रहती है। होमवती की 'राब की मटकी' और जयशंकर प्रसाद की 'इन्द्रजाल' आदि कहानियों में इसी प्रकार की शैली में चरित्र-चित्रण किया गया है।

चरित्र-चित्रण की सफलता के लिये मनोवैज्ञानिकता, सजीवता और स्वाभाविकता का होना भी आवश्यक होता है। सजीवता के लिए तो कहानीकार को हास्य की योजना भी बनानी पड़ती है और किसी पात्र के चरित्र को सजीव बनाने के लिए उसके मानवी प्रकाश पर रोशनी डालनी पड़ती है। कभी-कभी कहानी की सफलता के लिए उसमें अन्तर्द्वन्द की स्थापना भी करनी पड़ती है।

३. कथोपकथन (संवाद)—इसका भी कहानी में विशिष्ट स्थान है। बहुत सी कहानियां तो इसी के द्वारा विकसित होती हैं। बहुत सी कहानियों का चरित्र-चित्रण भी इसी पर आधारित रहता है। इस लिए कहानीकार को इसकी (कथोपकथन) योजना में सचेत रहना चाहिये। ये जितने संक्षिप्त, संकेतात्मक, रोचक और व्युत्पन्नमतिमूलक होंगे उतने ही अच्छे रहेंगे। इनको स्वाभाविक और प्रभावात्मक बनाने के लिये पात्रों के अनुभवों एवं सात्विकों की ओर संकेत करना भी आवश्यक है। इनकी भाषा और शैली जितनी सरल और हृदयग्राही होगी उतनी ही कहानी सफल बन पड़ेगी।

४. देश-काल या वातावरण—वास्तव में देखा जाय तो कहानी की स्वाभाविकता और यथार्थता अधिकाँश रूप में उसके वातावरण पर आश्रित रहती है। अतः कहानी के तत्वों में देशकाल को भी महत्व दिया जाता है। इसके लिये कहानी में संकेत मूलक समास शैली ही अपेक्षित होती है। इस चित्रण में स्थान की विशेषता और रोचकता का होना नितान्त आवश्यक है इन्हीं विशेषताओं के द्वारा कहानी सफल बन सकती है।

५. भाषा-शैली—कहानियों की भाषा शैली की ओर भी कहानीकार को विशेष ध्यान देना चाहिये। उसकी कहानी की सफलता का अधिकाँश भाग इन्हीं दोनों पर आश्रित रहता है। शैली में जब तक सजीवता, संकेतात्मकता, रोचकता और प्रभावात्मकता नहीं होगी तब तक कहानी पाठकों के हृदय को आकर्षित नहीं कर सकेगी। इसके लिए कहानीकारों को अलंकारों की योजना बनानी पड़ती है या मुहावरों तथा लोकोक्तियाँ का प्रयोग करना पड़ता है। जयशंकर प्रसाद की शैली अलंकारिता के कारण सरस, हृदयग्राही और प्रभावपूर्ण प्रतीत होती है। यह निम्नलिखित पाँच प्रकार की होती है—

(१) **ऐतिहासिक शैली**—इसके अन्तर्गत कहानीकार अधिकाँश रूप में अन्य पुरुष के रूप में कहानी लिखते हैं। उसमें इतिवृत्तात्मक तिथि

और घटनाओं का विशेष उल्लेख किया जाता है। जैसे प्रसाद की 'पुरस्कार' कहानी में वर्णित शैली।

(२) **आत्मकथन प्रधान शैली**—इसके अन्तर्गत कहानियां प्रथम पुरुष में लिखी जाती हैं। उनको पढ़ते समय ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोई परिचित पुरुष अपनी आत्म-गाथा को कह रहा हो। जैसे प्रेमचन्दजी की 'शान्ति' कहानी में वर्णित शैली।

(३) **कथोपकथन प्रधान शैली**—इसमें लिखित कहानियों में कथोपकथन की प्रधानता होती है, हिन्दी में ऐसी कहानियों के दर्शन बहुत ही कम होते हैं। जैसे-विष्णु प्रभाकर की 'स्नेह' कहानी में वर्णित शैली।

(४) **पत्रात्मक शैली**—बहुत से कहानीकार पत्रों के उत्तर और प्रत्युत्तर में कहानियां लिखते हैं। वह पत्रात्मक शैली में लिखी गई कहानियाँ कहलाती हैं। जैसे—प्रेमचन्द की 'दो सखियाँ' कहानी।

(५) **डायरी शैली**—कुछ कहानीकार डायरी के पृष्ठों का ही उल्लेख करके कहानी कह डालते हैं। हिन्दी में इस प्रकार की कहानियाँ नहीं के बराबर हैं। प्रेमचन्दजी ने 'मोटे राम शास्त्री' की डायरी के नाम से दो तीन कहानियों की रचना की थी।

६. **उद्देश्य**—हर कहानी का कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। वह मनोरंजन का बड़े से बड़ा साधन मानी जा सकती है पर उसका प्राण नहीं बन सकती। आधुनिक कहानियों में अधिकाँश रूप में किसी सत्य की, चाहे वह मनोवैज्ञानिक हो या धार्मिक या अन्य किसी प्रकार का, प्रतिष्ठा की जाती है; पर कुछ कहानियाँ ऐसी भी लिखी गई हैं जिनका उद्देश्य किसी सत्य की प्रतिष्ठा न कर कहानी रसास्वादन करने वालों को केवल चरित्र वैचित्र्य में लीन करना होता है। ऐसी कहानियों के रचयिता अधिकांश रूप में कलावादी होते हैं। जो कहानीकार कला को जीवन के लिए मानते हैं, उन्हें अपनी कहानियों में किसी सत्य भाग की प्रतिष्ठा अवश्य करनी पड़ती है। गुलेरी जी की 'उसने कहा था'

कहानी में प्रेम के आदर्श की प्रतिष्ठा की गई है और उसमें त्याग की ओर विशेष संकेत किया गया है। इसी कारण वह इतनी लोक-प्रिय हो गयी है।

कहानियों की आलोचना

उपर्युक्त कहानी के तत्वों की कसौटी पर ही किसी कलाविद की कहानी को कसने पर ही यह सिद्ध किया जा सकता है कि वह सफल है या असफल, उसमें चित्रित घटना, रोचक एवं हृदयग्राही बन पाई है अथवा नहीं। अतः प्रस्तुत संग्रह में संगृहीत कहानियों का आलोचनात्मक अध्ययन नीचे किया जाता है।

प्रायश्चित

प्रेमचन्द

कथानक—स्वर्गीय प्रेमचन्द जी की इस कहानी के कथानक का आधार मानसिक अन्तर्द्वन्द्व है। एक अपराधी किस प्रकार अपने पुण्य द्वारा अपने कुकृत्यों की कालिमा को धोना चाहता है। बाबू मदारी लाल अपने सहपाठी सुबोधचन्द्र को अपने पदाधिकारी के रूप में देखकर ईर्ष्या की अग्नि में जलते रहते हैं। उसे नीचा दिखाने के अभिप्राय: से स्वयं पाँच हजार की चोरी कर फँसा देते हैं। मान-मर्यादा को खोकर जीवित रहना सुबोधचन्द्र के लिए असह्य है। अतः आत्म-हत्या कर लेते हैं। बाबू मदारीलाल उसके छोटे २ बच्चों और युवा विधवा का करुण क्रन्दन सुनकर पश्चाताप की ज्वाला में जलने लगते हैं। उसके प्रायश्चित स्वरूप सुबोध के सारे परिवार का भार अपने कन्धों पर ले लेते हैं। संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत कहानी का यही कथानक है जो बहुत सफल बन पड़ा है।

पात्रों का चरित्र-चित्रण—इस कहानी के मुख्य पात्र बरेली ज़िला

बोर्ड के हेडक्लर्क मदारीलाल और सहायक पात्र सैक्रेटरी सुबोधचन्द्र हैं। जहाँ मदारीलाल स्वार्थी और ईर्ष्यालू प्रकृति का है। वहाँ सुबोधचन्द्र नम्र, हँस-मुख और स्नेह-युक्त स्वभाव से ओत-प्रोत है। अपने मित्र से बड़ा पद होने पर भी उससे समता और प्रेम का व्यवहार रखता हैं। इसके विपरीत मदारीलाल बचपन से ही अपने मित्र सुबोध से घृणा करता है। उसके गुण उसे विष के समान लगते हैं। उसकी नीच प्रकृति अपने सहपाठी एवं मित्र को अपने ही पदाधिकारी के रूप में नहीं देख सकती। कार्यालय के अन्य कर्मचारियों को सुबोधचन्द्र के प्रति झूठी झूठी बातों के भड़काने से भी जब कार्य सिद्ध नहीं होता तो मदारीलाल उससे भी निकृष्ट कार्य पर उतर आता है। स्वयं पांच हजार के नोट मेज पर से उठाकर, उसे फँसा कर नीचा दिखाना चाहता है; किन्तु इस कुकृत्य का भयानक परिणाम स्वरूप अपने मित्र की मृत्यु को देखकर उसका मलिन हृदय पश्चाताप की ज्वाला से तप कर कुन्दन बन जाता है। चाहे वह कितना ही बुरा था; किन्तु सुबोधचन्द्र का प्राणान्त नहीं चाहता था। वह केवल उसे अपने समक्ष झुकाना चाहता था। इससे स्पष्ट है कि मदारीलाल में जहाँ पाशविकता की मात्रा अधिक थी वहाँ मानवता का अंश भी था, जिसके फलस्वरूप सुबोधचन्द्र की मृत्यु के पश्चात् उसके परिवार का पालन-पोषण कर अपने अपराध का प्रायश्चित्त आदर्श रूप में किया। अपनी गलती को मान लेना और उसका सुधार करना ही सब से बड़ी मानवता है।

कथोपकथन—प्रेमचन्द्र जैसे सफल कलाकार की कृति में सफल ही कथोपकथन हैं। छोटे छोटे सरल संवादों ने कहानी में प्राण फूँक दिए हैं।

देश-काल या वातावरण—कार्यालय का वातावरण प्रेमचन्द जी ने बड़े अच्छे ढंग से वर्णित किया है। वहाँ के क्लर्क, चपड़ासी आदि कैसे कार्य करते हैं, उसका दृश्य सफलता पूर्वक खींचा गया है।

आधुनिक समय में ऐसे दृश्य प्रायः देखने में आते हैं।

भाषा-शैली—प्रेमचन्द जी की भाषा उर्दू मिश्रित सरल सुबोध और मुहावरेदार है। वर्णनशैली प्रसार रूप में है। बात को खोल खोल कर बताना उनकी पुरानी आदत है।

उद्देश्य—प्रेमचन्द जी ने एक अपराधी के हृदय का अन्तर्द्वंद्व दिखा कर उसे आदर्श पथ की ओर अग्रसर कर अपना ध्येय पूर्ण किया है।

ममता

जयशंकर प्रसाद

कथानक— ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि का आधार लेकर भी जयशंकर प्रसाद की यह कहानी अतिथि सत्कार पर ही केन्द्रित है। रोहतास दुर्गपति के मंत्री चूड़ामणि की विधवा कन्या ममता ने किस प्रकार अपने पिता का वध करने वाली जाति के एक व्यक्ति को शरण दी। वह व्यक्ति साधारण मुग़ल न था बल्कि स्वयं हुमायूँ था। यही इस कथानक की मुख्य घटना है।

पात्रों का चरित्र-चित्रण—इस कहानी के मुख्य पात्रों चूड़ामणि, हुमायूँ (एक मुग़ल बादशाह के भेस में) और ममता में केवल ममता का ही चरित्र पाठकों को आकर्षित करता है। इसके शीर्षक से ही ममता के चरित्र की प्रधानता का अनुमान हो जाता है। ममता रोहतास दुर्गपति के मंत्री चूड़ामणि की अकेली दुहिता है। यद्यपि वैधव्य जीवन यापन करते समय भी उसे पिता की ओर से सभी सुख प्राप्त हैं फिर भी लेखक ने हिन्दू विधवा को संसार में सब से तुच्छ निराश्रय प्राणी माना है। शेरशाह द्वारा रोहिताश्व पर अधिकार करते समय ममता के पिता चूड़ामणि का वध हो जाने पर वह निराश्रय हो जाती है। तथापि ममता एक शौर्य की प्रतीक ब्राह्मणी

विधवा है, जो जीवन की कठिनाइयों का सामना करने पर तत्पर रहती है। उसकी महानता का परिचय पाठकों को उस समय मिलता है जब एक थके हारे पथिक को रात्रि के समय वह आश्रय देती है, यद्यपि उसके पिता का वध करने वाली यवन जाति से ही वह मुग़ल सम्बन्धित होता है। ममता का स्वाभिमान ही उसके चरित्र की विशेषता है। वह अपनी झोपड़ी को बादशाह के आदेश से मकान में परिवर्तित होने को स्वाभिमान का पतन समझती है। वृद्धावस्था में भी जब हुमायूँ के सिपाही उसके आश्रय स्थान को स्थाई रूप में निर्मित कराने के लिए आते हैं तो उसके स्वाभिमान की झलक इन शब्दों से स्पष्ट हो जाती है।—**"मैं आजीवन अपनी झोंपड़ी खुदवाने के डर से भयभीत ही थी। भगवान् ने सुन लिया, मैं आज इसे छोड़े जाती हूं। अब तुम इसका मकान बनाओ या महल, मैं अपने चिर-विश्रामगृह में जाती हूँ।"** इन शब्दों के साथ ही उसके प्राण पखेरू उड़ जाते हैं। यही ममता के असाधारण चरित्र का प्रमाण है।

कथोपकथन—प्रसाद जी कवि होने के साथ साथ नाटककार भी रहे हैं। फलस्वरूप आप की कहानियों में नाटकीय छटा स्वयं आ ही जाती है। आप के संवाद पात्रों के चरित्र पर भी प्रकाश डालते हैं।

देश-काल या वातावरण— प्रसाद जी हिन्दू संस्कृति और इतिहास के चितेरे हैं। इतिहास के पन्नों को उलटना और संस्कृति की प्रतिष्ठा करना प्रायः सर्वदा उनका लक्ष्य रहा है। मुग़ल राज्य स्थापना के आरम्भ काल की यह घटना, स्थान, काल और वातावरण के अनुसार ठीक ही बैठती है।

भाषा-शैली—आप की भाषा में संस्कृत शब्दों का बाहुल्य होने के कारण शुद्ध एवं ठेठ हिन्दी के दर्शन होते हैं। प्रेमचन्द जी के समान पात्रानुकूल भाषा की चिन्ता आप ने कभी नहीं की।

एक मुगल भी ऐसी शुद्ध हिन्दी बोल रहा है— "**छल, ! नहीं, तब नहीं, स्त्री ! जाता हूँ, तैमूर का वंशधर स्त्री से छल करेगा ? जाता हूँ ! भाग्य का खेल है।**" प्रेमचन्द इस 'छल' के स्थान पर 'धोखा' और 'वंशधर' के स्थान पर 'खानदान' का प्रयोग करते हैं। यह कमी अवश्य आप की भाषा शैली में खटकती है। इस पर भी आप की वर्णन शैली कठिन होते हुए भी अत्यन्त प्रभावशाली है।

उद्देश्य—प्रस्तुत कहानी में प्रसाद जी ने एक विधवा स्वाभिमानी स्त्री का चरित्र चित्रित किया है। अपने प्राणों का भय त्यागकर, शरण में आये हुए शत्रु को आश्रय देना और अतिथि सत्कार को जीवन से भी अधिक महत्व देना हिन्दू ब्राह्मणी का धर्म है। धर्म-परायण हिन्दू ललना अपने स्वाभिमान को महलों, मकानों की अपेक्षा टूटी-फूटी झोंपड़ी में सुरक्षित रखने की क्षमता रखती है। इस कथानक का यह उद्देश्य है।

उसने कहा था

चन्द्रधर शर्म्मा गुलेरी

कथानक—गुलेरी जी की इस कहानी का कथानक तो इसके प्राण है। इसके द्वारा आदर्श प्रेम की अभिव्यक्ति लहनासिंह के त्याग से हुई है। शैशव काल से ही जिस लड़की के प्रति लहनासिंह को प्यार होता है, अपनी जान जोखिम में डाल उसकी प्राण-रक्षा करता है। बड़े होकर भी उसके पति और पुत्र को बचाने की कसम को निभाते-निभाते अपनी जान की बाजी लगा देता है। यह उच्च आत्मीय स्नेह का सुन्दरतम रूप गुलेरी जी के इस कथानक में दिखाया है।

पात्रों का चरित्र-चित्रण—लेखक ने दो-चार पात्रों पर ही कथानक को आधारित किया है। लहनासिंह और सूबेदारनी तो इस कहानी की नायिक-नायिका के रूप में मुख्य पात्र हैं। सहायक पात्रों में सूबेदार

वजीरासिंह, बोधासिंह आदि हैं। सभी का चरित्र-चित्रण अपने-अपने स्थान पर ठीक मात्रा में विकसित हुआ है। लहनासिंह शैशव काल में एक चंचल प्रकृति का बालक होता है; किन्तु उसकी चचलता में ही हृदय की निर्बलता भी छिपी हुई होती है, जिसे वह प्रदर्शित करना नहीं चाहता। इस स्वभाव को वह युवा होने पर भी नहीं छोड़ पाता। सूबेदारनी के प्रति अपने प्रेम को हृदय में रख कर ही उसके प्राणों को ही नहीं अपितु उसके पति और पुत्र को भी लड़ाई के मैदान में मृत्यु के पंजे से छुड़ा लेता है, पर इसके लिए उसे अपना जीवन देना पड़ जाता है। लहनासिंह आदर्श प्रेमी ही नहीं, एक चतुर और वीर सैनिक भी है। वास्तव में उसका चरित्र एक आदर्श की प्रतिमा है।

कथोपकथन—इसके संवाद तो बहुत ही चुटकीले और प्रभावपूर्ण हैं। **"क्या तेरी कुड़माई हो गई"** और उसके उत्तर 'धत्' में तो सारी कहानी का सार छिपा हुआ है। इसी प्रकार सैनिकों की आपसी बात-चीत में वास्तविकता की स्पष्ट झलक दृष्टिगत होती है। संवाद पात्रानुकूल हैं।

देश-काल या वातावरण—इस कहानी में द्वितीय महायुद्ध में जर्मन के साथ अंग्रेजों के युद्ध में भारतीय सैनिकों की वीरता का अच्छा वर्णन मिलता है। युद्ध क्षेत्र का वातावरण बहुत ही वास्तविक जान पड़ता है। इसी प्रकार अमृतसर की सड़कों का विवरण बहुत ही चित्रात्मक बन पड़ा है।

भाषा-शैली—गुलेरी जी की शैली विवरणात्मक है। उसकी रोचकता और स्वाभाविकता कहीं भी जाने नहीं पाई है। आप की भाषा अत्यन्त लुभायमान गुणों से युक्त है। पात्रानुकूल भाषा लिखने में आप दक्ष थे। पंजाब के वातावरण को स्पष्ट करते-करते आपने 'कुड़माई (सगाई) 'तीमियां' (स्त्रियाँ) आदि अनेक पंजाबी शब्दों का प्रयोग किया है। भाषा प्रवाह पूर्ण है। आरम्भ में ही लम्बे-लम्बे विवरण पढ़ते हुए भाषा की रोचकता के कारण पाठक उकताते नहीं।

उद्देश्य—गुलेरी जी ने कथानक में ऐसे आदर्श प्रेम की झलकी

दिखायी है जो केवल त्याग करता है और उसके उपलक्ष में कुछ भी नहीं चाहता। वे अपने उद्देश्य में सफल हुए हैं।

घीसा

महादेवी वर्मा

कथानक—महादेवी वर्मा की यह हृदय स्पर्शी संस्मरण कथा उनके अतीत के चलचित्र की एक झाँकी है। इसका कथानक एक नन्हे से गुरु भक्त शिष्य घीसा के व्यक्तित्व के आस-पास घूमता रहता है। इस अपेक्षित बालक ने लेखिका के हृदय में एक अमिट स्थान प्राप्त कर लिया है। उसी का स्पष्टीकरण इस चरित्र प्रधान कहानी में हुआ है।

पात्रों का चरित्र-चित्रण—इस कहानी का प्रमुख पात्र घीसा ही है। आरम्भ से लेकर अन्त तक घीसा की गुरु-भक्ति का चरित्र ही अधिक प्रकाशित हुआ है। घीसा एक निर्धन कोरी बालक है। उसका पिता उसके जन्म से पूर्व ही ईश्वर को प्यारा हो गया। उस समय घीसा की माँ गर्भवती थी। पति की मृत्यु उपराँत उसने घीसा को जन्म दिया। जितना अभिमानी और भला बनने का इच्छुक घीसा का पिता था उतनी ही गर्वीली उसकी माँ थी। अपने माता पिता के संस्कार से बालक भी अपने स्वाभिमान को ठेस नहीं लगने देता। अपने गुरु को विदा देते समय जो तरबूज घीसा लेकर आता है, पैसे न होने पर अपना नया कुरता देकर गुरु दक्षिणा का भार उतार देता है। घीसा नाम से जितना कुरुप था उतना ही शरीर से, जैसा कि वर्णित है—"पक्का रंग पर गठन में और अधिक सुडौल, मलिन मुख जिसमें दो पीली पर सचेत आँखें जड़ी सी जान पड़ती थीं कस कर बँद किए हुए पतले होठों की दृढ़ता और सिर पर खड़े हुए छोटे-छोटे रुखे बालों की उग्रता, उसके मुख की संकोच भरी कोमलता से विद्रोह कर रही थीं। उभरी हुई हड्डियों वाली गर्दन को सम्भाले हुए, झुके हुए कंधों से रक्त हीन मट-

मैली हथेलियों और टेढ़े मेढ़े कटे हुए नाखूनों युक्त हाथों वाली पतली बाहें, ऐसी-ऐसी झूलती थी जैसे ड्रामा में विष्णु बनने वाले की दो नकली भुजाएँ। निरन्तर दौड़ते रहने के कारण उसके लचीले से दुबले पैर ही विशेष पुष्ट जान पड़ते थे। बस ऐसा ही था वह घीसा।" यह तो था घीसा का शारीरिक सौंदर्य।

वह एक सचेत और योग्य विद्यार्थी था। पढ़ने, उसे सबसे पहले समझने, उसे व्यवहार के समय स्मरण रखने, पुस्तक में एक भी धब्बा न लगाने, स्लेट को चमचमाती रखने और अपने छोटे से छोटे काम का उत्तरदायित्व बड़ी गम्भीरता से निभाने में उसके समान कोई चतुर न था।

घीसा के इन गुणों ने लेखिका को इतना आकर्षित किया कि जिस बालक से सब खिचे-खिचे रहते थे, उसी को उसकी मां से मांग कर स्थायी रूप से अपने पास रखने की इच्छा बन गई। घीसा जितनी अपने गुरु की आज्ञा मानता था, उसका प्रमाण गीले कपड़ों में ही स्कूल आना है; क्योंकि उसके गुरु ने साबुन से धुले साफ कपड़े पहन कर स्कूल आना है, ऐसा आदेश दिया था। साथ ही साथ वह अपनी माँ और पालित कुत्ते के बच्चे को भी प्यार करता है। अपने गुरु से जलेबियाँ लेकर सीधा घर जाकर अपनी मां और पिल्ले का भाग निकाल तब स्वयं खाता है। इस प्रकार घीसा का चरित्र अत्यन्त सुन्दर बन गया है।

कथोपकथन—इसके कथोपकथन अन्य पुरुष में ही लिखे हुए हैं। वास्तव में यह कहानी नहीं अपितु आत्मकथा के रूप में लिखा गया एक संस्मरण है। इसमें संवाद शैली को कम ही अपनाया जाता है। इस दृष्टि से इस कमी का समाधान हो जाता है।

देश-काल या वातावरण—महादेवी वर्मा ने अपने जीवन से सम्बन्धित इस कहानी में ग्रामीण वातावरण का सजीव चित्रण अंकित किया है। गंगा के पार झूँसी के खंडहर और उसके आसपास के गांवों में रहने वाले लोग, उनका पहनावा और रहन-सहन ही नहीं अपितु उनकी

प्रत्येक गतिविधि का वर्णन पहले दो पृष्ठों में भरा पड़ा है। इस प्रकार इस संकलन त्रयी को ठीक प्रकार निभाया गया है।

भाषा-शैली—प्रस्तुत कहानी एक आत्मकथा की झलकी होने के कारण आत्म प्रेरक शैली में लिखी गई है। अतः इसे कहानी के बजाय संस्मरण कथा कहना अधिक उचित है। इसकी भाषा में कवित्व की पुट है; क्योंकि लेखिका मुख्यतया एक कवयित्री है।

उद्देश्य—इस संस्मरण कथा का उद्देश्य प्रारम्भ में ही लेखिका ने स्पष्ट कर दिया है। "**उस मलिन सहमे नन्हें से विद्यार्थी की सहसा याद जिसकी असीम गुरु भक्ति ने उसे द्रोणाचार्य के पद पर सुशोभित कर दिया।**" इस आदर्श चरित्र को पाठकों के समक्ष रखना ही लेखिका का मुख्य लक्ष्य है।

घुन

विश्वम्भर नाथ शर्म्मा कौशिक

कथानक—कौशिक जी ने इस कथानक में दो ग्रामीणों की मूर्खता का दृश्य अंकित किया है जो आपसी वैमनस्य के आवेश में मुकद्मेबाजी कर सारी पूँजी नष्ट कर देते हैं। गाँव के पटवारी और जमींदार आदि लोग मिलकर उनकी मूर्खता का लाभ उठाते हैं।

पात्रों का चरित्र-चित्रण—कामतासिंह और लल्लूसिंह तो दो मूर्ख ग्रामीण हैं। मुखिया बरजोरसिंह हृदय के अच्छे आदमी हैं, वे उनकी आपसी शत्रुता को घर पर ही समझौते के रूप में मिटा देना चाहते हैं। किन्तु पटवारी जमींदार के साथ मिलकर कामतासिंह और लल्लूसिंह को उकसाकर प्रति नायक के रूप में इस कहानी में प्रस्तुत किए गये हैं। कामतासिंह और लल्लूसिंह दोनों अशिक्षित देहाती हैं जो लेखक के शब्दों में कानून के दांव पेंच को कम समझते हैं—अधिकतर वकीलों के भरोसे

रहते हैं। इन वकीलों और गाँव के अन्य आदमियों के भड़काने से एक बीस रुपये के शीशम के पेड़ के लिए दोनों हाईकोर्ट तक लड़े। कामता-सिंह जीतकर और लल्लूसिंह हार कर कंगाल हो गए। इससे स्पष्ट है कि दोनों हठी स्वभाव के थे। दोनों में स्वाभिमान की मात्रा आवश्यकता से अधिक थी। यही है उन दोनों का चरित्र चित्रण।

कथोपकथन—इस कहानी के कथोपकथन या संवाद बहुत ही रोचक एवं प्रवाह पूर्ण हैं। उनकी भाषा पात्रानुकूल है। इन संवादों से कहानी को विकसित होने का अच्छा अवसर मिलता है।

देश-काल या वातावरण—इस कहानी में ग्रामीण झगड़ों का वातावरण प्रस्तुत किया गया है। कचहरी में जिस प्रकार वकीलों के मुंशी दूसरों की जेब से रुपया खोंसने की ताक में रहते हैं, वैसे ही जमींदार, पटवारी भोले भाले ग्रामीणों को अंग्रेजी जमाने में लूटते थे। यह वातावरण तो आजकल भी उसी प्रकार विद्यमान है।

भाषा-शैली—कौशिक जी की वर्णन एवं भाषा शैली पर कहीं-कहीं प्रेमचन्दजी की छाया पड़ती है। यही देखिए—"**सो इस धोके में न रहें! टका धरेंगे, पैसा उठावेंगे। दिल्लगी नहीं है—यह अङ्गरेज राज है। एक दरखास्त में पिड़ी बोल जायेगी। पटवारी और जमींदार कोई काम न आयेंगे।**" इसी प्रकार के ग्रामीण मुहावरों का प्रयोग जहाँ-तहाँ आपकी भाषा में मिलता है।

उद्देश्य—कौशिक जी ने इस कहानी में मुकद्मेबाजी को घुन बताया है, जो धीरे-धीरे सारे परिवार को नष्ट कर देता है। लल्लूसिंह ने एक छोटे से बीस रुपये के शीशम के पेड़ के लिए सैंकड़ों रुपये मुकद्मेबाजी की भेंट चढ़ा दिये। सच पूछो तो इस घुन ने दोनों के जीवन को नष्ट कर दिया। लेखक ने इसी ओर से पाठकों को सचेत किया है।

पान वाला

सुमित्रा नंदन पंत

कथानक—हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि पंत ने 'पान वाला' का कथानक लिखकर यह प्रमाणित किया है कि पद्य के समान गद्य के क्षेत्र में भी उनकी योग्यता पीछे नहीं। 'पानवाला' वास्तव में एक कहानी नहीं, बल्कि एक भाग्यहीन अनाथ बालक पीताम्बर की जीवन कथा है, जिसे ज़िन्दगी की ठोकरों ने एक पान वाला बना दिया है। अच्छे घराने में जन्म लेकर भी अपने आत्म स्वाभिमान को सुरक्षित रखने के लिए क्यों पानवाला बनना स्वीकार किया, यही कहानी का तथ्य है ?

पात्रों का चरित्र-चित्रण—इस कहानी में केवल एक ही पात्र पीताम्बर सारे कथानक का आधार है। जैसा पीताम्बर अब है वैसा पहले था। उच्च घराने में जन्म लिया; किन्तु बचपन में ही माता-पिता का साया उठ जाने से अपने बड़े भाई यज्ञदत्त के संरक्षण में ही उसका लालन-पालन हुआ; किन्तु अपने नम्र, सहनशील भाई के विपरीत यह सशक्त, सचेष्ट, आत्म-स्वाभिमानी युवक था। यही गुण गरीबी के कारण अवगुण बन गये। बड़े-बड़े घरानों के लड़कों की संगति ने उसे ऐश्वर्य की ओर प्रेरित किया। उसी लक्ष्य की पूर्ति ने पीताम्बर में चोरी की बुराई को जन्म दिया। भाई की जेब साफ करने के कारण घर से उसका सम्बन्ध छूट गया। उसके चरित्र का इतना पतन हुआ कि एक बार पान की दूकान जहाँ वह नौकर था। पांच रुपये वेश्यालय जाने के लिये चुरा लिये। चोरी पकड़ी गई। वहां से धक्के खाकर पानवाला बनना पड़ा। उसकी प्रवृत्ति और स्वभाव में समय के साथ अनेक परिवर्तन आये। उसका हंस-मुख और प्रसन्न-चित्त चेहरा चिड़चिड़े पन से आतंकित रहने लगा। संसार से उसे विरक्ति होने लगी। इसका कारण थी उसकी पत्नी और एक मात्र सन्तान की मृत्यु। अब केवल एक पुराना मिट्टी का खिलौना ही उसका जीवन साथी है, ठीक वैसे ही

जैसे मानव जीवन के पश्चात् केवल मिट्टी ही शेष रह जाती है बाकी सब कुछ मिट जाता है।

कथोपकथन—इस कहानी में कथोपकथन एवं संवाद तो नहीं के बराबर हैं।

देश-काल या वातावरण—इन तीनों का ठीक प्रकार से निभाव हुआ है।

भाषा-शैली—प्रस्तुत कहानी में पंतजी की भाषा पद्यात्मक है। उसमें स्थान-स्थान पर उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के दर्शन होते हैं। लक्षरण और व्यंजना शक्ति की भरमार है। अलंकार-युक्त भाषा का एक उदाहरण है—..."**भूख-दारिद्र्य, निराशा, आत्म-पीड़न, असन्तोष का भग्न जीर्ण खंडहर है। गालों की गोल रेखाओं को संसार ने नींबू की तरह चूस कर टेढ़ा-मेढ़ा विकृत कर दिया है।**" वर्णन शैली व्याख्यात्मक है। संक्षिप्त में यह कहानी पीताम्बर की आत्मकथा है।

उद्देश्य—पन्तजी ने पीताम्बर का चरित्र खींचकर क्रूर समाज पर तीखे कटाक्ष किये हैं, जिसमें गरीबी मनुष्य का सबसे बड़ा अवगुण है। जीवन की ठोकर मनुष्य को क्या से क्या बना देती है, यही इस कथानक का उद्देश्य है ?

ग्रामीणा

सुभद्रा कुमारी चौहान

कथानक—सुभद्रा कुमारी चौहान की एक सामाजिक कहानी में गाँव और शहर के वातावरण की विभिन्नता के फलस्वरूप होने वाले कुपरिणामों की ओर संकेत है। गांव के स्वच्छन्द प्राकृतिक जीवन की अभ्यस्त सोना का शहर में विवाह हो जाने पर किस प्रकार करुणा पूर्ण

अंत हो जाता है। यही छोटा सा किन्तु हृदय को द्रवित करने वाला इस कहानी का कथानक है।

चरित्र-चित्रण—इस कहानी में पंडित रामधन तिवारी, उनकी शहर में ब्याही जाने वाली बहिन जानकी—नारायण, तिवारी की पुत्री सोना, सोना के पति विश्व मोहन आदि बहुत से पात्र हैं; किन्तु सबसे अधिक आकर्षक चित्रण सोना का ही हो पाया है। ग्रामीणा के रूप में सोना को ही लेखिका ने प्रस्तुत किया है। तिवारी जी की यह इकलौती लाडली पुत्री बड़े जप तप से प्राप्त हुई थी। इसी कारण बड़े प्यार और स्वच्छन्दता में उसका लालन-पालन हुआ। घर पर ही उसे रामायण, महाभारत जैसी धार्मिक पुस्तकों को पढ़ने योग्य शिक्षा दी गई। सोना एक सुन्दर, सुकुमार ग्रामीण बालिका थी जिस में बचपन का नटखट पन और खेल-कूट-कूट कर भरे थे। वह विवाह जैसे प्रौढ़ विषय से बिल्कुल अनभिज्ञ थी। एक तो अल्पायु का विवाह और वह भी शहर के बन्द वातावरण में। उसकी भी वही दशा होती है जो एक स्वच्छन्द पक्षी को सोने के पिंजरे में बन्द करने के बाद होती है। इसी प्रकार सोना भी उस घुटन में दम तोड़ देती है। वह एक भोली-भाली बालिका है। सुसराल के कठोर नियमों का पालन करना चाह कर भी अपनी स्वतंत्र प्रवृत्ति के कारण नहीं कर पाती। इस मायावी एवं प्रपंच से भरी हुई दुनिया में उसके लिए रहना असम्भव सा प्रतीत होता है। इसी कारण आत्मघात से ही वह उससे मुक्ति पाती है।

कथोपकथन—इस कहानी में कथोपकथन बहुत कम है, जो दिए गये हैं वे स्वाभाविक और प्रवाह युक्त हैं। एक अबोध ग्रामीण बालिका का यह प्रश्न—"**माँ! विवाह कैसा होता है और क्यों होता है?**" बहुत ही वास्तविक जान पड़ता है। संवाद छोटे, सरल और रोचक हैं।

देश-काल या वातावरण—इस कथानक से गाँव और शहर के वातावरण का तुलनात्मक परिचय मिलता है। वर्तमान काल में गाँव और शहर के जीवन की विषमता भी एक समस्या है, जिसका मेल न

होने के कारण ऐसे-ऐसे करुणा पूर्ण अन्त देखने को मिलते हैं।

भाषा-शैली—सुभद्रा कुमारी चौहान की भाषा सरल, सुबोध और प्रवाहमयी है। उनकी वर्णन शैली संवादों और विवरणों से युक्त है। प्रसार की अपेक्षा संक्षेप शैली को ही अधिक अपनाया गया है।

उद्देश्य—लेखिका ने गाँव और शहर की अभिन्नता और विषमता के कुपरिणामों की ओर संकेत किया है। सोना एक ग्रामीण बालिका के रूप में इस समस्या को पाठकों के सम्मुख लाने का मुख्य साधन मात्र है। गाँव के स्वच्छ वातावरण में खिली हुई सोना की जीवन कली कैसे शीघ्र ही शहर की घुटन से मुरझा जाती है। इस कथानक का उद्देश्य इसी से स्पष्ट हो जाता है।

मिठाईवाला

भगवती प्रसाद वाजपेयी

कथानक—कहने के लिए वाजपेयीजी की इस कहानी का कथानक एक मिठाई वाले का चरित्र ही है पर वास्तव में उसके एक-एक शब्द में भावात्मकता भरी हुई है। एक सम्पन्न व्यक्ति अपने मृत बच्चों की स्मृति का घाव अन्य बालकों को खिलौने, मुरली और मिठाई बेचकर भरता है। संक्षिप्त में यही इस कहानी का कथानक है।

चरित्र-चित्रण—मिठाईवाला सर्व प्रथम एक खिलौने वाले, द्वितीय मुरली वाले और तृतीय मिठाई वाले के रूप में पाठकों के सम्मुख आता है। वह एक सम्भ्रान्त एवं प्रतिष्ठित परिवार से सम्बन्धित था जैसा कि उसकी आत्मकथा से स्पष्ट है; किन्तु अपनी स्त्री और दो बच्चों की मृत्यु ने उसका सोने का संसार लूट लिया इस पर भी उस धैर्यवान को भगवान से कोई शिकायत नहीं। वह अपने व्यक्तिगत दुःख का समष्टिगत सुख में आरोप कर देता है। यह मिठाई वाले की महानता है। वह धन

का लालची नहीं; तभी तो इतनी सस्ती वस्तुएँ बेचता है। उसकी व्यावहारिकता में भी भावुकता कूट-कूट कर भरी है। वह वात्सल्य की भूख अन्य बच्चों को प्यार कर, उनसे मीठा बोल, मिटा लेता है। मिठाईवाला एक कुशल व्यापारी भी है। उसका मधुर सम्भाषण, उसका बच्चों से सद्व्यवहार, उसकी सत्य-प्रियता उसे शीघ्र ही नगर में प्रसिद्ध कर देती है। केवल बच्चे ही नहीं स्त्री पुरुष भी उसकी ओर आकर्षित होते हैं। विजय बहादुर की पत्नी रोहिणी भी उन्हीं में से एक है जो उसकी करुण गाथा को सुन कर ही द्रवित हो जाती है। मिठाई वाला केवल सस्ते दाम ही नहीं लगाता बल्कि कभी-कभी निर्धन बच्चों को यह कहकर—**"तुम्हारी माँ के पास पैसे नहीं ! अच्छा, तुम भी यह लो।'** दया के कारण बिना दाम लिये वस्तुएँ दे जाता है। विधाता के क्रूर हाथों से त्रसित होकर भी मिठाईवाला सन्तोषी व्यक्ति है। अब भी उसे धन की कमी नहीं। उसके अपने शब्दों में—**"पैसे की कमी थोड़े ही है आप की दया से पैसे तो काफी हैं। जो नहीं है, इस तरह उसी को पा जाता हूँ।"** यह साधारण सा व्यवसाय उसकी वात्सल्य की भूख को शान्त करता है। लेखक ने इसका अत्यन्त ही करुणात्मक चित्र चित्रित किया है।

कथोपकथन—गली-मौहल्ले में फेरी लगाने वालों के समान मिठाई वाले और उसके ग्राहकों के रूप में बच्चों और बड़ों के संवाद बहुत ही सुन्दर बन पड़े हैं। अपनी तोतली भाषा में बच्चों का मिठाई, खिलौने आदि मांगना कितना स्वाभाविक है। इन शब्दों में उसकी झाँकी देखिये—**"अम बी लेंदे मुल्ली, औल अम भी लें दे मुल्ली।"** वस्तुओं के दाम पूछते हुए बच्चों के सम्वाद—**"इछका दाम क्या है औल इछका, औल इछका।"** कितने स्वाभाविक और प्यारे लगते हैं। मिठाई वाले के बड़े ग्राहकों के कथोपकथन भी बड़े प्रभावोत्पादक हैं। अपनी मिठाई की प्रशंसा करते हुए कैसी व्यावहारिक बातें करता है एक दुकानदार— **"कितनी मिठाई दूँ मां ? यह नयी तरह की मिठाइयां हैं—रंग-बिरंगी,**

कुछ-कुछ खट्टी, कुछ-कुछ मीठी, जायकेदार बड़ी देर तक मुँह में टिकती है। जल्दी नहीं घुलतीं। बच्चे इन्हें बड़े चाव से चूसते हैं। इन गुणों के सिवाय ये खाँसी भी दूर करती हैं। कितनी दूँ ? चपटी गोल पहलदार गोलियाँ पैसे की सोलह देता हूँ।" ऐसे संवादों ने कथानक में प्राण फूँक दिये हैं।

देशकाल या वातावरण—नगर में फेरी वालों का वातावरण बहुत ही स्वाभाविक बन पड़ा है। आज भी इसी प्रकार का वातावरण आपको प्रत्येक गली मोहल्ले में मिलेगा।

भाषा तथा वर्णन शैली—इस कहानी की भाषा पात्रानुकूल है। भाषा में सरलता, प्रवाह, मधुरता आदि अनेक गुण हैं। बच्चों की तोतली भाषा कितनी उपयुक्त जान पड़ती है। वर्णन शैली भी अत्यन्त प्रभावोत्पादक है।

उद्देश्य—वाजपेयी जी ने इस कथानक के द्वारा वात्सल्य का आदर्श रूप उपस्थित किया है। अपने मृत बच्चों को अन्य लोगों के बच्चों को देखकर भुलाना ही इस कहानी का उद्देश्य है। सन्तान की कमी को मिठाईवाला बन कर पूरा किया जा सकता है अथवा उसी के समान किसी भी बच्चे को पुचकार कर इस समस्या की पूर्ति हो सकती है। यही लेखक का उद्देश्य है। इसी में वह पूर्णतया सफल हुआ है।

माँ

उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

कथानक—'अश्क जी' ने इस कहानी में माँ की ममता की विवशता का रूप दिखाया है। जगत की माँ एक शराबी की पत्नी होने पर अपनी ममता से विवश होकर अपने विधुर बेटे का पुनर्विवाह किन-किन कठिनाइयों का सामना करके करती है। अन्त में स्वार्थी बेटे और शराबी पति की सहायता से निराश होकर बेटे की शादी के लिए मांगे

हुए ऋण को चुकाने में स्वयं को असमर्थ समझ कर प्राणों का त्याग कर देती है। यही एक अबला नारी के मातृत्व-जीवन की झाँकी है।

पात्रों का चरित्र-चित्रण—इस कहानी में एक शराबी पति पंडित जी और एक स्वार्थी बेटे जगत के अतिरिक्त माँ का ही चरित्र मुख्यतया विकसित हुआ है। एक माँ अपने बेटे का उजड़ा हुआ घर बसाने के लिये किस प्रकार झूठ सच बोलकर, अपने स्वाभिमान को भूल कर, उधार माँग माँग कर, अपने आभूषण रखवाने का वचन देकर, रुपया ऋण लेकर अपने लक्ष्य की पूर्ति करती है। अन्त में जब संसार की स्वार्थ भरी झाँकी देखकर निराश हो जाती है तो आत्म हत्या कर लेती है। वह नारी माँ का कर्त्तव्य तो पूर्ण कर जाती है; किन्तु अन्य सहेली सम्बन्धियों को दिये हुए वचन न निभा सकनें के कारण उनके मुँह दिखाने की अपेक्षा अफीम खाकर मर जाना श्रेयस्कर समझती है। अश्क जी ने एक शराबी की पत्नी और एक स्वार्थी बेटे की माँ के रूप में इस अबला का सजीव चित्रण किया है।

कथोपकथन—इस कहानी में संवाद कम ही हैं, जो हैं वे साधारण कोटि के हैं। माँ और चौधराइन के संवाद बहुत ही स्वाभाविक जान पड़ते हैं।

देश-काल या वातावरण—इस कहानी में वर्तमान समाज का ही वातावरण है। कुव्यसन और निर्धनता जैसे दो दो अभिशाप होने पर एक माँ को आधुनिक भारतीय समाज में बेटे की दूसरी शादी करने में क्या क्या कठिनाइयाँ होती हैं। इस करुणा से पूर्ण चित्र को 'अश्कजी' ने इस कहानी में स्पष्ट किया है।

भाषा-शैली—'अश्क जी' की भाषा सरल, सुबोध और उर्दू मिश्रित तथा प्रवाह युक्त है। कहीं कहीं व्यंजना शक्ति के भी दर्शन होते हैं—"**कितनी बार जगत को बात लगी—पर पण्डित जी की 'ख्याति' के कारण टूट गई।**' इतना ही नहीं विशेषण विपर्यस के उदाहरण भी जहाँ तहाँ मिल जाते है। "**कौन ऐसा कसाई बाप होगा,**

जो अपनी लड़की को ऐसे शरीफ आदमी के घर ब्याहना पसन्द करेगा।"
कहीं कहीं मुहावरों का भी प्रयोग हुआ है। जैसे—आशाओं पर पानी फिरना आदि।

उद्देश्य—अश्क जी ने इस कथानक में एक अबला माँ का त्याग दिखाया है जो हिन्दू ललना थी, शिकायत का एक शब्द भी होंठों पर लाना पाप समझती थी। कष्ट सहती थी, दुःख झेलती थी। पर जबान न हिलाती थी, अन्त में जब कष्ट असह्य हो गये तो आत्महत्या को ही अंगीकार किया, उफ तक न की। इस करुणा से ओतप्रोत विवश ममता का वास्तविक चित्रण करने में अश्क जी शतप्रतिशत सफल हुए हैं।

स्नेह

विष्णु प्रभाकर

कथानक—विष्णु प्रभाकर ने स्नेह का उच्चतम रूप दिखाने के लिए यह अनोखा कथानक रच दिया है। उमा अपने पुत्र को त्याग कर एक अनाथ बालक पर स्नेह का स्रोत बहाने को तत्पर हो जाती है। यह तो नारी के वात्सल्य की चरम सीमा है। जिसके दर्शन इस छोटे से कथानक में स्पष्ट रूप से हो जाते हैं।

पात्रों का चरित्र-चित्रण—दो प्रतिकूल पात्र तो हैं उमा और निरुपमा। अनाथ रूप में शशि का भी चरित्र दयनीय है। उमा के आदर्श पति रूप में अमूल्य का चरित्र तो केवल संकेतमात्र है। उमा और निरुपमा देवरानी और जेठानी के सम्बन्ध से एक दूसरे के बहुत निकट हैं। शशि बिन माँ बाप की सन्तान पर निरुपमा की जहाँ क्रूर दृष्टि है, वहाँ उमा की स्नेह और दयामयी दृष्टि सर्वदा उसी पर लगी रहती है। घर बदल लेने पर भी जेठानी की डाँट-डपट की चिन्ता न कर उमा शशि के लिये अपना स्नेहांचल फैलाये रखती है। यहाँ तक की अपनी सन्तान अशोक को निरुपमा को देकर शशि को ले आती है।

उमा वास्तव में स्नेह की मूर्ति है। इसके विपरीत निरुपमा एक क्रूर प्राचीन विचारों से घिरी हुई विधवा नारी है। जो अपने वैधव्य को बिन माँ बाप के बच्चे शशि के कारण ही मानती है। उसकी स्वार्थ-परता इतनी बढ़ जाती है कि वह चाहती है कि कोई भी शशि को दया-प्रेम की दृष्टि से न देखे। उससे उसे ईर्ष्या होती है। निरुपमा का यह चिड़चिड़ापन कदाचित उसके वैधव्य और सन्तान रहित होने के कारण हो। शेष पात्रों का चरित्र अधिक विकसित नहीं हो पाया है, और न ही उसकी आवश्यकता थी।

कथोपकथन—सारी कहानी में सरल, सुबोध, रोचक संवादों का जाल सा बिछा हुआ है, जिससे कथानक अधिक निखर उठा है। इस कथोपकथन शैली से पात्रों के चरित्र का भी विकास हुआ है।

देश काल या वातावरण—आधुनिक समाज में ऐसा वातावरण प्राय: घरों में मिलता है। इसमें करुणा मिश्रित स्नेह के दृश्यों की भरमार है।

भाषा तथा वर्णन शैली—भाषा सरल एवं प्रवाह युक्त है। समास शैली का प्रयोग हुआ है, जिस में रुचिकर कथोपकथन अधिक सहायक सिद्ध हुए हैं।

उद्देश्य—लेखक का उद्देश्य स्नेह की असाधारण महिमा की प्रतिष्ठा करना है। अपनों से तो सारा संसार प्यार करता है; किन्तु अन्य के साथ स्नेह का आदर्श रूप इसी कहानी में दृष्टिगत होता है। अपनी सन्तान से भी अधिक प्रेम और स्नेह नारी किसी अनाथ बालक को दे सकती है। स्नेह का यह आदर्श-चित्र खेंचना ही लेखक का लक्ष्य है।

राब की मटकी

होमवती

कथानक—इस कहानी में निर्धनता की करुण दशा का क्रन्दन है। एक भारतीय कृषक अपनी सन्तान की चार-छः आने की वस्तु की माँग भी पूरी नहीं कर पाता। अन्त में एक राब की मटकी बेच कर इस समस्या को सुलझाना चाहता है; किन्तु उसका भी इतना दाम न मिलने से वह इच्छा अपूर्ण ही रह जाती है। अनायास ही वह मटकी टूट जाती है। इससे उसकी रही सही इच्छाएँ भी क्षार बन जाती हैं। यही संक्षिप्त में कथानक है इस दुखान्त कहानी का, जिसे लेखिका ने सफलता पूर्वक व्यक्त किया है।

पात्रों का चरित्र-चित्रण—इस कहानी के पात्रों में डूँगर, उसकी पत्नी गोबिन्दी, उसकी इकलौती बेटी रज्जो और पड़ौसियों का बच्चा जीवन है। इनमें डूँगर और गोबिन्दी का चरित्र उज्जवल बन पड़ा है। बच्चों के चरित्र-चित्रण में भी स्वाभाविकता है। डूँगर तो भारतीय किसान का जीता जागता स्वरूप है। वह अपनी निर्धनता को परिश्रम से कम करना चाहता है; किन्तु विधाता बात-बात में रुकावट बन कर आ जाता है। डूँगर एक आदर्शवादी मनुष्य है उसके इन शब्दों में—**"भगवान ने चाहा तो अब की फसल अच्छी होगी। फिर हाथ खुल जायेगा। कोई ऐसी ही तंगी थोड़ी ही रहेगी।"** वह एक आदर्श पिता है, इसी कारण तन की चिन्ता छोड़ कर अपनी इकलौती बेटी रज्जो का मन रखने में तत्पर रहता है। राब की मटकी न बिकने पर भी वह सन बँट कर बेटी की इच्छा पूरी करेगा। इसके विपरीत गोबिन्दी साधारण स्त्रियों के समान निराशावादी और उग्र स्वभाव की है। बात बात पर बेटी को डांट देती है; किन्तु ममता को नहीं दबा पाती। अपने सिर पर राब की मटकी रख उसे बेचने चल देती है। पास-पड़ौस की चिन्ता न करते हुए पुत्री को ओढ़नी दिलाने चल देती है। रज्जो

एक सहनशील बच्ची है। वह हठ उतना ही करती है जितना बाल-सुलभ होना चाहिये। माता की राब की मटकी न बिकने पर समझदार बड़ों के समान बात बदल लेती है। ओढ़नी का हठ छोड़ कर राब खाने पर ही सन्तुष्ट हो जाती है। पास पड़ौस के बच्चों के चिढ़ाने से तनिक दु:खी होती है; किन्तु फिर माता के बहलाने से झट मान जाती है। इस प्रकार सभी पात्रों का चित्रण सफलता पूर्वक किया गया है।

कथोपकथन—लेखिका ने इस कहानी में उपयुक्त संवाद रचकर कथानक में प्राण फूंक दिये हैं। बच्चों का पारस्परिक चिढ़ाना बड़ा ही स्वाभाविक सा जान पड़ता है। कथोपकथन या संवाद पात्रों के चरित्र का विकास करते हैं। वात्सल्य से पूर्ण इन संवादों को देखिए—"**बच्चे का मन मां-बाप तन-पेट काट कर भी रखते है, पर हम अभागे तन-पेट की कमी को भी पूरा नहीं कर पाते, मन कहाँ से रखे**···।" कथोपकथन पात्रानुकूल है और उनमें प्रवाह है।

देश-काल या वातावरण—*इस कहानी में ग्रामीण वातावरण का* सुन्दर चित्र चित्रित किया गया है छड़ियों का मेला भी ग्रामीण उत्सवों का परिचयदायक है। अंग्रेजी काल में कृषकों की दशा कितनी दयनीय थी, इसका आभास स्पष्ट रूप से इस कहानी से हो जाता है।

भाषा-शैली—होमवती जी की भाषा सरल, सुबोध और रोचक है। ग्रामीण शब्दों का जैसे 'गबरून', 'हिरस' आदि का प्रयोग यथा स्थान बड़े सुन्दर ढंग से हुआ है। वर्णन शैली में समास शैली को अपनाया गया है।

उद्देश्य—लेखिका ने इस कहानी में केवल एक निर्धन कृषक की विवशता का चित्र चित्रित किया है। कहानी के दुखान्त से वह अपने उद्देश्य में सफल रही हैं।

चतुरी चमार

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

कथानक—निराला जी के इस कहानी में चतुरी चमार के चरित्र की झाँकी के साथ-साथ उनके अपने जीवन की झलक भी मिलती है। उच्चवर्ण में जन्म लेकर भी जब वह चतुरी चमार और अन्य हरिजनों के साथ खाते पीते हैं तो समाज के तीखे कटाक्ष उन्हें सुनने के लिये मिलते हैं। वे किंचित मात्र भी उसकी परवाह न कर निडरता के साथ अपने पथ पर डटे रहते हैं। लेखक ने अपने जीवन के कुछ क्षणों को चतुरी चमार के साथ रह कैसे बिताया है ? यही इस कहानी का कथानक है।

पात्रों का चरित्र-चित्रण—इसमें चतुरी चमार का चरित्र बहुत ही वास्तविक जान पड़ता है। अनपढ़ होते हुए भी वह कबीर की उलट बासियों के रहस्य को समझने में दक्ष है। वह पढ़ने का चाव तो अपने जीवन में पूरा न कर सका, इसलिए अपने बेटे को लेखक से पढ़वा कर इस कमी को पूरा करता है। वह अपने व्यवसाय में भी इतना दक्ष है कि उसका बनाया हुआ जूता पूरे दो साल चलता है। अँग्रेजी युग में आन्दोलन के समय चतुरी चमार के विरुद्ध भी कार्यवाही होती है, जिसमें वह बड़ी दीनता से अपना निर्णय दे देता है—**"फिर छेवनी, पिरकिया आदि मालिक ही ले लें।"**

इसमें दूसरा चरित्र लेखक का अपना है जो कहानी की ओट में होता हुआ भी निरख उठा है। हरिजनों के लिए उसके हृदय में कितना प्यार है ? चतुरी चमार के लड़के को पढ़ाते ही नहीं अपितु उसके हाथ से लाया मांस, आटा आदि वस्तुएँ तैयार कर उनके बीच बैठ कर खाते हैं। उनका लड़का उस हरिजन बालक के साथ खेलता है। आपसी बच्चों के झगड़े में भी वे अपने ही बेटे को डांटते हैं। इन्होंने ऊँच नीच के भेद भाव को मिटा दिया है। जाति-च्युत होने पर भी वे किसी बात चिन्ता नहीं करते। आन्दोलन के समय नागरिक जीवन को त्याग कर

गाँव में निर्धनों, अशिक्षितों की सहायता के लिये चले जाते हैं। राष्ट्र पिता गांधी जी के पगों पर चलते हुए लेखक ने उनके ही सिद्धान्तों का एक नमूना हमारे समक्ष रखा है। जिसे लोग सनकी कहते हैं उस मानव में कितनी महानता है ?

कथोपकथन—कहानी में यत्र-तत्र संवाद भी बिखरे पड़े हैं। उनकी भाषा पात्रानुकूल और सरल है। वैसे तो निराला जी अपनी कठिन शब्दावली के लिये प्रसिद्ध हैं; किन्तु यहाँ उसके विपरीत सीधी सादी भाषा के दर्शन होते हैं। उसमें भी कहीं कहीं तुलनाएँ और उपमाएँ झलकती हैं जो लेखक के कवित्त स्वभाव की द्योतक है।

देश-काल या वातावरण—इस कहानी में अंग्रेजी युग में ग्रामीण जनता पर होने वाले अत्याचारों की झलक का अच्छा परिचय मिलता है। जमींदार के सिपाही को भी चतुरी-चमार को एक जूता घूस स्वरूप प्रति वर्ष देना पड़ता है। इसमें ग्रामीण वातावरण बहुत ही वास्तविक बन पड़ा हैं।

भाषा-शैली—इस कहानी की वर्णन शैली प्रथम पुरुष में होने के कारण आत्म परख है भाषा शैली सरल और प्रवाह युक्त है। कहीं कहीं अंग्रेजी शब्दों जैसे 'हाउस आफ कामन' और कहीं कहीं उर्दू शब्दों जैसे '**अब्दुल अर्ज में दर्ज होगा**' का प्रयोग भी किया है। जो लेखक की सर्वतोमुखी प्रतिभा का सूचक है।

उद्देश्य—इस कहानी का उद्देश्य चतुरी चमार के चरित्र का उठाना है। इस उद्देश्य का उल्लेख प्रारम्भ में ही लेखक ने इस वाक्य में किया है—"**मेरी इच्छा होती है, चतुरी के लिए 'गौरबे' बहुवचनन् लिखूँ।**" इस उद्देश्य की पूर्ति करते करते करते लेखक का अपना चरित्र अधिक विकसित हो गया है। हरिजन प्रेम में गांधी वाद की झलक स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है।